अब्रह्मण्यम् - त्राहि माम्



जितेन्द्र कुमार त्रिपाठी

अब्रह्मण्यम् – त्राहि माम्
वयं संस्कृत–मातृभाषिणः

जितेन्द्र कुमार त्रिपाठी

प्रकाशक :

मनोयोग

सी–२४, 'क', जे–रोड,
महानगर विस्तार, लखनऊ – २२६००६
फोन – ०५२२ – ३८६६१७
ईमेल – जितेन्द्र_कुमार_त्रिपाठी@हाटमेल.काम
jitendra_kumar_tripathi@hotmail.com

कृतज्ञता

इस पुस्तक के प्रकाशन में श्री भगवती शरण जी पाण्डेय पूर्व मुख्य विकास अधिकारी चमोली तथा श्री अनुज बिहारी पाण्डेय (भारतीय स्टेट बैक–शाखा–मंधना, कानपुर) के धन की सद्गति हुई है।

"सिद्धार्थ–सिद्ध–सम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते।
ग्रन्थादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः।।"

प्रयोजन

सरकार द्वारा देश की जनगणना वर्ष १९८१ के आंकड़ों के प्रकाशित कर देने के बाद, उसी आधार पर संस्कृत–मातृभाषियों की स्थिति से सम्बन्धित संक्षिप्त विश्लेषण में मैंने देश में उनकी समाप्त प्रायः स्थिति की ओर देशवासियों का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास तभी किया था। उसी के अनुसार उत्तर प्रदेश के लगभग सभी जिलों तथा अन्य प्रदेशों में भी जाकर जनगणना के संस्कृत मातृभाषाई आंकड़ो के विश्लेषण के तथ्यों से लोगों को मैंने अवगत कराया था। इसी विषय और उससे सम्बन्धित तथ्यों की गम्भीरता को लोगों ने ध्यान से सुना, समझा और मुझे सहयोग दिया। ऐसे अवसरों पर संस्कृत के मातृभाषी स्वरूप और उसके ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक, व्यावहारिक व सांख्यकीय विवरण जब मैं प्रस्तुत करता था तो उपस्थित लोग इस सबके बारे में और अधिक जिज्ञासु हो जाते थे। समयाभाव के कारण उन गोष्ठियों और वार्ताओं में पूर्ण विवरण दे पाना मेरे लिए सम्भव नहीं हो पाता था। अतः अवसर के अनुरूप कुछ और विस्तार से बता तो देता था और संस्कृत प्रेमी इससे संतुष्ट हो जाते थे, किन्तु तृप्त नहीं होते थे। तब एक ऐसे छोटे ग्रन्थ की आवश्यकता अनुभव हुई, जिससे कम समय में विषय को समझाया जा सके। इस प्रकार की किसी पुस्तक की जानकारी मुझे न हो सकी। अतः इस विषय को संक्षेप में लिखकर संस्कृत–मातृभाषियों तक पहुंचाने का मन मैंने तभी बना लिया था।

संस्कृत–मातृभाषियों के अभिज्ञान व संरक्षण के लिए जो कार्य 'मनोयोग' ने जनगणना वर्ष–१९९१ में किया था, उससे सम्बद्ध हमारे सभी सहयोगी, उसका परिणाम जानने के लिए व्यग्र रहते थे। उत्तर प्रदेश

में इस बारे में हुई सरकारी जांच के कारण यह व्यग्रता विशेष थी। भारत सरकार द्वारा आंकड़ों के प्रकाशन में विलम्ब को देखकर वहां से कम्प्यूटर फ्लापी के माध्यम से १९९१ के आंकड़ों को प्राप्त कर सम्बन्धित कुछ जिलों के सहयोगियों को यह विवरण मैंने दिये व उन्हें सार्वजनिक रूप से सम्मानित कराया। किन्तु सहयोगीजन १९८१ की जनगणना के आंकड़ों के मेरे विश्लेषण की भांति अपने – अपने प्रदेशों व जिलों की छवि पूरे देश के परिप्रेक्ष्य में देखना चाहते थे। साथ ही अगली जनगणना के लिए रणनीति व निर्देश की भी अपेक्षा वह लोग मुझसे करते थे। इस कारण इस प्रकाशन में कुछ स्थानों पर यह आंकड़े अधिक दिये गये हैं। यह आंकड़े यद्यपि हमारे सामान्य पाठक के लिए बोझिल और वैज्ञानिक पाठक के लिए अपरिपक्व प्रतीत होंगे, किन्तु हमारे कार्यकर्ताओं के लिए वह उपयोगी हैं।

अतः संस्कृत–मातृभाषियों, संस्कृत–प्रेमियों व 'मनोयोग' के सभी सहयोगियों के प्रति आभार प्रकट करते हुए, देश की संवैधानिक संस्थाओं, सरकार व उसके विभागों को संस्कृत–मातृभाषियों के बारे में अपना मत स्थिर करने तथा यूनेस्को (संयुक्त राष्ट्र शिक्षा–विज्ञान संगठन) को विश्व–संस्कृति–संरक्षण के दृष्टिकोण से इस पर विचार हेतु यह प्रकाशन प्रस्तुत है।

मैं अपना श्रम सफल समझूंगा यदि संस्कृत मातृभाषियों के संरक्षण में इस पुस्तक का कुछ योगदान हो सका।

संस्कृत मातृभाषार्थं मनोयोगेन कल्पितम् ।
विमतिम्यो न दातव्यं, त्राहि माम् करूण–व्यथम् ।।

तिथि :– भवदीय,

शरद पूर्णिमा

२१ आश्विन शक १९२२ **जितेन्द्र कुमार त्रिपाठी**

१३ अक्टूबर २०००

आभार

जिन विद्वानों की पुस्तकों से मैंने ज्ञान अर्जित किया है अथवा प्रस्तुत लेखन में उपयोग किया है, के प्रति नमन करते हुए "जर्मन न्यूज" के उद्धृत अंश और अखिल भारतीय संस्कृत परिषद लखनऊ के कैटलाग आफ मैन्यूस्क्रिप्ट्स के प्रयोग के लिए उनके नियमानुसार कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

जहाँ तक पुस्तकालयों और मुद्रकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन की बात है, उत्तर–प्रदेश सरकार के लखनऊ स्थित सचिवालय परिसर के एक पुस्तकालय, प्रदेश सरकार के सूचना विभाग के पुस्तकालय, जनगणना कार्य निदेशालय के पुस्तकालय व अन्य अनेक पुस्तकालयों और मुद्रकों के अपने अनुभव के बारे में मैं, सन् १९३७ में मुद्रित श्री एम. कृष्णामाचारी के ग्रन्थ "हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर" के प्राक्कथन में अंकित उनके इस सम्बन्ध में अनुभव के अंश से अपने को जोड़ते हुए इस आशय से नीचे दे रहा हूं कि विगत साठ वर्षों में सेवाओं के अन्य क्षेत्रों की भांति इस क्षेत्र में गिरावट ही हुई है, यद्यपि कुछ स्थानों पर इसी बहाने सहृदयों से भेंट का अवसर भी मुझे प्राप्त हुआ।

"But what are you chances of using the liabraries? Manuscrips and catalogues now out of print are all "stored" in these receptacles. They may be there for years, unthought and untouched, save for change of physical location. The pages may turn red, brown, blue and brittle, but they still lie uncut by the hand of any reader. The Guardian (Curator, Secretary, Librarian, call them as you please) will well watch these receptacles on their pedestals. The guardian will applaud your attempt at research and will promise to help it by a loan of books on your application,

but he is "helpless" and must soon express his regret in reply as "rules are against loan". It you apply to a higher authority for relief, the paper runs through the regular channels to the same guardian, and on his report, after a lingering expectation, you get an order (a copy of the prior one) with a difference only in the preamble and the subscription. Libraries "are meant for visitors" but most of them do not look in, but look on, all the more so, if a museum or a house of curios is adjacent to the liabrary. And these rare books are only rarely wanted and that by a incrusted antiquarian of my ilk. One that comes there does not need the book; one that is far away cannot get it. If you do go there, stealing a holiday, the key of a particular almirah where your wanted work is kept may be with the guardian who is away elsewhere. What then is library for? It is not a Palace to Toys! Much of this tale was true of the Oriental Manuscripts Library of Madras some years ago, when I commenced the preparation of this work. I am not sure if at present the position is better. But I am aware that not many years ago, there was an indictment of the methods of this Library by His Holiness Sri Yatirajaswami in his preface to his edition of Sṛngāra prakāsa. The expression of his chagrin in language poetic, is well worth reading as a piece of excellent prose literature.

I wrote for information to libraries, I rarely had a reply, for some of these guardians have "no staff, no provision for paper or postage." If I asked for an extract from any manuscript - say the first and last few lines - some institutions demanded copying charges. I applied for a copy, the charges were exorbitant. For intance, for an indifferent copy in two quarter sheets of thirty two anustubh verses (of 32 letters each) I was asked to pay about a rupee and postage. I paid and consoled myself by the thought

that this fee went for the maintenance of a poor Pandit, and that it was in no way more rapacious than the fee charged recently by a Banker for giving an extract of a single line from a ledger, viz. Rs. 5 for search, Rs. 5 for copying the line, and Rs. 5 for adding a certificate that it was a 'true copy', and these charges are only made "according to rules". We have to get on 'under the rules', no one cares to look into these iniquities. Equally so was it with many Professors of College. They would have no time to reply. and the few that deigned to oblige after reminders had very little to say. To trace an author and his affairs, I had in many cases to correspond with several persons, and only perseverence did win it. If the post office could exempt my letters from postage, it would give a different aspect, but alas, not. It is under these auspices I began and progressed. But I cannot refrain from expressing that the acquisition of the material gathered in this book has been too costly for an equanimous retrospect and I shall not be far wrong to say that each author, save those few that are too well known, cost me on an average four annas. I have often felt that it is not an enterprise that a prudent householder should have embarbed upon, but it was too late to think of the folly.

"Amidst official work in judicial service, in places distant from metropolis, there was little leisure for a continous study. A few days snatched at intervals during the recesses of summer and other holidays" were rarely sufficient for visits of references to librarian seated all over India."

"...work was ready.....it went to press. After a year, it was carried away in the current of an estate that vested in the Official Assignee. Delay there was, but the printing was resumed.

I fell ill and.....There was again a change in the management and there was another lull. After sometime, the printing was taken up and slowly moved on. Once the manuscript of a whole chapter which was in the custody of a manager was lost - "said to be not seen at all", - but after all traced as 'Mislaid', after I rewrote much of it from scanty material gathered again from memory. If with all these mishaps and vicissitudes the work took...years more, need I say that the suspense is enough to dole dismay to a chronic optimist which I presume that I was."

भविष्य में सहयोग की आशा में ।

तिथि :–
शरद पूर्णिमा
२१ आश्विन शक १६२२
१३ अक्टूबर २०००

संस्कृत मातृभाषी सेवक
जितेन्द्र कुमार त्रिपाठी

पत्रकार लाला जगत नारायण एक शिष्ट मण्डल के साथ रूस गये थे। उन्होंने लौटने पर अपने अखबार में यात्रा का विवरण लिखा–जब रूस में पुस्तकालय देखने गए, तो संस्कृत विभाग में भी गए। द्वार पर हमारा संस्कृत भाषा में स्वागत हुआ और परिचय हुआ। हमारे शिष्ट मण्डल में कोई संस्कृत नहीं जानता था। रूसी संस्कृत में कुछ पूछते तो हम अनुवाद के माध्यम से अंग्रेजी में उत्तर देते। हमें बड़ी शर्म अनुभव हुई। आगे बढ़े। संस्कृत पुस्तकालयाध्यक्ष के कार्यालय में रेशमी वस्त्र में मेज पर अध्ययनार्थ गीता रखी थी।

पूछने पर उत्तर मिला – "कर्तव्य परायणता की प्रेरणा हम गीता से लेते है"

****

"मङ्गलं नागरी हिन्दी राष्ट्रभाषा च मङ्लम्।
मङ्गलं संस्कृता भाषा प्रान्तभाषा च मङ्लम्।।"
(राजस्थान के एक संस्कृतज्ञ)

TRIBHUVAN PRASAD
Former Lieut, Governor, Pondicherry
President



Akhil Bhartiya Sanskrit Parishad
Mahatma Gandhi Marg, Hazratganj,
Lucknow-226 001 (India)
Tel. : 0522-223962

श्री जितेन्द्र कुमार त्रिपाठी व उनके सहयोगी दीर्घकाल से देववाणी संस्कृत के प्रचार–प्रसार के अनुष्ठान में प्राण–पण से संलग्न हैं। तमाम कठिनाइयों, निराशाओं व उपेक्षाओं का सामना करते हुए वे एक सात्त्विक कार्यकर्ता की तरह धैर्य व उत्साह से समन्वित इस परम पवित्र एवं महत्त्वपूर्ण कार्य में लगे हैं।

संस्कृत के बारे में अनेक भ्रांत धारणाओं, विचारों व पूर्वाग्रहों का समुचित उत्तर देते हुए उन्होंने इस पुस्तक में अनेक व्यापक अनुभवों को उपयोगी सुझावों के साथ प्रस्तुत किया है। इस सारे प्रयास के पीछे उनका संस्कृत से जुड़े अनेक संदर्भों का गहन विस्तृत व संवेदनात्मक अध्ययन है। उनकी प्रस्तुति तथ्यात्मक, प्रासंगिक, आधिकारिक और रचनात्मक है।

पुस्तक के प्रारम्भ में ही उन्होंने "संस्कृत क्या है?" "भाषा क्या है?" और "मातृ भाषा क्या है?" ऐसे मौलिक प्रश्न उठाये हैं। श्री त्रिपाठी ने इनका युक्तियुक्त उत्तर विद्वानों के विचारों, ग्रन्थों के उदाहरणों और उपयुक्त उदाहरणों से प्रस्तुत किया है। जो लोग संस्कृत को "मृत" भाषा या अनुपयोगी या सीखने में अति कठिन मानते हैं, उनके भ्रम के निवारण का भी प्रयास पुस्तक में किया गया है।

इसके अनन्तर श्री त्रिपाठी ने संस्कृत के प्रचार–प्रसार में सामने आने वाली समस्याओं का और फिर उनसे निपटने के लिए किए गए प्रयासों का भी उल्लेख किया है। इनमें उनके हृदय की पीड़ा भी झलकती है। इस पवित्र कार्य में जो सहयोग भिन्न–भिन्न स्रोतों से मिलना चाहिये था वह नहीं मिला। उदासीनता और कहीं–कंहीं व्यवधानों ने इस मानवीय उत्थान के कार्य को और चुनौतीपूर्ण बना दिया है।

समय–समय पर की गई जन–गणना में संस्कृत–मातृ–भाषियों की संख्या की ओर भी उन्होंने हम सब का ध्यान आकृष्ट किया है। अपने मूलस्थान में इस दिव्य–भाषा की यह शोचनीय स्थिति! प्रदेश में संस्कृत–पाठशालाओं का पुस्तक में दिया गया विवरण उपयोगी है।

पुस्तक के अन्तिम भाग में उन्होंने संस्कृत के प्रति हम सब के कर्तव्य की याद दिलाई है । संस्कृत विश्व की एक अद्वितीय धरोहर है। मानवता का संचित ज्ञान इसमें सुरक्षित है। विदेशी शासकों द्वारा बहुत कुछ नष्ट किया जा चुका है। जो कुछ बचा है उसे तो अब हम संभालें।

त्रिभुवन प्रसाद

(त्रिभुवन प्रसाद)

Residence : B-2/5, Vishvas Khand-2, Gomti Nagar, Lucknow - 226 010 (Phone : 0522-309662)

Dr. Ashok Kumar Kalia
Professor & Head
Department of Sanskrit
& Prakrit Language



University of Lucknow,
Lucknow-226 007

वर्षसहस्रात्मको मुस्लिमानामाङ्गलानाञ्च शासनकालः संस्कृतभाषायाः संस्कृतसाहित्यस्य च कृतेऽसहानुभूतिमयोऽसहिष्णुतापरिपूर्णो विद्वेषभावनाभावितश्चाऽऽसीदित्येवंविधाऽवधारणा संस्कृतानुरागिणां मनसि प्रगाढं वरीवर्ति स्म। स्वातन्त्र्यावाप्तिसमनन्तरमेव लोकतन्त्रात्मकं भारतीयं गणतन्त्रं संस्कृतस्य सर्वविधां समुन्नतिं विधास्यति सर्वथेत्येतदप्यासीत् तेषां सुदृढो विश्वासः। किन्त्वद्य स्वातन्त्र्यमनुभवतामेतेषां तादृशो विश्वासः क्षत–विक्षतो जातः। वस्तुतः पारतन्त्र्यकालो न तथा यथा प्रवर्तमानः स्वातन्त्र्यकालः संस्कृतविद्वेषदूषित इति विभाव्य नैराश्यगर्तशरणा धूलिधूसरिताश्च सञ्जाताः तेषां प्रियाः स्वप्नलोकाः।

वर्तमानकाले संस्कृतमातृभाषिणां कीदृशी वर्तते लोकस्थितिः मनःस्थितिश्चेत्यस्ति प्रस्तुतग्रन्थस्य विवेचनीयो विषयः। श्री जितेन्द्रकुमारत्रिपाठिविरचित–संस्कृतमातृभाषिव्यथाकथानिरूपकं "अब्रह्मण्यम्" इति नामधेयं ग्रन्थरत्नमिदं सावधानेन मनसा प्रत्यक्षरं परिशील्य पर्यालोच्य च नितरां तृप्यति तुष्यति चाऽस्मदीयं मनः। वस्तुतः श्री–जितेन्द्रकुमारत्रिपाठिमहोदया "मनोयोग" नाम्नीं संस्कृतमातृभाषिणां संस्कृतस्य च श्रेयसेऽभ्युदयाय च समर्पितस्वत्वां काञ्चित् संस्थामतिशयमनोयोगेन सञ्चालयन्ति। एतस्या मनोयोग–संस्थाया उद्देश्यप्राप्त्यै बहुविधं काठिन्यं प्रभूताश्च बाधाः समनुभूताः श्रीत्रिपाठिवर्यैरिति सर्वमेतद् ग्रन्थस्य पर्यालोचनेन विशदविशदं प्रमाणीभवति।

प्रस्तुतग्रन्थस्य प्राधान्येन विवेचनीयविषयो "मातृभाषीति"–किमपि विशिष्टं व्याख्यानमपेक्षते, यतो हि संस्कृतं मृतभाषात्वेन घोषयन्तो जनाः संस्कृतमातृभाषीति शब्दं विस्मयविस्फारित–श्रोत्रद्वयेनाऽविश्वासकारणात् शृण्वन्तोऽपि न शृण्वन्ति। एतस्मादेव कारणात् ग्रन्थकारेण ग्रन्थस्योपक्रम एव "संस्कृतं नाम किम्" "का नाम भाषा" "मातृभाषाशब्दस्य कोऽर्थः इत्येते विषयाः सुष्ठु व्याख्याताः। एतदपि स्पष्टीकृतं तत्रैव यद् वस्तुतः प्राक्तने काले संस्कृतं व्यवहारभाषाऽऽसीत्। संस्कृतस्य मृतभाषात्वप्रवादोऽप्यत्र सप्रमाणं परिहसितो ग्रन्थकारेण। एतदनन्तरं संस्कृतमातृभाषिणां समस्याः काश्चन समुल्लिखिताः। एतासु समस्यासु सर्वप्रमुखा समस्या त्वियमेवाऽस्ति यत् स्वतन्त्रेऽस्मिन् भारते विशेषतयोत्तरप्रदेशे सर्वोऽपि जनः स्वकीयया मातृभाषयाऽध्ययनेऽधिकृतोऽस्ति, किन्तु संस्कृत–मातृभाषिणः स्वकीयमातृभाषया संस्कृतेन अध्ययनाधिकारात् सर्वथा वञ्चिता सन्ति। संस्कृतमातृभाषिणां सम्पत्तेरपहरणमित्यस्त्यन्या समुल्लिखिता प्रमुखसमस्या। एतदनन्तरं ग्रन्थकारः एताः समस्या अधिकृत्य कृतानां प्रयासानां वर्णनं विशदतया विदधाति। शिक्षाविभागे, उच्चन्यायालये, अल्पसंख्यकायोगे, विधानसभायाञ्च ये ये प्रयासाः समनुष्ठिता यच्च काठिन्यमनुभूतं तत्सर्वमत्र समीचीनतया निरूपितं वरीवर्ति। जनगणनासु परिलक्षिता संस्कृतमातृभाषिणां स्थितिं विस्तरेण विवेचयति ग्रन्थकारः।

एतादृशं विषयमधिकृत्य ग्रन्थप्रणयनस्याऽयमस्ति कोऽप्यपूर्वः प्रयासः। ग्रन्थकाराः श्रीजितेन्द्रकुमारत्रिपाठिवर्याः सर्वथा साधुवादार्हाः यैः महता परिश्रमेण सुमहत्कार्यमिदं साफल्येन समनुष्ठितम्। आशास्यते यत् श्रीत्रिपाठिवर्याः सहयोगिनश्च भविष्यति काले मनोयोगसंस्थामा–ध्यमेनैवाङ्गीकृतं कार्यमिदं सम्पूर्णतां नेष्यन्ति मनोयोगपूर्वकम्।

अशोक कुमार

विषयानुक्रमणिका

मातृभाषा–संस्कृत

देश में संस्कृत–मातृभाषियों की संख्या बहुत कम शेष रह जाने तथा उनके जीवंत स्वरूप को न जानने वाले अथवा नकारने वालों की संख्या बड़ी होने के कारण "मातृभाषा–संस्कृत" नाम सुनकर, सामान्य जन बहुधा चौंक जाते हैं – लोग पूछने लगते हैं कि संस्कृत–मातृभाषा क्या है? इसका स्वरूप क्या है? इसको समझने के लिये आवश्यक है कि पहले यह जाना जाय कि 'संस्कृत क्या है?' भाषा क्या है? और मातृभाषा क्या है?

भारत की प्राचीन भाषा के लिए मुख्यतः सर्वत्र ज्ञात व प्रयुक्त 'संस्कृत' शब्द का अर्थ है– "भलीभांति बनाया हुआ, तैयार किया हुआ, प्रक्रिया से तैयार किया हुआ, संस्कार किया हुआ," जिसे मूलतः निष्पन्न 'अलंकृत' अर्थ व भाव में तदानुसार याज्ञिक आदि कार्यो में भारत के ब्राह्मणों के द्वारा प्रयुक्त भाषा के रूप में माना जाता रहा है। संस्कृत भाषा के लिये यह "तैयार करना" या "संस्करण" या "संस्कार करना" दो अलग–अलग स्तरों या क्षेत्रों में होता है। पहला 'स्वर–व्यंजन संस्कार' तथा दूसरा 'शब्द संस्कार'। स्वर–व्यञ्जन संस्कार में वाणी–वाक् के उच्चारण में संस्कृत भाषा के सभी बावन स्वर और व्यंजनों में शुद्धता, सूक्ष्मता, बारीकी व सफाई उसी प्रकार लाई जाती है जैसे भोजन बनाने के पहले, प्रयोग में आने वाले पात्रों को रगड़कर, साफकर, धोकर, धूप में रखकर, और सुखाकर शुद्ध करते हैं। "पात्रं संस्कारेण शुद्धयते" । दूसरा संस्कार अर्थात् "शब्द–संस्कार" उसी प्रकार का होता है जैसे भोजन के विविध व्यञ्जन– पकवान बनाने के लिए अन्न आदि में, कुछ अन्य खाद्य पदार्थ यथा मसाले–घी–तेल आदि उसे पकाने से पहले, कुछ पकाने के साथ बीच में ही, और कुछ पकाने के बाद बघार व छौक से मिलाये जाते हैं । शब्दों की इस संस्कार–प्रक्रिया में धातु के पहले उपसर्ग, उसके पश्चात् प्रत्यय लगाकर फिर उनमें सन्धि और फिर अन्य शब्दों को मिलाकर समास बनाकर "संस्कृतम् अन्नम्" की भांति

संस्कृत शब्द बोलने लिखने के उपयोग के लिए तैयार होते हैं । यह लगभग उसी प्रकार का होता है जैसे द्विज का 'उपनीतः संस्कृतो भवति' अथवा 'उपनयन संस्कारार्थम्' । इस प्रकार जिन शब्दों व उनके उच्चारण करने का संस्कार कर दिया जाता है वे संस्कृत हो जाते हैं ।

धार्मिक पाठों की शुद्धता बनाये रखने तथा शब्दों के भाव व अर्थ में परिवर्तन न होने देने के लिए संस्कृत भाषा के 'शिक्षा'–ग्रन्थों में स्वर–व्यञ्जन के शुद्ध उच्चारण आदि के कठोर नियंत्रण द्वारा किया गया वाणी व शब्द का संस्कार, 'संस्कृत' नाम को स्वयं सिद्ध करता है । इसी संस्कार के लिए वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम संतान को कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तरीय आरण्यक[1] के प्रारम्भ में ही 'शिक्षा' को स्थान दिया गया है । प्रसिद्ध आचार्य सायण ने भी स्वर–वर्ण के उच्चारण के प्रकारों को ही "शिक्षा" कहा है[2]।

इस 'स्वर–व्यञ्जन–शब्द–संस्कार' की प्रक्रिया में संवेदनशीलता की सूक्ष्मता का अनुमान पतञ्जलि द्वारा दिये गये उस उदाहरण से लगाया जा सकता है जिसमें उन्होंने वर्णाक्षरों का प्रयोग करने में उतनी सावधानी वर्तने के लिये कहा है जितनी एक बिल्ली अपने छोटे बच्चे को मुँह में दांतों से दबाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय बर्तती है, जिसमें दांतों की दाब से न तो बच्चे को पीड़ा पहुँचे और न बच्चे के गिरने का भय ही रहे[3]। एक शब्द को भलीभांति जानने व उसके सही प्रयोग से इस लोक और स्वर्ग लोक की सिद्धि का पतञ्जलि का सकारात्मक उपदेश, उच्चारण की इसी शुद्धता पर बल देता है[4]।

"स्वर–व्यंजन" व "शब्द" के इसी शुद्ध उच्चारण का दृढ़ता से अनुपालन कराने के लिए ही, कदाचित्, अशुद्ध व भ्रष्ट उच्चारण के भयप्रद–फल का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में किया गया है, तथा जिसे महाभाष्य में भी दोहराया गया है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार युद्धक्षेत्र में असुरों की पराजय इसलिये हुई क्योंकि उन्होंने 'र' के स्थान पर 'ल'

सन्धियुक्त उच्चारण करके 'हे अरयः' के स्थान पर 'हेलयो हेलयो' का उच्चारण किया था जिससे उसका अर्थ उल्टा हो गया था। महाभाष्य के अनुसार "तेऽसुरो हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुः" वह असुर हेलयो-हेलय उच्चारण करते हुए अपने प्रयास में असफल हुए, अतः ब्राह्मणों को म्लेच्छ[५] व अपशब्द नहीं बोलना चाहिए। साथ ही उनका मत था कि लोग म्लेच्छ (अस्पष्ट उच्चारण करने वाले) न हो जाँय इसलिए व्याकरण[६] का अध्ययन करें तथा स्वर-व्यञ्जन और सन्धि आदि को जाने।

अशुद्ध उच्चारण के दोष के भयकारक फल का उल्लेख करते हुए पतञ्जलि ने महाभाष्य के प्रथमाहिक में कहा है कि स्वर-वर्ण के त्रुटिपूर्ण शब्द का उच्चारण न करे, क्योंकि इसी अपराध से वाग्वज्र ने इन्द्र के शत्रु यजमान को ही मार दिया। वृत्रासुर के गुरू शुक्राचार्य द्वारा अपने यजमान के शत्रु, इन्द्र को पराजित करने के लिए किये गये यज्ञ में "इन्द्रशत्रुवर्धस्व स्वाहा" का उच्चारण किया गया। किन्तु उच्चारण में दोष के कारण, उसका अर्थ हुआ 'इन्द्र, नाश करने के लिए आगे बढ़ो'। फलस्वरूप वृत्रासुर स्वयं ही मारा गया। 'मात्रा' और 'बल' के अशुद्ध प्रयोग अथवा अन्तर को हम दैनिक जीवन में बहुधा देखते हैं यथा "रोको, मत जाने दो" तथा "रोको मत, जाने दो।" इन दोनों वाक्यों में शब्द तो वही हैं किन्तु उच्चारण में भेद से अर्थ में बहुत अन्तर आ जाता है।

शतपथ ब्राह्मण में कुरू-पांचाल में, भाषा के सबसे अच्छे बोलने वाले बताये गये हैं और साथ ही शुद्ध वाक् के विपरीत म्लेच्छित व अस्पष्ट उच्चारण के उल्लेख में शुद्ध उच्चारण पर बल दिया गया है। कठिन उच्चारण न होने पर भी व्रात्यों द्वारा उसे कठिन बताने का उल्लेख[८] इसी शुद्ध उच्चारण पर ही बल देता है। साथ ही अदीक्षितों[९] द्वारा भी दीक्षितों की भांति बोले जाने का संदर्भ, लोगों द्वारा संस्कृत बोलने व शुद्ध उच्चारण के महत्व को इंगित करता है।

प्रातिशाख्यों में उच्चारण भेद, उनके पारस्परिक स्थानीय उच्चारण

के प्रभाव के कारण हो सकता है। आज भी 'व'–ब, 'य'–'ज', 'ख'–'ष' 'ज्ञ'--'ज्यां अक्षरो के उच्चारण के भेद वार्तालाप में सुनने को मिलते है। इसी उच्चाण भेद की त्रुटि को स्पष्ट करने के लिए न्यूनतम ज्ञान की आवश्यकता का उल्लेख[१०] 'स्वजन' व 'श्वजन' तथा सकल व शकल में केवल 'श' 'व' 'स' व्यंजन के अशुद्ध प्रयोग या उच्चारण से शब्द के अर्थ में आये अन्तर के द्वारा किया गया है।

विभिन्न बीमारियों–जीवाणुओं के संक्रमण को रोकने के लिये, डाक्टर अपने रोगियों को मुंह पर रूमाल आदि रख कर दूसरों से बात करने के लिये कहते हैं। वायु के माध्यम से होने वाले संक्रामक रोगों से बचने के लिये सजग लोग स्वयं भी ऐसा ही करते हैं। किसी से बात–चीत करते समय जिस प्रकार शारीरिक बीमारियों का संक्रमण एक व्यक्ति से दूसरे में हो जाता है, उसी प्रकार अशुद्ध या अप–भाषी व्यक्ति से बातचीत करने पर भाषा के उच्चारण के दोषों का भी संक्रमण मनुष्यों में होता है। बच्चे गाली इसी प्रकार सीखते हैं। यही बात प्रकारान्तर से[११] "आलापात् गात्रसंपर्कात् पापं संक्रमते नृणाम्", में कही गयी है। और इसी लिये गौतमसूत्र[१२] में म्लेच्छ, (अस्पष्ट, अशुद्ध उच्चारण करने वाले) से बात के लिये मना किया गया है। लोकोक्ति की भांति प्रचलित एक श्लोक[१३] में जीवन का संकट होने पर भी "यावनी" भाषा न बोलने की बात इसी शुद्धता को बनाये रखने के लिये कही गयी है। ध्यान देने की बात यह है कि यावनी–भाषा बोलने के लिये मना किया गया है, "पढ़ने" के लिये नहीं। यह सब भाषा व उच्चारण की शुद्धता बनाए रखने के लिये कहा गया है।

वाणी--संस्कार–भूषिता[१४], वाचः--संस्कारालकृंत[१५], स्वर--व्यञ्जन–संस्कार–भारती[१६], शब्द–संस्कार–संयुक्तम्[१७], सस्कारवती--गीर्[१८], संस्कार--पूत--वाङ्मय[१९], कृतसंस्कारां चरितार्थ-भारतीः[२०] संस्कृत्य संस्कृत्य पदान्युत्सृज्यन्ते[२१] जैसे पद संस्कारयुक्त स्वर–व्यञ्जन (वाचा, भारती, गीर्,

आदि) के शुद्ध उच्चारण व प्रयोग पर बल देते हैं, और इसी से यह भाषा संस्कृत है। भरत ने भी नाट्यशास्त्र में 'आर्य–भाषा' को संस्कार–पाठ–संयुक्ता (उच्चारण के संस्कार से अलंकृत) कहा है।

संस्कृत भाषा के बहुत से विद्वानों ने अपनी साहित्यिक रचनाओं में क्लिष्ट उच्चारण के असामान्य शब्दों, व उनके असामान्य अर्थों व वक्रोक्ति को ऐसे अप्रत्यक्ष रूप से कहा है कि उसका अर्थ निकाल पाना सामान्य जन के लिये कठिन है। यह स्वयं में एक विधा है। भारत की संविधान–सभा में, भाषा–विषयक चर्चा के समय इसी "क्लिष्टीकरण" के भाव को व्यक्त करते हुए, "संस्कृताइज़ेशन" शब्द के द्वारा हिन्दी के 'संस्कृतीकरण' के प्रति सचेत किया गया है। वस्तुतः वहाँ भी किसी सरल बात को अस्वाभाविक रूप से कतर–व्योंत कर, कठिन न बनाने पर ही बल दिया गया है।

यही बात संस्कृत के लिये लागू है, क्योंकि जब एक बार संस्कार–प्रसंस्करण होकर ही भाषा 'संस्कृत' बन चुकी है तब उसके पुनः अत्यधिक प्रसंस्करण का कोई औचित्य नहीं। जो लोग संस्कृत, हिन्दी अथवा अन्य किसी भाषा के लिये ऐसा करते हैं वह शब्दों के प्रयोग व वाक्य–विन्यास के अपने कौशल को प्रदर्शित कर, यद्यपि साहित्यिक इतिहास में अपना स्थान बनाने में सफल हो सकते हैं किन्तु भाषा के प्रसार में उनका योगदान नकारात्मक ही रहता है।

यद्यपि पाणिनि ने सिद्धांतों के आधार पर संस्कारयुक्त भाषा के मानक सदैव के लिये स्थिर कर दिये हैं किन्तु संस्कृत–मातृभाषियों की प्रत्येक पीढ़ी को उच्चारण सिखाते व अभ्यास कराते समय वाणी का यह संस्कार सदैव करते रहना पड़ता है और पड़ेगा। शुद्ध उच्चारण–शिक्षण के इस अभ्यास के अभाव में दोष–त्रुटि–युक्त उच्चारण के दुहराते रहने से लोगों की भाषा की शुद्धता समाप्त हो जाती है और वही अशुद्ध उच्चारण लोग बोलने लगते हैं। यह स्थिति अन्य भाषा–भाषियों पर भी लागू होती है।

अतः अपने दैनिक–कार्य व्यापार में प्रयुक्त संस्कृत–शब्दावली व वाक्यों में स्वर–व्यञ्जन के शुद्ध उच्चारण व प्रयोग के प्रति जन्म और परिवेश से प्रभावित व अभ्यस्त व्यक्ति जिस सीमा तक उनका पालन करता है वह उसी सीमा तक संस्कृत मातृभाषी है।

'संस्कृत' शब्द पर विचार करने के अनन्तर, 'भाषा' शब्द पर विचार आवश्यक हे। 'भाषा' शब्द वर्तमान अर्थ में वेद में नहीं हैं। 'भाष्' धातु ऋग्वेद में नहीं है। चमकने के अर्थ में धातु 'भा' (बोलने के अर्थ में नहीं) तथा धातु 'भन्' (बाद में भण्) बोलने के अर्थ में अवश्य प्रयुक्त है । यास्क (५वीं शती ई०पू०) वैदिक को 'छान्दस' तथा उससे इतर बोली को 'भाषा' बताते है। पाणिनी ने 'भाषा' शब्द से कई सूत्र दिये हैं तथा वैदिक और अपने समय की चालू बोली के अन्तर को इंगित किया है। एक मिलता जुलता 'विभाषा' शब्द उन्होंने 'विकल्प' के भाव में प्रयोग किया है। इससे मिलते–जुलते अन्य शब्द हैं 'भाषित'–व्यक्त किया हुआ, बताया हुआ, इंगित किया हुआ, 'विभाषित'– भिन्न प्रकार से इंगित, विपरीत कथित, 'भाष्य'–विस्तृत कथन या टिप्पणी तथा धातु 'भष्' जिसका अर्थ है लगातार भौंकना।

वैदिक से इतर बोली के लिये 'अनार्ष', जो ऋषियों द्वारा नहीं बोली जाती है, का उल्लेख उन्होंने किया है। उन्होंने 'अष्टाध्यायी' में भाषा के मानक सदैव के लिये निर्धारित कर दिये। अपने से पहले के आचार्यो द्वारा प्रयुक्त व विश्लेषित तथा 'शिष्ट' जनों में उस समय विमर्श और लेखन में व्यवहार की जाने वाली बोली को उन्होंने अपने विश्लेषण का आधार बनाया। कुछ शोधकर्ता यह स्वीकार करते है कि "अष्टाध्यायी उन शिष्टों के लिये लिखी गई थी जिनकी वह मातृभाषा थी और जो बाद में सामान्य जन के स्थान पर शिष्ट–जनों की भाषा हो गई।" बाद में भी बोलचाल के अपाणिनीय प्रयोग इन्हीं मातृभाषियों का अंग रहे। "सीहल भाषा" किसी भारतीय "राजकुमार–विजय" द्वारा पाचवीं शती ई०पू०, श्रीलंका ले जाई गयी, जो वर्तमान सिंहली का आधार है।

सर्वप्रथम पतञ्जलि (दूसरी शती ई०पू०) ने अपभ्रंश और अपशब्दों का वर्गीकरण महाभाष्य में किया। उन्होंने वेदों की भाषा तथा लौकिक भाषा के भेद को स्पष्ट करने के साथ ही लौकिक, जहां तक वह जीवंत और चालू थी, के प्रति महत्त्व प्रदर्शित किया। उनके 'अपभ्रंश' व 'अपशब्द' वस्तुतः प्रचलित बोली की शब्दावली ही हैं। किन्तु 'अपभ्रंश' शब्द स्वयं पूर्व में स्थापित किसी एक मानक की स्थापना स्वीकार करता है, जिसके विपरीत ही माप कर अन्य किसी शब्द को शुद्ध अथवा संस्कृत–शब्द से नीचे स्तर का निर्धारित किया जा सकता है। पतञ्जलि बताते है कि संस्कृत, कम से कम पाणिनि के द्वारा निर्दिष्ट प्रकार की संस्कृत, कदाचित् एक सीमित भौगोलिक क्षेत्र के ही शिष्टजनों की भाषा थी, जब कि 'लोक' में अर्थात् दूसरे वर्ग में लगभग निम्नस्तर की संस्कृत तब तक सुनी जाती थी।

नाट्य–शास्त्र की 'अतिभाषा' मानव से उच्चतर (देवगणों आदि) वर्ग के लिये तथा संस्कार–पाठ–संयुक्ता 'आर्य–भाषा' राजाओं आदि के लिये है। "जाति भाषा" सामान्य भाषा है, जिसमें म्लेच्छ व बर्बर मूल के शब्द भी सम्मिलित हैं। किन्तु, इसके भी दो प्रकार हैं,[२२] प्राकृत व संस्कृत अर्थात् भ्रष्ट और शुद्ध। भरत की 'देश–भाषा', प्राकृत विभाषा का ही एक भाग है। भरत के टीकाकार अभिनव गुप्त के अनुसार[२३] संस्कृत का भ्रष्ट रूप 'भाषा' है तथा 'भाषा' का भ्रष्ट रूप देहाती लोगों व जंगल में रहने वालों की 'विभाषा' है। मनु ने 'भाषा'[२४] शब्द का प्रयोग 'कथन' के अर्थ में तथा 'भाषितेन' का बोलने के लिये किया है।

एशिया महाद्वीप के पूर्वी द्वीप समूहों में (बृहत्तर भारत) प्राचीन काल में जो भारतीय गये, और वहीं के होकर रह गये वह अपने साथ अपनी भाषा भी ले गये। इण्डोनेशिया की वर्तमान भाषा का नाम ही "भाषा" है। मूलतः वह 'भाषा' ही वहां पहुंची। कालान्तर में उसका स्वरूप परिवर्तित हो गया किन्तु नाम वही बना रहा।

बोलने अथवा लिखने में जहां शब्दों को इस क्रम से रखा जाता है कि बोली गयी भाषा को संस्कृत अथवा प्राकृत दोनों माना जा सकता है, उसे "भाषासमः" अलंकार कहते हैं। यही स्थिति संस्कृत और शौरसेनी की है। अर्थात् संस्कृत का एक रूप ऐसा भी है जो "भाषा" के समान प्रतीत होता है।

कुछ लोग इस संदर्भ में प्राकृत भाषा का उल्लेख कर देते है। अतः संस्कृत मातृभाषा के संदर्भ में इस बिन्दु को भी स्पष्ट करना आवश्यक है। 'प्रकृति' शब्द से मिलते-जुलते 'प्राकृत' का कोष में अर्थ है- "अपने आप पैदा हुआ, जो पहले था, असंस्कृत, असभ्य, अशिक्षित, गंवार, देहाती, संस्कृत की तरह देहाती प्रान्तीय बोली"। हेमचन्द्र के अनुसार 'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं तत् आगतं च प्राकृतम्'। काव्यालंकार के अनुसार 'तद्भवस्तत्समो देशीत्यनेकः प्राकृतक्रमः'। संस्कृत नाटकों में सेवकों आदि द्वारा प्राकृत भाषा प्रयुक्त हुई है। संस्कृत नाटकों के संवादों के मुख्य पात्रों द्वारा संस्कृत तथा सेवकों आदि द्वारा प्राकृत का प्रयोग यह स्पष्ट करता है कि जो लोग संस्कृत नहीं भी बोलते थे, वह दूसरों की संस्कृत की बात समझते अवश्य थे। शब्दकोश में 'प्राकृत' शब्द का ऊपर अंकित अर्थ मानक स्तर से नीचे के भाव को व्यक्त करता है। रामायण में लंका विजय के अनन्तर सीता का कहना कि -

"किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम्।"
रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव।।"

(रा० युद्ध काण्ड ११६-५)

इसी भाव को प्रकट करता है। अर्थात् जिसका संस्कार नहीं हुआ है-वह प्राकृत है। संस्कार, जिसका विवरण ऊपर लिखा चुका है, होने के पश्चात् वह संस्कृत है।

हिन्दी साहित्य के प्रमुख सन्त कवि तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के प्रारम्भ में ही लिखा है कि वह अपनी रचना 'भाषा' में कर रहे हैं अर्थात्

संस्कृत के स्थान पर सामान्य जन की बोली में। किन्तु इसमें भी बहुत अंश तो ऐसे हैं जो 'भाषासमः' की श्रेणी में आते हैं अर्थात् 'भाषा' नहीं है अपितु केवल 'समः' हैं। चाहे आप उसे संस्कृत माने या भाषा। वस्तुतः हिन्दी भाषा–भाषी की अपेक्षा संस्कृत मातृभाषी उनके पूरे ग्रन्थ को स्वभावतः सहज भाव से समझ लेगा।

ऊपर संदर्भित आर्य–भाषा, अति–भाषा, जाति–भाषा, यावनी–भाषा सम्भाषेत, विभाषे, तथा भाषा में उच्चारण की शुद्धता पर बल है। संस्कृत मातृभाषा में भी उसके बोलने व शुद्ध उच्चारण पर बल हैं।

इस प्रकार 'संस्कृत' और 'भाषा' दोनों शब्दों के विभिन्न अर्थों व भावों से स्पष्ट है कि पारिवारिक–परिवेश, शुद्ध–उच्चारण, साक्षरता–शिक्षा, सामाजिक–वातावरण व सभ्यता के स्तर आदि, सभी देशों की प्रत्येक पीढ़ी की भाषा के संस्कारयुक्त होने के लिए आवश्यक है। यही बात संस्कृत–भाषा के लिए भी है। संस्कृत–मातृभाषियों में यह क्रिया सनातन रूप से आज तक चली आ रही है।

लियोनार्ड ब्यूम फील्ड के अनुसार किसी भी व्यक्ति से मातृभाष के रूप में व्यवहृत न होने के बहुत बाद तक संस्कृत, योरोप में परिनिष्ठित लैटिन की भांति पाण्डित्यपूर्ण अथवा धार्मिक रचनाओं की कृत्रिम माध्यम बनी रही। अर्थात् उनके अनुसार यद्यपि संस्कृत पूर्व में मातृभाषा स्वरूप प्रयुक्त होती थी किन्तु अब नहीं। 'मातृभाषा' पद भारतीय प्राचीन साहित्य में प्रयुक्त हुआ प्रतीत नहीं होता है। कदाचित् यह अंग्रेजी के 'मदर–टंग' का रूपान्तरण ही है।

अंग्रजी पद 'मदर–टंग' का अर्थ है वह 'भाषा' जिसे कोई शिशु बालकाल में अपने माता–पिता से सीखता है। इस प्रकार अंग्रेजी भाषा का शब्द 'मदर–टंग' और हिन्दी भाषा का 'मातृभाषा' दोनों अपने विभिन्न अर्थों व भावों में "संस्कृत–मातृभाषा" पर पूर्णरूप से लागू होते हैं। यद्यपि 'टंग'

शब्द 'बोली' की भांति, भाषा के 'वाक्' के अधिक निकट प्रतीत होता है किन्तु भाषा शब्द 'टंग', 'स्पीच' व 'लैंग्वेज' तीनों के मिश्रित भावों को प्रकट करता है।

संस्कृत शब्द 'मातृ' का अर्थ है मूल, स्रोत या माता। इससे मिलते–जुलते शब्द 'मातृका' का शब्दकोषीय अर्थ है, "मूलतः–प्रथमतः–लिखा हुआ, जिससे उसी प्रकार की प्रतियाँ तैयार की जाती हैं"। संस्कृत भाषा के स्वर–व्यञ्जन व उनके लिखित प्रतीक अक्षर, जहाँ से 'वाक्' व भाषा प्रारम्भ होती है, 'मातृका–पाठ' कहलाते हैं।

अंग्रेजी भाषा में 'मदर' शब्द का अर्थ है 'बच्चे को जन्म देने वाली स्त्री' अथवा 'अपने प्रकार व वर्ग की किसी वस्तु का मूल रूप–जिससे उसी प्रकार की अन्य चीजें विकसित होती हैं'। अंग्रेजी के 'मदर' शब्द से जुडे दो और शब्द 'मदर–शिप' व 'मदर–प्लाण्ट' हैं। 'मदर–शिप' का अर्थ है वह जहाज जहाँ से अन्य छोटे जहाज अपनी आपूर्ति प्राप्त करते हैं। 'मदर–प्लांट' का अर्थ है, 'पूर्ण विकसित पेड़ या पौधा जिसमें से कलम करके जोड़ा गया छोटा पौधा अपने अस्तित्व व विकास के लिये भोजन–पोषण प्राप्त करता है और अन्ततोगत्वा मातृ–पादप के गुणों से युक्त होकर स्वाश्रयी पादप स्वरूप बढ़कर अलग तैयार हो जाता है।

मातृ या माता शब्द के समकक्ष 'जननी' शब्द का भी प्रयोग हम करते हैं । राम द्वारा लंका की अपेक्षा अयोध्या के बारे में कही गयी–प्रख्यात संस्कृत सूक्ति, 'जननी–जन्म–भूमिश्च स्वार्गादपि गरीयसी' यद्यपि वाल्मीकि रामायण में अंकित नहीं मिलती है किन्तु फिर भी जन्म–भूमि के प्रति हमारे परम्परागत आदर भाव को प्रदर्शित करती है। 'जननी' अर्थात् 'माता' शब्द 'जनन' का द्योतक है। संस्कृत के शब्द 'जन्म–भूमि' और अंग्रेजी के 'मदरलैण्ड' या 'मदरकण्ट्री' शब्दों का दोनों भाषाओं में अर्थ लगभग समान है। अंग्रेजी के शब्दकोषों के अनुसार 'मदर–लैण्ड' का अर्थ है, "देश जहाँ जन्म हुआ हो और जिसके प्रति भावनात्मक रूप से अभी भी व्यक्ति जुड़ा

हुआ अनुभव करता हो", "किन्तु रहता वह चाहे जहाँ हो।" उपर्युक्त अर्थों में किसी व्यक्ति की जन्म–भूमि व मातृभूमि में अंतर हो सकता है।

इस प्रकार 'संस्कृत', 'भाषा' व 'मातृ' शब्दों के अर्थ से स्पष्ट है कि संस्कृत उन लोगों की मातृभाषा है जो उस भाषा के परिवेश में जन्मे व जिन्होंने बचपन से अपने माता–पिता से अपनी टूटी–फूटी भाषा बोलना सीखी। यद्यपि उनके वर्तमान रहने वाले स्थान की भाषा उनकी देश–भाषा हो सकती है, किन्तु कहीं भी रहते हुए जिसके प्रति वह आज भी भावात्मक रूप से जुड़ा हुआ अनुभव कर उसे मातृभाषा रूप अंगीकार करते हैं और जिससे अंकुरित अन्य भाषायें मूल मातृ–भाषा के गुणयुक्त अपनी बढ़त के लिए, आपूर्ति और पोषण प्राप्त करती हैं, उनकी मातृभाषा है।

भारत में बोली जाने वाली भाषाओं के इतिहास में अशोक के शिलालेख प्रथम और पूर्ण विश्वसनीय प्रमाण हैं जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि उनमें लिखी भाषा, न केवल प्रयोग में थी अपितु राजा द्वारा मान्य थी, और जिसे उसने अपनी प्रजा को सम्बोधित करने में प्रयोग किया। किन्तु साथ ही धन (देव) अयोध्या शिलालेख (ई० पूर्व प्रथम शती), उदय का पाभोसा गुहालेख (ई० पूर्व प्रथम–द्वितीय शती), घोसूण्डी का हाथीवाड़ा गुहालेख (ई० पूर्व प्रथम शती), बेसनगर--स्तम्भ लेख, भिलसा (ई० पूर्व दूसरी शती) तथा मथुरा, पटना, कौशाम्बी, सारनाथ, सांची, बरनाला, विचपुरिया, नन्दसा, देहरादून, भरतपुर, लाहौर, नासिक, जूनागढ़, गढ़ी, देवनी–मोरी, कानाखेड़ा, एरण, अमरावती इत्यादि के प्रथम से तीसरी ईस्वी के संस्कृत के शिलालेख, कम से कम पतञ्जलि के उस कथन की पुष्टि करते है कि संस्कृत शिष्ट/ब्राह्मणों की भाषा थी, तथा कुछ विद्वानों के अनुसार, जिसे भाषा का व्याकरण पढ़े बिना ही लोग बोलते थे। इलाहाबाद के अशोक स्तम्भ तथा दिल्ली के लौह स्तम्भ पर समुद्रगुप्त की प्रशस्तियाँ तथा अन्यत्र बहुत से संस्कृत के शिलालेख, संस्कृत को कम से कम समाज के शिक्षित, भद्र--शिष्ट लोगों के साथ ही राजा और उसके प्रतिनिधियों की

भाषा तो सिद्ध करते ही है। गुप्त–काल के पूर्व की मुद्राएँ यद्यपि प्राकृत व संस्कृत मिश्र रही हैं किन्तु उसके पश्चात् कुछ को छोड़कर संस्कृत में अंकित हैं। यदि शिक्षित वर्ग की भी भाषा संस्कृत नहीं थी तो उपर्युक्त सभी लेख, किसके लिये लिखे गये थे?

'संस्कृत' व 'भाषा' शब्दों के बारे में वेद, ब्राह्मण, रामायण, महाभारत, महाभाष्य, भरत–नाट्य–शास्त्र, मनु, पाणिनि, पतञ्जलि, अभिनव–गुप्त, दण्डिन् के दिये गये संदर्भ तथा मातृ–जननी व मदर–शब्द के अर्थ, से सम्बन्धित ऊपर दिये गये विवरण यह भी दर्शाते हैं कि संस्कृत लोगों की मातृभाषा थी। इन सबके अतिरिक्त निम्नलिखित कुछ सन्दर्भ यह बताने के लिये और दिये जा रहे हैं कि संस्कृत का मातृभाषी स्वरूप था और वह सामान्य प्रयोग में थी।

१. वाल्मीकि रामायण[२५] में इल्वल द्वारा ब्राह्मण का रूप धारण कर उसके द्वारा संस्कृत बोलने के बारे में यह तो कहा जा सकता है कि यह भाषा केवल ब्राह्मणों तक ही सीमित थी किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि संस्कृत प्रयोग में नहीं थी।

२. किष्किन्धा में राम से मिलकर लौटने पर हनुमान् ने अपने राजा बालि से बताया[२६] कि ऐसा प्रतीत होता हे कि राम ने व्याकरण का भलीभाँति अध्ययन किया है, वह बहुश्रुत हैं और सामान्य अभ्यास के कारण शुद्ध, धारा–प्रवाह, बिना रूके व बिना किसी अपशब्द के प्रयोग के शब्दों को उचित क्रम से रखकर (संस्कार–क्रम–सम्पन्न) भाषा, सहज रूप से बोलते हैं, और बिना वेद का अध्ययन किये कोई ऐसे नहीं बोल सकता।

३. रावण से भयभीज सीता जब अशोक वाटिका में वृक्ष के नीचे बैठी थीं, वहीं वृक्ष के ऊपर बैठे हनुमान् का यह विचार करना[२७] कि किस प्रकार सीता से बात प्रारम्भ करें जिससे कि वह (सीता) और अधिक भयभीत न हो जाँय, और फिर द्विजाति की भाँति संस्कृत न बोल कर मानुषी

प्रकार की अर्थवत् संस्कृत में बोलने का उनका निर्णय लेना, सामान्य जन की संस्कृत और विद्वानों की संस्कृत, दोनों के प्रयोग व उनमें भेद का उदाहरण है।

४. महाभारत में आदिपर्व सम्भव पर्व में[२८] राजा के समान रूप वाले व्यक्ति का 'ब्राह्मीं वाचम् विभाषे' का उल्लेख यह अवश्य इंगित करता है कि संस्कृत कम से कम एक वर्ग–विशेष द्वारा सामान्यतः द्वारा बोली जाने वाली भाषा अवश्य थी।

५. नन्दिकेश्वर के नाट्य–साहित्य (६वी ई० पूर्व सती) की विवेचना के क्रम में यह मत व्यक्त किया गया है कि साहित्य की भाषा होने के साथ ही संस्कृत, सामान्य बोली जाने वाली भाषा थी।

६. पाणिनी ने व्याकरण के अपने ग्रन्थ का उद्देश्य 'वेदानामध्येयं' अर्थात् वेदो का सम्यक् अध्ययन बताया है। किन्तु मध्य एशिया से प्राप्त हुए 'कातन्त्र–व्याकरण' (पहली शती ई० पूर्व) का उद्देश्य 'वणिक्स्यादि संस्क्ताः लोकयात्रादिषु स्थिताः तेषां क्षिप्रं प्रबोधनार्थम्", अर्थात् लोक–यात्रा में स्थित वणिक् आदि समान्य जनों को शीघ्रता से संस्कृत सिखाना था। कातन्त्र–व्याकरण के प्रथम पाद के अन्तिम सूत्र 'लोकोपचाराद् ग्रहणसिद्धिः' (१.१.२३) का तात्पर्य है कि अव्यय, उपसर्ग, कारक, काल आदि का ज्ञान लोगों को दैनिक सामान्य जीवन से ही हो जाता है, अतः इनके लिये सूत्र की आवश्यकता ही नहीं है। "लोकोपचारानुसरणं श्रेयः" यह स्वयं बताता है कि सामान्य जीवन में संस्कृत का ही प्रयोग था। शब्दों के लिंग के बारे में संस्कृत भाषा के विद्वान् अति आग्रहशील हो जाते हैं। जैसे 'हाथी जाता है, या 'हाथी जाती है' में से क्या कहना व्याकरण से शुद्ध है। पतञ्जलि ने महाभाष्य में स्पष्ट किया है कि शब्द का लिंग किसी नियम से नहीं बंधता, वह प्रवाह के आधार पर स्थित होता है। उन्होंने 'कोऽसौ अनुमानः' प्रयोग किया है जबकि "अनुमान" नित्य नपुंसक–लिंग है। इसी प्रकार उन्होंने 'शक्यमक्षत

प्रतिहन्तुम' का प्रयोग किया है जब कि 'क्षुत' स्त्री लिंग है और 'शक्या' होना चाहिए। इसी प्रकार अनेक शास्त्रीय उदाहरण उपलब्ध हैं, जिनसे स्पष्ट है कि शब्द का लिंग व्यवहाराश्रित है। पतञ्जलि का यह विचार संस्कृत के मातृभाषी स्वरूप का ही अंग है।

७. किसी भाषा में प्लुत स्वर या ध्वनि (शब्द के अन्तिम स्वर का अपेक्षाकृत अधिक समय तक उच्चारण) व दूर से पुकारने आदि का प्रयोग उस भाषा के दैनिक जीवन में बोले जाने की बात इंगित करता है। "आक्रोश" शब्द का अर्थ है: 'क्रोध में पूरी शक्ति से चिल्लाना' जिसे सामान्य शिक्षित जन जानते हैं। गाँवों में अभी भी 'कोस' शब्द लगभग दो किलोमीटर की दूरी को कहते हैं । यह 'कोस' शब्द 'क्रोश' का अपभ्रंश है, जिसमें 'आ' उपसर्ग जुड़ने से आक्रोश बन जाता है। पूरी शक्ति से पुकारने आदि की ध्वनि या संदेश जहाँ तक पहुँचता है वह दूरी ही क्रोश या कोस है। ग्रामीण व वन–प्रदेशों में आज भी दूर तक संदेश भेजने में हम अन्तिम स्वर का उच्चारण देर तक करते हैं, जैसे ओ....ओ....ओ....., ओ...., ए..... एएएए....., सुनो.......ओओ, श्रुणु......उऊऊ, नदी तीरे.........एएएए, गच्छामि.. .... ईई। यह प्रयोग बोलीजाने वाली भाषा में ही होता है। पाणिनि का प्लुत–विधान उनकी भाषा को सामान्य–जन की दैनिक व्यवहार की भाषा स्वयं सिद्ध करता है।

८. कहा जाता है कि आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक–संहिता को लिखने के पश्चात् लोगों पर अपने ग्रन्थ का प्रभाव जानने के लिये आचार्य स्वयं पक्षी रूप में "को रूक्–को रूक्–को रूक्" अर्थात् कौन स्वस्थ है?, कौन स्वस्थ है? कौन स्वस्थ है? कहते हुए घूमने लगे। उन्हें उत्तर सुनने को मिला "मितभुक्, हितभुक, ऋतभुक्" जो कम खाता है, जो हित कर भोजन करता है, जो ऋत के अनुसार भोजन सामग्री ग्रहण करता है। प्रकारान्तर से यह जनसामान्य द्वारा समझी व बोली जाने वाली भाषा का उदहारण है।

६. कोलब्रुक के अनुसार फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता में संस्कृत अध्ययन को बढ़ावा व सुविधा देने के लिये, संस्कृत के प्रथम परिचय हेतु मूल–संस्कृत की छोटी व सरल, प्रथम चुनी गयी रचना, 'हितोपदेश', जिसका श्री विल्किन तथा सर विलियम जोन्स कृत अनुवाद फेबिल्स पिल्पे नाम से सामान्यतः ख्यात था, का मुद्रण १८०४ में किया गया। हितोपदेश का इस उद्देश्य हेतु चयन व मुद्रण, संस्कृत–शिक्षण की प्रारम्भिक अवस्था में इस कृति के महत्त्व को दर्शाता है । एक भारतीय राजा के पुत्रों, जो विष्णु शर्मा के शिष्य थे, को कहानियाँ सुनाकर गुरु द्वारा दी गई शिक्षा "पंचतंत्र" व "हितोपदेश" है । कहानियों के माध्यम से हितोपदेश के रूप में मौखिक शिक्षा देना, कम से कम समाज के किसी अंश तक ही, संस्कृत–भाषा के बोल–चाल के स्वरूप को ईसा की प्रारम्भिक शती में होना अवश्य बताता है । मूल हितोपदेश का महत्त्व व उसकी प्राचीनता की पुष्टि उस ऐतिहासिक तथ्य से होती है जिसके अनुसार चौदह सौ वर्ष पूर्व परशिया के राजा नौशेरवाँ ने अपने एक विद्वान्, ख्यातिप्राप्त चिकित्सक–वर्जुयाल, को सोद्देश्य हिन्दुस्तान भेजा और वह यहाँ से हितोपदेश की एक प्रति ले गया तथा अपने बादशाह की संतुष्टि के लिये एक मंत्री की देखरेख में पहलवी भाषा में उसका तुरन्त अनुवाद कराया । पहलवी भाषा से अरबी भाषा में हितोपदेश का अनुवाद अब्बासी घराने के खलीफा द्वितीय के निदेशाधीन, इमाम अब्दुल हसन द्वारा किया गया । वहाँ से फिर ग्रीक, सीरियाई, तुर्क, लैटिन, इटालियन, हेब्रू, स्पेनिश, फ्रांसीसी व अंग्रेजी भाषााओं के अनुवाद हुए । अर्थात् चौदह सौ वर्ष पूर्व, बच्चों की शिक्षा के लिए हितोपदेश इतनी महत्त्वपूर्ण व ख्यातिप्राप्त पुस्तक थी । बच्चे अपनी मातृभाषा में ही यहाँ हितोपदेश पढ़ते थे । निरसन्देह यह पुस्तक उससे बहुत पहले से भारत में प्रयोग में थी । कहानी सुनाकर शिक्षा देना स्वतः बताता है कि बच्चे व बूढ़े दोनों के सामान्य प्रयोग की यह भाषा थी ।

१०. आज कल भी घरों में तोता–पक्षी पालने की प्रथा है । महिलाएँ व बच्चे इन पक्षियों को कुछ शब्द बोलने का अभ्यास कराते हैं । तोते, मनुष्य की बोली सुन–सुन कर, उसी प्रकार शब्दों का उच्चारण करना सीख जाते हैं और यदा–कदा स्वयं बोलते रहते हैं या प्रतिक्रिया स्वरूप ही बोलते हैं । अपनी धर्म–दिग्विजय के क्रम में प्रयाग (इलाहाबद) में शास्त्रार्थ के लिये जब आदि शंकराचार्य ने मंडन मिश्र का निवास जानना चाहा, तो जल भरने के लिये जाने वाली स्त्रियों ने बताया कि जिनके द्वार पर तोता "स्वतःप्रमाणं परतःप्रमाणं", "फलप्रदं कर्म फलप्रदोऽजः", "जगद् ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात्" बोल रहे हो, उसे ही मंडन मिश्र का घर समझो । विशिष्ट भद्रलोक द्वारा ही नहीं, अपितु सामान्य जनों के परिवार और सेवकों द्वारा भी दैनिक बोलचाल में संस्कृत के प्रयोग का यह एक उदाहरण है ।

११ चीनी यात्री ह्वान स्वांग (युवान चांग–७वीं सदी ई०) ने भारत के विभिन्न भागों की भाषा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'मध्य देश' के लोग स्पष्ट और शुद्ध बोलने के लिए प्रख्यात हैं, उनकी अभिव्यक्ति देवों की भाँति लययुक्त और शानदार है, और उनके स्वरोच्चारण स्पष्ट और पृथक् हैं जो अन्य लोगों के लिये नियम की भाँति होते हैं। सामान्यतः विद्वान् इस बात से सहमत हैं कि ह्वान–स्वांग का यह उल्लेख संस्कृत भाषा के बोलने व उच्चारण के लिये है, क्योकि लोगों की बोली की अपेक्षा संस्कृत ही वह परिष्कृत संस्कार–युक्त अलंकृत भाषा है । ह्वान–स्वांग द्वारा पड़ोसी सीमाओं के बारे में दिये गये विवरण से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है । ह्वान–स्वांग के अनुसार सीमावर्ती पड़ोसी राज्यों और विदेशों में लोग त्रुटियों की पुनरुक्ति करते–करते, शुद्ध–स्वरूप खोकर, अपशब्दों व अनौपचारिक नकल को ही शुद्ध मान लेते हैं ।

१२ भाषा की इसी शुद्धता के लिए मध्य–देश से पंडितों को काश्मीर में शिक्षण के लिए बुलाने का उल्लेख कल्हण ने राजतरंगिणी में किया है।

१३ अपनी रानी के साथ जल–क्रीडा के समय राज सम्लवाहन (अर्थात् सातवाहन) की, वार्तालाप की घटना का अलबरूनी (१०२०–१०३० ई०) द्वारा दिया गया विवरण संस्कृत भाषा के सामान्य दैनिक प्रयोग का सही उदाहरण है । विवरण के अनुसार जल–क्रीड़ा के समय राजा ने कहा "मोदकं देहि" । रानी ने इसका अर्थ समझा 'मुझे लड्डू दो', जब कि राजा का मन्तव्य था 'मेरे ऊपर पानी मत डालो'। राजा को अपनी रानी के भाषा–ज्ञान पर बहुत दुःख हुआ । बाद में राजा ने इसीलिए संस्कृत के व्याकरण–शिक्षण की सरल–विधि की व्यवस्था कराई । सोमदेव व क्षेमेन्द्र ने भी इसी राजा की इसी घटना को कुछ परिवर्तित रूप में "मोदकैर्देव परिताडय" में कहा है । इस विवरण में राजा ने स्वयं ही अर्थ समझने में त्रुटि की थी । घटना से क्षुब्ध राजा को उनके मंत्री शववर्मा ने संस्कृत के बारह वर्ष के पाठ्यक्रम को छः माह में ही पूर्ण करा देने का न केवल आश्वासन दिया, अपितु छः माह में राजा को सफलतापूर्वक अपनी पद्धति से संस्कृत व्याकरण सिखा दी । राजा ने प्रसन्न होकर शववर्मा को नर्मदा के तट का प्रशासक नियुक्त कर दिया ।

१४ एक लकड़हारे को अपने कन्धों पर अत्यधिक भार ले जाता देखकर, किसी श्रेष्ठ व्यक्ति का संवेदनशील भाव में उससे पूछना[२६] कि "क्या यह अधिक भार तुम्हारे कन्धों को कष्ट नहीं देता" और प्रत्युत्तर में लकड़हारे का कहना है कि "यह वैसा कष्ट नही देता जैसा (आपके द्वारा) "बाधते" के स्थान पर "बाधति" (का दोष पूर्ण प्रयोग) । सम्बन्धित श्लोक जनश्रुति में है । एक श्रेष्ठ व्यक्ति (जो दोषपूर्ण भाषा बोला) तथा निम्न आर्थिक स्तर के सामान्य जन के बीच दैनिक कार्य व्यापार में संस्कृत भाषा में वार्तालाप का यह प्राचीन प्रचलित श्लोक उदाहरण मात्र है । यदि इसे घटना न मानकर किसी शिक्षक द्वारा बनाया गया उदाहरण ही माना जाय तो भी यह सर्वविदित है कि शिक्षण कार्य में उदाहरण सामान्य सामाजिक परिवेश से ही दिये जाते

है । अर्थात् समाज में संस्कृत दैनिक कार्य--व्यवहार--वार्तालाप की भाषा थी ।

१५ प्रसिद्ध राजा भोज (१०१८--१०६०) विषयक ग्रन्थ "भोज--प्रबन्ध" के अनुसार कवि लक्ष्मीधर, जो द्रविड देश से अपने परिवार समेत धारा–नगरी में बसने के लिए आये थे, की आवास–व्यवस्था के लिए राजा ने मुख्यामात्य को निर्देश दिये । इधर–उधर ढूँढने पर भी कोई ऐसा स्थान नहीं मिला जिसमें इस आये हुए विद्वान् हेतु आवास की व्यवस्था की जा सके । अतः मुख्यामात्य ने एक कुविन्द (जुलाहे) से अपना घर इस प्रयोजन हेतु खाली करने के लिए कहा । कुविन्द ने राजा के यहां जाकर, सादर प्रणाम करके, बताया कि मुख्यामात्य उसे "मूर्ख" मान कर उससे घर खाली करने को कह रहे हैं और निवेदन किया कि महाराज ही निर्णय करें कि क्या वह 'मूर्ख' है । यह कहकर उसने अधोलिखित श्लोक सुनाया –

"काव्यं करोमि नहि चारूतरं करोमि
यत्नात् करोमि यदि चारूतरं करोमि ।
भूपालमौलिमणिमण्डितपादपीठ
आज्ञां विधेहि कवयामि वयामि यामि।।"

अर्थात् मैं कविता करता हूँ, लेकिन बहुत सुन्दर नहीं करता, किन्तु यदि यत्न से करता हूँ तो सुन्दर भी करता हूँ । हे महाराज! आज्ञा दीजिए (मैं) कविता करता हूँ, कपड़ा बुनता हूँ और जाता हूँ ।

इस प्रसंग के बारे में यह कहा जा सकता है कि यह रचना किसी कुविन्द की नहीं है, अपितु किसी कवि ने 'यामि' (अर्थात् जाता हूँ) शब्द से पूर्व 'व' अक्षर जोड़कर 'वयामि' (अर्थात् बुनता हूँ) और उससे भी पूर्व 'क' जोड़कर 'कवयामि' (अर्थात् कविता करता हूँ), शब्द के द्वारा एक छोटे शब्द में एक--एक नया अक्षर जोड़ कर, नये

अर्थ पूर्ण बड़े शब्द गढ़ने की कला प्रदर्शित की है । खेल के माध्यम से शब्द बनाना सिखाने की यह विधा छोटे बच्चों को मातृभाषा–स्वरूप–शिक्षण की है । अग्रेंजी भाषा के 'लेक्सीकान' खेल के ताश के पत्ते, जिन पर अग्रेंजी की वर्णमाला लिखी होती है, शब्द गढ़ना सिखाने के लिए मातृभाषी की भाँति अग्रेंजी भाषा पढ़ाने की विधि सर्वविदित है । कुविन्द का पद्य छोटे बच्चों को मातृभाषा–शिक्षण का एक प्रतीक है और साथ ही संस्कृत के मातृभाषी स्वरूप को स्पष्ट करता है ।

१६ रामचन्द्राचार्य (१४वीं शताब्दी) ने अपनी "प्रक्रिया–कौमुदी" में शताधिक अपाणिनीय सामान्य प्रयोग के शब्दों को सिद्ध किया जो संस्कृत मातृभाषी स्वरूप को ही इंगित करता है । उत्तरी बंगाल के स्थानीय राजा मूसा खाँ के संरक्षण में पण्डित मथुरेश ने १६००–१६२५ ई० की अवधि में 'शब्द–रत्नावली–कोष' की रचना की थी । एशियाटिक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित इस ग्रन्थ में सुकुमार सेन ने लिखा है कि इस शब्द–कोष में बंगला भाषा के कुछ अप्रच्छन्न और उससे कहीं अधिक संस्कृत वेष में प्रच्छन्न शब्द सम्मिलित हैं । इस कोष में प्राकृत तथा अपभ्रंश शब्द भी हैं । जहाँ तक बंगला भाषा के अप्रच्छन्न शब्दों को इस कोष में लेने की बात है, यह तो आश्रय–दाता के परिवेश के कारण होना स्वाभाविक है, किन्तु उसमें बंगला भाषा के शब्द होना, वहाँ के सामान्य जीवन के किसी अंग–अंश–वर्ग में संस्कृत मातृभाषा के अस्तित्व को अवश्य इंगित करता है । सुकुमार सेन ने उपर्युक्त श्रेणी के अप्रछन्न बंगला–शब्द किन्तु संस्कृत में स्वीकार शब्दों की ऐसी सूची दी है । यदि उस क्षेत्र में संस्कृत किसी की मातृभाषा न होती तो संस्कृत शब्दकोष में ऐसे मातृभाषी शब्दों के समायोजित होने का कोई औचित्य ही न था ।

१७ नगरों व ग्रामों में आज भी रामायण, महाभारत, भागवत आदि सार्वजनिक रूप से बांची व सुनाई जाती है । राजाओं और सम्भ्रान्त

जनों से लेकर सामान्य अनपढ़ भी बढ़ी संख्या में इन्हें ध्यान से सुनते व समझते हैं । विगत पचास वर्षों में यद्यपि कुछ क्षेत्रों में संस्कृत भाषा के स्थान पर केवल स्थानीय भाषाओं में ही अब यह ग्रन्थ सुनाये जाने लगे हैं, किन्तु अभी भी बहुत से क्षेत्रों में संस्कृत अथवा उसके साथ ही अन्य स्थानीय भाषा में रूपान्तर सहित यह ग्रन्थ सुनाये जाते हैं । यदि संस्कृत कभी भी, कहीं भी, किसी वर्ग की लोकप्रिय भाषा नहीं थी और लोग उसे नहीं समझते थे तो सार्वजनिक रूप से बड़े पैमाने पर सब के द्वारा इस भाषा में यह ग्रन्थ सुनने की ऐतिहासिक परम्परा न चल पाती ।

१८. योगेन्द्रदेव के 'परमार्थप्रकाश' की अधोलिखित पुष्पिका से साहित्यिक–संस्कृत और सामान्यजन की संस्कृत का अन्तर स्पष्ट करने में और सरलता हो जाती है । "अत्र प्रचुरणे पदानां संधिर्न्न कृतः वाक्यानि च भिन्न–भिन्नानि कृतानि सुखबोधार्थं किं च परिभाषा – सूत्रं पदयोः संधिर्विवक्षितो न समासांतर तयोरस्तेन कारणेन लिंगवचन क्रिया–कारक–संधि–समास–विशेषण–वाक्य–समाप्त्यादिकं दूषणमत्र न ग्राह्यं विद्धदभिरिति।" अर्थात् सरलता से समझने के लिये बहुत से वाक्यों को पृथक्–पृथक् तथा बिना सन्धि व समास इत्यादि के लिखा गया है यहाँ विद्वान् दोष न ग्रहण करें ।

संस्कृत मातृभाषियों का यही स्वरूप पिछली शताब्दी के मध्य तक रहा । किन्तु यूरोपीय हाथों मे देश की सत्ता जाने के अनन्तर पिछली शती के अन्तिम चतुर्थांश से विभिन्न कारणों से, संस्कृत मातृभाषियों की संख्या में विशेषतः कमी आती चली गई ।

कुछ लोगों के अनुसार संस्कृत भाषा कठिन होने के कारण "मृत" हो गयी । इस भाव से तो कोई भी शिक्षा स्वयं में कठिन है । गणित व तत्सम्बन्धी विषय कठिन समझे जाते हैं । न केवल भारत अपितु विश्व के अधिकतर भाग में संयुक्त–राष्ट्र–संघ जैसी संस्था द्वारा इतना प्रयास और

व्यय किये जाने पर भी, सभी लोग शिक्षित तो क्या, साक्षर भी नहीं किये जा सके । इसका अर्थ यह नहीं है कि वहाँ की भाषा कठिन है । विगत शताब्दी में भारत में प्रेसीडेन्सी कोर्ट, कलकत्ता के न्यायाधीश स्वरूप आये योरोपीय द्वारा संस्कृत सीख कर, तीन वर्ष में ही कालिदास के "अभिज्ञान–शाकुन्तलम्" का विश्व–विख्यात, अंग्रेजी अनुवाद करने का उदाहरण स्वयं में इस बात की पुष्टि करता है कि संस्कृत छः मास में ही सीखी जा सकती है, जैसा कि 'कातन्त्र–व्याकरण' के सन्दर्भ में ऊपर लिखा जा चुका है ।

इसी कठिनाई के सम्बन्ध में संस्कृत पढ़ाये जाने पर कुछ लोग उसे दबाव व जबरदस्ती कहते हैं । ऐसे लोगो के लिये ही, संस्कृत–शिक्षा के बारे में देश के प्रथम प्रधान मंत्री नेहरू जी जो पाश्चात्य गुणग्राही और पूर्णतः राष्ट्रीय और भारतीय थे, ने कहा था "यहाँ दबाव या जबरदस्ती की बात कहाँ है? यदि हम बालक को अंकगणित या रेखागणित सीखने के लिये कहते हैं तो क्या इसे जबरदस्ती कहा जायगा।"

किसी भी देश में, किसी भी भाषा की शिक्षा, किसी भी रूप में स्वयं "संस्कार" है। यही बात संस्कृत मातृभाषियों पर लागू है। निर्धारित मानकों के अनुसर स्पष्ट, शुद्ध व सूक्ष्म में विचारों की ठीक–ठीक अभिव्यक्ति, भाषाई व्यावहारिक अभ्यास अथवा/और औपचारिक शिक्षा–संस्कार से होती है। संस्कृत–भाषा का संस्कार पाणिनी द्वारा सदैव के लिए किया जा चुका है, किन्तु प्रत्येक पीढ़ी को अगली पीढ़ी के बच्चों के उच्चारण का संस्कार करना पड़ता है, क्योंकि वह बोल कर ही सीखते है। "त्रुटियों की पुनरुक्ति" यदि सुधारी नहीं गयी तो "वही मानक बन जाती है" और "शुद्ध प्रकार" शनैः शनैः समाप्त हो जाता है।[३०] भाषा–शास्त्रीय दृष्टिकोण से भी तत्भव शब्दों में मुख्य भेद तो केवल शुद्ध उच्चारण में ही है।

संस्कृत–साहित्य के इतिहास के बारे में उत्तर प्रदेश सरकार की संस्था, "उत्तर–प्रदेश संस्कृत–संस्थान" के एक नवीनतम प्रकाशन 'संस्कृत–वाङ्मय का वृहद् इतिहास' में, संस्कृत के मातृभाषी–स्वरूप विषय

को नहीं छुआ गया है। वेदांग -व्याकरण के क्रम में पाणिनीय अष्टाध्यायी की चर्चा में यह उल्लेख अवश्य किया गया है कि जिस संस्कृत भाषा का व्याकरण पाणिनि लिख रहे थे, उसके श्रुति-विधान, दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त वस्तुओं के नाम तथा उस समय प्रचलित मुहावरों के प्रयोग आदि के संदर्भ, संस्कृत को उस समय की लोक-भाषा सिद्ध करते हैं। संस्कृत मातृभाषियों व संस्कृत के लोकभाषा स्वरूप व उसके प्रभाव के भौगोलिक क्षेत्र के प्रसारण व आकुंचन की ऐतिहासिक व वर्तमान स्थिति का उल्लेख संस्थान के प्रकाशन में नहीं किया गया है।

इस 'वृहद् इतिहास' में काश्मीरी शैव-दर्शन के 'शैवी-दर्शनविद्या' शीर्षक के अधीन 'परम्परा का उच्छेद' के अन्तर्गत, शासक सिकन्दर बुतशिकन के इस्लामीकरण के दौर में "अनेकों सुविशालकाय ग्रन्थों का तभी सर्वनाश हो गया", "पन्द्रहवीं शती में काश्मीर भूमि" "से भगाये गये" पण्डित "अपनी सारी सम्पत्ति को कश्मीर में ही छोड़कर एक मात्र पुस्तकों के भार को सिर पर उठा कर कश्मीर से भाग निकले", व "शासक की आज्ञा से बड़े-बड़े पुस्तकालयों और शैक्षणिक संस्थाओं को जला" दिया गया "तथा उसी शताब्दी के उत्तर-भाग में" "सिकन्दर के एक विशाल दृष्टि वाले पुत्र जैनुलाबदीन ने शिर्यभट्ट नामक पण्डित के परामर्श से कश्मीर के ब्राह्मणों को वापस बुलाकर वहाँ पुनः बसा दिया। वे ब्राह्मण अपनी ग्रन्थ-सम्पत्ति को पुनः अपने सिर पर उठा कर वापिस लौट आये" के उल्लेख के साथ ही "अब कांग्रेस के राज्यकाल में कश्मीर से पुनः भगाया गया। उधर वापिस जाकर बसने की और वहाँ सुरक्षित और सम्मानपूर्वक रहने की अब कोई आशा शेष नहीं रही, क्योंकि इस युग में जनता का सर्वत्र शासन है। काश्मीर की ६५ प्रतिशत जनता कट्टर स्वभाव के जमाते-इस्लामी के प्रभाव में है और पाकिस्तान से सैनिक शिक्षा को और भयानक अस्त्रों को प्राप्त करने वाले आततायी-विद्रोहियों के आतंक से दबी हुई है। ऐसी स्थिति में वर्तमान ढंग की और वर्तमान नीति वाली भारत सरकार कुछ कर नहीं सकेगी" जैसे संदर्भो को स्थान प्राप्त हुआ है।

'कश्मीर–शैव–तंत्र' के सन्दर्भ में 'अध्यात्म' के अन्तिम शीर्षक 'मोक्ष प्राप्ति के उपाय' के अन्तिम वाक्य की अभिव्यक्ति कि "वर्तमान युग में कांग्रेसी और भूतपूर्व अंग्रेजी शासकों के दुःशासन में काश्मीर की पुरातनी संस्कृति का जो विनाश होता रहा तथा जो इस समय हो रहा है, उसमें से क्या पता है कि कोई धार्मिक या दार्शनिक परम्परा बचकर निकल भी सकेगी। अस्तु, शिव की लीलाओं में से यह भी एक लीला है, जिसका उत्तरदायित्व उसने भारतीय नेताओ के सिर पर चढ़ा दिया है।", विचाराधीन विषय से कुछ हटकर दिखाई देते हैं।

"संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास" के यह उद्धरण यदि संस्कृत भाषा के भौगोलिक क्षेत्र के प्रसारण–संकुचन के पूरे ऐतिहासिक विवरण के क्रम में दिये जाते तो भिन्न बात होती किन्तु सत्य होने पर भी वर्तमान रूप में यह एकांगी होने के कारण संस्थान के इतिहास लेखन की विषय–निष्ठा पर प्रश्न–चिन्ह लगाता प्रतीत होता है।

संस्कृत का मातृभाषी स्वरूप क्या है? इसके बारे मे पूर्वोक्त परमार्थ–प्रकाश की पुष्पिका बहुत स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त मातृभाषी प्रारम्भिक शिक्षा में 'प्रहेलिका' 'पहेली' "बूझ बुझौवल" का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह बच्चों की कल्पनाशक्ति को बढ़ाने, समस्याओं का समाधान खोजने और नये मार्ग ज्ञात करने, की क्षमता को बढ़ाती हैं। संस्कृत की बहुत सी प्रहेलिकायें लगभग उसी रूप में क्षेत्रीय भाषाओं में आ गई हैं। कुछ प्रहेलिकायें केवल शब्द–सामर्थ्य की शिक्षा से सम्बन्धित होती है, कुछ अंकगणित–बीजगणित –रेखागणित से और कुछ केवल कल्पनाओं और जीवन के व्यावहारिक पक्षों से। प्रथम श्रेणी की प्रहेलिकाएँ, औपचारिक प्राथमिक शिक्षा से पूर्व अथवा उस शिक्षा से वंचित बच्चों को उनके माता–पिता, परिवार के अन्य जन, तथा बाल–सखा के द्वारा खेल स्वरूप पूछी, बताई और सिखाई जाती हैं। इसमें अपने परिवेश से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं । औपचारिक शिक्षा के विषयों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। दूसरी श्रेणी की प्रहेलिकाएँ, प्रथम श्रेणी के साथ ही कक्षा के अनुसार, बालक के लिये भाषा, गणित, बीजगणित,

रेखागणित आदि के सिद्धान्त, प्रश्नोत्तर के खेल के माध्यम से, सीखने का साधन होती हैं।

प्रथम श्रेणी की संस्कृत की यह प्रहेलिकाएँ मुख्यतः संस्कृत मातृ–भाषियों की ही हैं। दूसरी श्रेणी की भी प्रहेलिकाएँ बड़ी सीमा तक इसी क्षेत्र में है। प्रहेलिकाओं का होना ही संस्कृत के मातृभाषी स्वरूप को इंगित करता है।

यही स्थिति लोकोक्तियों, सूक्तियों की भी है, जो दैनिक लोकभाषा में प्रयोग की जाती है। जैसे, यथा राजा तथा प्रजा, प्रथम–ग्रासे मक्षिकापातः, सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः, नदीषु वासो मकरेषु शत्रुता, नदी–तरणि–संयोग, विषस्य विषमौधम्, दुग्धं तोयम् पृथक् कृतम्। लोकोक्ति शब्द स्वयं में सामान्य जन के द्वारा इसके व्यवहार व संस्कृत के मातृभाषी स्वरूप को इंगित करता है।

त्याज्य, अपशब्द, अश्लील अथवा गाली माने जाने वाले शब्द, वाक्य या कहावत जो सामान्यतः लिखित साहित्य में नहीं मिलते, अपने शुद्ध संस्कृत–मातृभाषी रूप में परम्परा द्वारा जन–साधारण में व्याप्त हैं और बच्चों को संसर्ग से प्राप्त होते हैं, यद्यपि कहीं पढ़ाये नहीं जाते। इस प्रकार के शब्दों पर तो नहीं, किन्तु कुछ अन्य शब्दों के प्रयोग पर प्रकाश डालना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि आधुनिक शिक्षित युवक कुछ शब्दों को हेय अथवा असंस्कृत समझ कर त्यागने का प्रयास करते हैं अथवा अंग्रेजी या अन्य भाषा का समझ कर उसके प्रयोग से अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

बहुत सी बस्तियों, नगरों व मोहल्लों के पुराने नाम के बाद –'गंज' शब्द जुड़ा है, यथा–हजरतगंज, नवाबगंज, अचलगंज, आदि। संस्कृत शब्द 'गंज' का अर्थ है मण्डी, खान, खजाना, भण्डार आदि। कल्हण ने 'चल–गंज' को चलित राजकीय–कोष के रूप में प्रयोग किया है। ऊपर दिये गये बस्तियो के नाम अपने पूर्ववर्ती शब्द के साथ 'गंज' जुड़कर उसी से सम्बन्धित बाजार आदि के द्योतक हैं। द्वितीय विश्व युद्ध तक देश में दैनिक

आवश्यकता यथा खाद्य सामग्री आदि की आपूर्ति के लिये बैल गाडियाँ रात से ही आकर बड़े नगरों के द्वार पर रुक जाया करती थी और बड़े भोर से ही बाजार में माल लगाकर बेचने लगती थी। यह परम्परा अभी भी कुछ जगहों पर बनी है। यतः यहाँ सब उत्पादक या विक्रेता रात से ही एकत्र होकर बाजार का स्वरूप ले लेते थे, अतः 'निशातगंज' रात से ही लगा बाजार है। आज कल भी यातायात व्यवस्था के कारण मौरंग, बालू आदि के ट्रक, नगर के बाहर ही रात्रि में आकर रूकते हैं, और प्रातः वहाँ से बिक्री होकर, नगर में जाते है। 'निशातगंज' रात से लगा हुआ बाजार, का यह परिवर्तित स्वरूप है।

राजमार्ग, राजपथ, वीथिका आदि भद्रलोक के प्रयोग के शब्द हैं किन्तु, सामान्य–जन तो गली में रहता है जिनकी संख्या अधिक होती है। कल्हण की "दुर्गागल्यां" "दुर्गा–गली" इसी मातृ–भाषा का प्रतीक है। आज भी गांव में पैदल जाने का सीधा रास्ता 'पगडण्डी', संस्कृत मातृभाषियों की पगदण्डी है।

अंगुरी (अंगुली), छुरी (क्षुरी), कलस (कलश), तरवार (तलवार) आदि शब्द प्रयोग करने वालों को अनपढ़ समझने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, जब कि वास्तविकता यह है क़ि कोष्ठक में लिखे शब्दों के साथ–साथ यह सभी शब्द पूर्ण रूप से शुद्ध संस्कृत के हैं। वैसे भी क्लिष्ट शब्दों को प्रयोग करने की प्रवृति के कारण लोग 'बाल' के, स्थान पर 'केश' शब्द का प्रयोग करते हैं जब कि 'बाल' शुद्ध संस्कृत शब्द है, अपने स्थान पर ठीक प्रयोग किया जाता है। लिखने की कलम को लेखनी कहने पर आज कल बल है जबकि 'कलम' शब्द इसी अर्थ में "हलायुध–कोष" में अंकित है। कलमी आम की "कलम" भी शुद्ध संस्कृत है। लात से मारना, बालकों में आपस में साधारण बात है, 'लत्तया प्रहारयति' इसी मातृभाषा को इंगित करता है।

बच्चों के लिए 'लाला', लड़का 'लाल' शुद्ध संस्कृत शब्द हैं। इनके प्रयोग से आज का पढ़ा–लिखा आदमी बचता है। शादी, बारातों में सब्जियों

का गर्म 'सूप' और फलों का ठण्डा 'जूस' देने का प्रचलन, विदेशी संस्कृति की नकल स्वरूप, अपने को उच्च–वर्गीय कक्ष में स्थापित करने के लिए समाज में बढ़ता जा रहा है। लेकिन "सूप" और "जूस" प्रयोग करने वालों को यह नहीं ज्ञात है कि 'सुखेन पीयते इति सूपः' सुख से जिसे पीते हैं वह "सूप" है। यह मेरी व्याख्या नहीं है, अपितु सदैव से रही हे। जब आप 'सूप' पीते या पिलाते हैं तो अंग्रेजी के क्षेत्र में घुसने के प्रयास के बावजूद आप वस्तुतः संस्कृत–क्षेत्र में ही अटक कर रह जाते हैं। यही स्थिति 'यूषः'– जूस की है। देश में पंचवर्षीय योजनाओं के चलते सरकारें और उनके अधिकारी, आर्थिक संसाधनों को 'पूल' करने की बात अपने अंग्रेजी और हिन्दी के प्रतिवेदनों में अंग्रेजी भाषा का ही शब्द समझ व मान कर प्रयोग करते हैं । वह यह भूल जाते हैं कि जब वह अपने संसाधन अंग्रेजी में 'पूल' करते हैं तो वह शुद्ध संस्कृत शब्द का ही प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी का 'पूल' शब्द इसी अर्थ–भाव में संस्कृत का 'पूल' ही है। मंहगाई "महर्घ" और घाम (धूप की तेजी) 'घर्मः' संस्कृत ही हैं। संस्कृत–मातृभाषी तो खाद–पांस खेतों में डालते है, उर्वरक जिस पर अधिक बल है वह दूसरी चीज है। 'खाद' और 'पांस' दोनों ही शुद्ध संस्कृत शब्द हैं। तात्पर्य यह कि हमारे दैनिक प्रयोग के सभी शब्द शुद्ध संस्कृत के हैं, और उनके स्थान पर अन्य किसी कठिन शब्द का प्रयोग भाषा के प्रवाह के विपरीत है।

केवल शब्द ही नहीं, उनके साथ उनकी क्रिया और पूरा वाक्य ही हमारे नित्य के प्रयोग में संस्कृत में हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोग "जाति बा" (क्या वह जाता है?) आयाति बा (क्या वह आता है?) , जिसका वह दिन भर प्रयोग करते हैं शुद्ध रूप से पूर्ण संस्कृत वाक्य है। आवश्यकता केवल जानने अथवा किसी के द्वारा समझाने–बताने की है। समग्र रूप से योगेन्द्रदेव के परमार्थ–प्रकाश की पुष्पिका संस्कृत के मातृभाषी स्वरूप का उदाहरण है।

वस्तुतः संस्कृत–मातृभाषियों का सीमित शब्द–कोष, साहित्यिक–ग्रन्थों में उतना प्रयुक्त न होने के कारण संस्कृत विद्वानों के सम्पर्क में कम आ पाता है। संस्कृत–मातृभाषी–शब्दों के प्रयोग पर शंका करने वाले विद्वान् बहुधा संस्कृत–कोष से पुष्टि के बाद ही संतुष्ट हो पाते हैं। मातृभाषा के

पठन–पाठन की सामग्री भी भिन्न है। इसके विशेषज्ञ भी भिन्न व इने–गिने ही हैं।

यह उल्लेख संस्कृत के मातृभाषी स्वरूप के संक्षेप में मात्र उदाहरण स्वरूप हैं जो संस्कृत–भाषा के साहित्यिक स्वरूप से भिन्न है। वस्तुतः इस पर एक पृथक् ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता है। संस्कृत–मातृभाषा के प्रचार–प्रसार में इसी विधि के पारंगत लोगों की आवश्यकता और उनका योगदान अपेक्षित है।

संस्कृत–भाषियों के पूर्वोक्त ऐतिहासिक विवरण व स्वरूप के क्रम में यह उल्लेखनीय है कि 'मातृभाषा' शब्द यद्यपि बहुत सरल है और प्रत्येक व्यक्ति द्वारा समझा जाता है किन्तु विशेषज्ञों द्वारा विभिन्न सन्दर्भों और अवसरों पर भिन्न–भिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है। जनगणना वर्ष १८८१ के समय पंजाब में प्रगणकों को प्रदत्त निर्देशों में 'मातृभाषा' 'प्रत्येक व्यक्ति के माता–पिता द्वारा गृहकार्यों में सामान्यतः बोली–चाली जाने वाली भाषा–चाहे जनगणना के समय जहाँ वह रह रहा हो, वहाँ की वह भाषा हो अथवा न हो', के रूप में परिभाषित है। यद्यपि मातृभाषा के बारे में १८८१ की जनगणना से ही प्रश्न पूछा जाता रहा है किन्तु प्रश्न का स्वरूप और उसके भावार्थ में परिवर्तन होता रहा है। वर्ष १८८१ में तथा १९३१ के पश्चात् प्रश्न केवल 'मातृभाषा' पर रहा है। जनगणना–वर्ष १८९१ में 'माता–पिता की भाषा', १९०१ तथा १९२१ में 'सामान्यतः घर में प्रयुक्त भाषा', वर्ष १९४१ व १९५१ में 'शिशु के पालने–झूले में सर्वप्रथम उससे बोली गयी भाषा', के रूप में परिभाषित की गयी है।

'सहायक/अनुपूरक भाषा' व सामान्यतः प्रयुक्त अन्य भाषा के बारे में पूछा जाना १९३१ की जनगणना से प्रारम्भ हुआ। १९४१ में 'सामान्यतः प्रयुक्त अन्य भारतीय भाषा', १९५१ में 'एक अन्य भारतीय भाषा' तथा १९६१ में दो 'भारतीय भाषाओं' के बारे में प्रश्न पूछा गया था। जनगणना वर्ष १९६१ में मातृभाषा 'पालने/झूले के समय शिशु से बोली गयी भाषा' तथा जनगणना १९७१ में 'माता द्वारा बच्चे से बाल्यकाल में बोली गयी भाषा' के रूप में परिभाषित की गयी।

देश के सभी प्रदेशें के शिक्षा–मंत्रियों के अखिल भारतीय सम्मेलन में भाषाजात अल्पसंख्यकों को प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर मातृभाषा से शिक्षा प्रदान करने के अधिकार के बारे में, प्रथम राष्ट्रीय संकल्प १९४९ में लिया गया था। उसमें यह भी निर्णय लिया गया था कि किसी विद्यार्थी की मातृभाषा, उसके माता–पिता अथवा अभिभावक द्वारा घोषित भाषा मानी जायेगी।

भारत सरकार के निर्देशों के अनुसरण में उत्तर–प्रदेश सरकार तथा उसके शिक्षा–विभाग ने विद्यार्थियों की मातृभाषा अंकित किये जाने विषयक अपने अनुदेशों में मातृ–भाषा को 'माता–पिता' अथवा अभिभावक द्वारा अपने 'वार्ड' के लिए घोषित भाषा स्वरूप परिभाषित किया है।

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड और भारत सरकार द्वारा इस संकल्प की पुष्टि के बाद, संविधान में भाषाई अल्पसंख्यकों के संरक्षण के प्राविधानों के प्रारूप में इसे सम्मिलित किया गया और २६ नवम्बर १९४९ को मौलिक अधिकारों (अनुच्छेद २९–३०) तथा राज्य भाषा (अनुच्छेद २४७–२५०) में अंगीकृत हुआ। यह उल्लेखनीय है कि मातृभाषा पद भारतीय संविधान में प्रयुक्त तो हुआ है किन्तु उसमें परिभाषित नहीं है।

'संस्कृत–मातृभाषा' के बारे में १८९१ की जनगणना की सामान्य आख्या के अनुसार "यह तथ्य उल्लेखनीय है कि ३०८ व्यक्तियों–अभिभावकों द्वारा घरेलू मामलों में आदतन बोली–चाली जाने वाली भाषा के रूप में 'संस्कृत' अंकित करायी गयी है। पच्चीस शताब्दियों तक जीवित बची यह संख्या, पिछली जनगणना की संख्या से एक हजार कम है, फिर भी कठिनाई से यह आशा की जा सकती है कि महिलायें प्रश्नगत घरेलू कार्यों के सभी अवसरों पर पौराणिक भाषा बोलती रही थीं। सत्य यह प्रतीत होता है कि भारत के दक्षिण भाग में गुजरात के रेशम–बुनकरों के पुरोहित–परिवारों

में 'नागरम' पद का प्रयोग अपनी जाति की सामान्य भाषा से भिन्न प्रदर्शित करने के लिए किया गया है, जबकि देश के शेष भाग में यह प्रविष्टियाँ अपने धर्म की प्राचीन बोली के प्राथमिक अध्ययन करने वाले स्कूली बालकों, अवर–स्नातकों तक मानी जा सकती है।"

जनगणना वर्ष १८६१ में संस्कृत–मातृभाषियों की संख्या में अचानक एक हजार से अधिक की कमी, देश के पुनर्जागरण, आधुनिक राष्ट्रीयता के विचार का उत्थान, गुजरात निवासी संस्कृत के उद्भट विद्वान्, वेद–भाष्यकार, आर्य समाज के संस्थापक, समाज–सुधारक स्वामी दयानन्द जी सरस्वती द्वारा राष्ट्रीय हित में हिन्दी के ही प्रयोग तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उद्भव आदि के कारण हुई हो सकती है। किन्तु वस्तुतः संस्कृत–मातृभाषियों की संख्या की यह अधोगामी प्रवृत्ति वर्तमान शताब्दी की जनगणना–आख्याओं में भी अंकित है।

संस्कृत–मातृभाषियों की गणना के प्रति जनगणना कार्याधिकारियों की गम्भीरता तथा संस्कृत–मातृभाषियों की स्वयं की सजगता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सन् १९३१ की जनगणना में उत्तर प्रदेश में एक भी संस्कृत–मातृभाषी अंकित नहीं है, यद्यपि अन्य मातृभाषी (फारसी ६, पुरूष ८, स्त्री १) अंकित है। जनगणना १९५१ में पुर्तगाली, इटेलियन, जापानी, नार्वेनी, फ्रांसीसी और अरबी मातृभाषी स्वरूप अंकित हैं, किन्तु संस्कृत–मातृभाषी अथवा संस्कृत का अंकन इसमें नहीं है । यहाँ तक कि वाराणसी जनपद में भी अरबी और फ्रांसीसी भाषियों का अंकन है पर संस्कृत का नहीं।

संस्कृत–मातृभाषियों के प्रति गंभीर न होने की यह प्रवृत्ति भाषाजात अल्पसंख्यक–आयोग के प्रतिवेदनों में अभी भी है जहाँ संस्कृत को पौराणिक भाषा (क्लासिकल लैंग्वेज) अथवा शास्त्रों की भाषा की भाँति संदर्भित किया

गया है और कुछ इसी अर्थ में शिक्षाविदों व संस्कृतज्ञों द्वारा स्वीकार भी किया जाता है। 'पौराणिक' को 'पुराने' के अर्थ में कहना ठीक हो सकता है किन्तु केवल शास्त्रों की भाषा तक इसे सीमित करने का कोई औचित्य नहीं है।

अंग्रेजी भाषा के शब्द कोष में 'क्लासिक' शब्द का अर्थ है 'प्राचीन ग्रीक और रोमन सभ्यता, विशेषतः उनकी भाषा, साहित्य और दर्शन का अध्ययन'। उसी प्रकार 'क्लासिक भाषा' का अर्थ है, स्वरूप, रीति अथवा विषय में पारम्परिक भाषा का एक रूप जो प्राचीन समय में प्रयुक्त था और अब प्रयोग में नहीं है अथवा केवल औपचारिक लेखन में ही प्रयोग होता है।

रूप, रीति और विषय के "पारम्परिक" "यथावत्" अपरिवर्तनशील अर्थ में तो संस्कृत को किसी सीमा तक "क्लासिक" अथवा "पौराणिक" भाषा माना जा सकता है किन्तु संस्कृत–भाषा के दैनिक–समाचार पत्र, साप्ताहिक–पाक्षिक–मासिक पत्र–पत्रिकाओं और बड़ी संख्या में पुस्तकों के प्रतिवर्ष प्रकाशन सम्बन्धी भारत के समाचार पत्रो के महापञ्जीयक की वार्षिक रिपोर्ट को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि संस्कृत प्राचीन काल में ही प्रयुक्त होती थी और अब प्रयोग में नहीं है अथवा केवल औपचारिक लेखों में ही प्रयुक्त होती है। संस्कृत भाषा के पत्र–पत्रिकाओं की सूची जो भारत के समाचार पत्र–पत्रिकाओं के महापञ्जीयक की वार्षिक रिपोर्ट में दी गयी है, वह इस बात को स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त है कि संस्कृत प्राचीन काल की और अब अप्रयुक्त–पौराणिक 'क्लासिक' भाषा के अर्थ में 'क्लासिक' नहीं है। उसका पारम्परिक स्वरूप बने रहने और उसके न बदलने के अर्थ तक ही इसे पौराणिक–क्लासिकल माना जा सकता है।

भारत के समाचार पत्र–पत्रिकाओं के महापञ्जीयक की रिपोर्ट के अनुसार १६८४ में देश के तेरह प्रदेशों, केन्द्र शासित क्षेत्रों में संस्कृत के दो

दैनिक, चार साप्ताहिक, एक पाक्षिक, बारह मासिक, दस त्रैमासिक तथा दो अन्य जिनका योग इकतीस है, प्रकाशित हुए थे। प्रदेशवार संस्कृत--भाषा के समाचार पत्र--पत्रिकाओं की भारत में १६८४ की संख्या अधोलिखित रही है।

पत्रिकाये	उत्तर प्रदेश	बगाल	दिल्ली	महाराष्ट्र	मध्य प्रदेश	कर्नाटक	जम्मू कश्मीर	तमिलनाडु	बिहार	पंजाब	उडीसा	राज स्थान	हिमाचल प्रदेश	योग
दैनिक	१					१								२
साप्ताहिक	३			१										४
पाक्षिक	१													१
मासिक	४	२	१	२			१					१	१	१२
त्रैमासिक	२		१	२	१			१	१	१	१			१०
अन्य	-	१										१		२
योग	११	३	२	५	१	१	१	१	१	१	१	२	१	३१

इन पत्र--पत्रिकाओं में से सर्वाधिक संख्या उत्तर प्रदेश (ग्यारह) तथा महाराष्ट्र (पाँच) की थी।

इन इकतीस पत्र--पत्रिकाओं में से १४ व्यक्तिगत स्वामित्व में तथा १५ समितियों व संगठनों के स्वामित्व में थीं। एक पत्रिका फर्म व ट्रस्ट के स्वामित्व में थी। संस्कृत साहित्य परिषद् मासिक, देश की सबसे पुरानी व विद्यमान पत्रिका है, जो कलकत्ता से १६१६ में प्रकाशित होना प्रारम्भ हुई थी। संस्कृत व कश्मीरी को छोड़कर समस्त अन्य भाषाओं की अधिकतर पत्र--पत्रिकाएं निजी--स्वामित्व में थीं। जबकि संस्कृत पत्र--पत्रिकाएं समितियों व संगठनों के अधीन थीं।

पूर्व वर्ष की भाँति १६८४ में भी संस्कृत पत्र--पत्रिकाओं की कुल परिचालन (circulation) संख्या ग्यारह हजार प्रतियाँ थीं। देश के विभिन्न प्रदेशों में संस्कृत पत्र--पत्रिकाओं की परिचालन संख्या (हजारों में) आगे अंकित हैं ।

पत्रिकाएं	उत्तर प्रदेश	महाराष्ट्र	कर्नाटक	बिहार	योग
दैनिक	–	–	२	–	२
साप्ताहिक	४	१	–	–	५
मासिक	१	–	–	–	१
त्रैमासिक	–	–	–	१	१
योग	५	१	२	१	९

इन नौ पत्रिकाओं में से तीन समाचार व समसामयिक मामलों की, पाँच साहित्यिक व सांस्कृतिक की तथा एक धर्म व दर्शन के विषयों की थी।

निस्संदेह प्रति वर्ष कुछ संस्कृत समाचार–पत्र–पत्रिकाएं विभिन्न समस्याओं के कारण बंद हो जाती हैं अथवा रूक–रूक कर निकलती हैं, किन्तु उनके स्थान पर नये प्रकाशन सामने आ जाते हैं । यह उनकी बेचैनी और संस्कृत–मातृभाषियों की सीमित संख्या का द्योतक है।

देश में १९८४ में महाराष्ट्र में एक तथा दिल्ली व उत्तर प्रदेश में चार–चार अरबी पत्र–पत्रिकाएं थीं। लखनऊ से प्रकाशित अल–रा–इद का परिचालन (circulation) देश में सर्वाधिक था। संस्कृत, कश्मीरी व सिंधी को छोड़कर अन्य सभी प्रमुख भाषाओं में संघ तथा प्रदेश सरकार के प्रकाशन थे। जम्मू–कश्मीर सरकार ने कश्मीरी में एक पत्रिका अवश्य प्रकाशित की थी। सभी प्रदेश सरकारों के प्रकाशन संस्कृत और सिंधी को छोड़कर अपनी मुख्य भाषाओं में थे।

साथ ही उल्लेखनीय है कि "आकाशवाणी से नित्य प्रातः–सायं, पाँच मिनट का संस्कृत समाचार तथा "दूरदर्शन" का साप्ताहिक–मध्याह–रविवारीय–समाचार, संस्कृत के जीवन्त स्वरूप को स्वीकारता है।

इन तथ्यों के रहते यह कहना उपयुक्त नहीं है कि संस्कृत प्राचीन काल में प्रयुक्त होती थी और अब प्रयोग में नहीं है अथवा केवल औपचारिक लेखन में प्रयुक्त होती है।

कभी–कभार तो लोग संस्कृत को मृत–भाषा स्वरूप इंगित करते है। संस्कृत के लिये 'मृत' विशेषण कदाचित् भारतीय भाषाओं के विद्वान् सर जार्ज ग्रियर्सन के कारण ही चलन में आ गया जिन्होंने अपने 'भारत का भाषा–सर्वेक्षण' की भूमिका के प्रथम प्रस्तर में लिखा है कि "यहाँ तक कि सुप्रसिद्ध विद्वान् अल–बरूनी ने अपने तत्कालीन भारत (लगभग १०३० ईस्वी) सम्बन्धी विवरण में केवल संस्कृत तथा उसकी कठिनाईयों का उल्लेख किया है । उस समय तक संस्कृत मृत–भाषा हो चुकी थी"। इसके आगे श्री ग्रियर्सन ने इतिहासकार इलियट को उद्धृत किया है कि, "इसके अतिरिक्त भाषा का एक उपेक्षित एवं बोलचाल का रूप उपलब्ध है जिसका जनसाधारण में प्रचलन है दूसरा श्रेष्ठ संस्कृत रूप है जिसका प्रयोग उच्च तथा सुशिक्षित वर्ग के लोग करते हैं। इस दूसरी भाषा का ही अधिक अध्ययन–अध्यापन होता है"।

किन्तु अरबी भाषा के एक विद्वान् द्वारा किये गये अल–बरूनी के उक्त कथन के मूल अंश के प्रमाणित अनुवाद से स्पष्ट है कि अल–बरूनी ने संस्कृत को 'मृत–भाषा' नहीं कहा है। वस्तुतः अल–बरूनी के द्वारा प्रयुक्त पद 'मसून–फासिह' को 'सुरक्षित रखी हुयी' के अर्थ में संस्कृत भाषा के लिये प्रयुक्त किया हुआ माना जा सकता है, किन्तु अल–बरूनी द्वारा प्रयुक्त पद, 'मृत' के अर्थ में तथ्य के विपरीत है।

जहां तक "मातृभाषा" के महत्त्व की बात है, यह उल्लेखनीय है कि देश की सन् १८८१ की जनगणना में भाषा–जात सूचना 'राष्ट्रीयता' शीर्षक के अधीन संकलित की गई थी। व्यक्ति की मातृभाषा के महत्त्व को भारत सरकार अधिनियम १९३५ के प्राविधान के उस अंश से आँका जा सकता है जहाँ 'एंग्लो–इण्डियन यूरोपियन' को योरोपीय पुरुष और भारतीय स्त्री की संतान, जिसकी मातृभाषा अंग्रेजी हो परिभाषित किया गया है। लगभग इसे ही हमारे वर्तमान संविधान में भी, 'एंग्लो–इण्डियन क्रिश्चियन', जिनकी मातृभाषा अंग्रेजी है को ही संरक्षण–विशेष के प्राविधानों में रखा गया है। केवल वर्तमान संदर्भ में नहीं अपितु ऐतिहासिक रूप से भी, भारत में भाषा, व्यक्ति विशेष की राष्ट्रीयता[३१] –निर्धारण का एक आधार मानी गई है।

भारतीय संविधान की ८वीं सूची की भाषाओ में से संस्कृत और सिंधी को देश के किसी प्रदेश, केन्द्र शासित प्रदेश अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा अपनी भाषा नहीं घोषित किया गया है। यहाँ तक कि जम्मू–कश्मीर प्रदेश की राज्य भाषा उर्दू है, कश्मीरी नहीं। संस्कृत जैसी भाषा की तो बात ही क्या ? विश्व की प्रत्येक भाषा, किसी समूह विशेष, वह चाहे कितना छोटा ही क्यों न हो, के लोगों की मातृ–भाषा होती है। वह भाषा उसके बोलने वालों के ममत्व के साथ ही सम्पूर्ण मानव की सांस्कृतिक–सम्पदा की धरोहर का एक भाग होती है, जिसकी अनदेखा–भाली नहीं की जा सकती।

मातृभाषा बड़ा संवेदनशील विषय है। अपने देश में ही इस मामले में कई स्थानों पर द्वेष व हिंसा की स्थिति, राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन व संविधान–संशोधन के फलस्वरूप धारा ३५० ए का जोड़ा जाना, व प्राथमिक स्तर की शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से प्रदान किये जाने का निर्देश आदि इसी की परिणति स्वरूप है, तथापि समस्या अपने परिवर्तित रूप में अभी भी विद्यमान है। अपने एक पड़ोसी देश को भाषा के मामले के कारण अपने पूर्वी प्रान्त से हाथ धोना पड़ा। बहुत से पश्चिमी देशों के बारे में भी ऐसी ही स्थिति है।

उल्लेनीय है कि भाषाई अल्पसंख्यक–आयोग के अनुसार 'भाषाई – अल्पसंख्यक, देश के नागरिकों का वह समूह है "जिसकी मातृभाषा प्रदेश, जिला अथवा तहसील स्तर पर वहाँ की मुख्य भाषा से भिन्न हो"। आयोग ने यह भी स्पष्ट किया है कि भाषाई अल्पसंख्यकों के लिये संविधान में संरक्षण के अधिकार की गारंटी में, व्यक्ति द्वारा अपनी शिकायतों के निवारण के लिये अपनी मातृ–भाषा में प्रार्थना पत्र देने एवं प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार सन्निहित है।

एक तथ्य यह भी है कि 'शिशु अपने जन्म से पूर्व ही अपनी भावी भाषा सीखना प्रारम्भ कर देता हैं'। अध्ययनों से यह खोज निकाला गया है कि शिशु बोली को विशेष ध्वनि के रूप में, गर्भ से ही पहचानना प्रारम्भ

करता है और बोले गये वाक्यों का भेद कर सकता हैं'। मनोविज्ञान के प्रोफेसर अन्थोनी डिकेस्पर ने बोरस्टान में अगस्त १६६० में उद्घाटित किया कि एक अध्ययन में २४ नवजात शिशुओं की हृदय–चाप (धुक्–धुक् की ध्वनि) तथा एक महिला के बोलने की ध्वनि, के प्रति 'एक्सपोज़' किया गया। 'पैसीफाइज़र' चुसनी को चूसने में परिवर्तनशील तीब्रता से कौन सा कान कौन सी ध्वनि सुनना चाहेगा, यह चुनने में वह शिशु सक्षम थे। इस खोज को पौराणिक गाथाओं के अभिमन्यु के गर्भ–काल में प्राप्त ज्ञान से भी उदाहरण स्वरूप समझा जा सकता है।

यह दैनिक जीवन का अनुभव है कि शिशु किसी पुरूष अथवा स्त्री की अपेक्षा अपनी माँ की ध्वनि व बोली को स्पष्टतः पहचान और समझ कर भेद कर लेता है। यदि एक माँ तथा एक महिला अन्य किसी ओट/आड़ से शिशु को बुलावे तो शिशु माता की ओर से आयी ध्वनि और बोली दोनों को पहचान कर उसकी ओर देखेगा और चलने तथा आचरण का प्रयास करने लगेगा न कि दूसरी स्त्री की ओर। इसी प्रकार यदि संस्कृत का सधारण गीत तथा अन्य किसी भाषा का गीत नितान्त अपढ़ लोगों के बीच सुनाया जाय तो उस क्षेत्र के संस्कृत–मातृभाषी न केवल अपनी भाषा को पहचान लेते हैं अपितु गीत का आधारभूत भाव भी ग्रहण कर लेते है, यद्यपि वह उसका पूरा अर्थ नहीं बता पाते।

संस्कृत–मातृभाषी परिवार के शिशु, सर्वप्रथम तीन सरल शुद्ध संस्कृत शब्द अपनी माता के माध्यम से सीखते हैं – अम्मा (माँ) दुद्धा (दुग्ध–दूध) मम्मा (जल)। बाद में परिवेश के अनुसार इन शिशुओं के न केवल शब्द–भंडार में अपितु छोटे सरल संस्कृत वाक्यों मे भी वृद्धि होती रहती है। अनपढ़ अथवा कम पढ़े लोग भी, यह न जानते हुए कि वह कौन सी भाषा बोल रहे हैं, संस्कृत–भाषा के वाक्य बोलते हैं। यह उसी प्रकार है, जैसे बच्चों को उनके माता–पिता का नाम, स्वयं माता–पिता द्वारा अथवा उनके परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा बताया जाता है और बच्चे भी पूछने पर

वही बताते है। इसी प्रकार बच्चों को उनकी मातृभाषा का जो नाम बता दिया जाता है, वही वह बताने लगते है। सामाजिक और आर्थिक व्यवथाओं के रहते मातृभाषा अथवा स्थानीय भाषा की ओर से हटाकर जिस भाषा की शिक्षा के प्रति बालक को मोड़ दिया जाता है उसी भाषा के प्रति वह मुड़ जाते हैं।

अशुद्ध उच्चारण और शब्द व वाक्यों का व्याकरण–दोष–युक्त प्रयोग, बच्चों में तब तक चलता है जब तक वह औपचारिक शिक्षा में सुधारा नहीं जाता है। जिन बच्चों को औपचारिक शिक्षा का सुअवसर प्राप्त नहीं होता, वह परिवेशीय विसंगतियों सहित अपनी मातृभाषा के यथा–प्राप्त स्वरूप के साथ जीवन में आगे बढ़ते हैं। उत्तरी भारत में औपचारिक शिक्षा अवधि में विद्यार्थी हिन्दी खड़ी बोली के रूप में सीखते हैं, जो निश्चित रूप से संस्कृत से हटकर है, किन्तु वहाँ का अशिक्षित वर्ग फिर भी अपने मूल परिवेशीय प्रभाव–वश संस्कृत के अधिक निकट बना रहता है।

यह सर्व–ज्ञात है कि मातृत्व एक तथ्य होता है जिसकी पुष्टि सर्व–विदित होती है जबकि पितृत्व एक सामान्य जनमत अथवा ख्याति होती है, यही बात मातृभाषा के लिये लागू है।

समुचित सम्मान सहित हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वरूप स्वीकार करते हुए उसके प्रयोग की प्रतिबद्धता सर माथे पर रखना, किसी की मातृभाषा की कीमत पर न हो सकता है और न होना चाहिए। कदाचित् इसी शंका के कारण संविधान में भाषाई–अल्पसंख्यकों के लिए संरक्षा–सुरक्षा प्राविधान सम्मिलित किया गया था किन्तु जिसका अक्षरशः व भावतः अनुपालन कुछ विशेष भाषाओं तक ही सीमित है, जिससे संस्कृत–मातृभाषी वंचित हैं।

यह विचारणीय बिन्दु है कि विख्यात नैमिषारण्य, वर्तमान में उत्तर प्रदेश के सीतापुर जिले का भाग, जहाँ छियासी हजार ऋषिगण, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और जन्म, जीवन, मृत्यु के कारण आदि पर संस्कृत–भाषा के माध्यम से ही विचार–विमर्श के लिए एकत्रित होते थे, उस क्षेत्र में संस्कृत भाषा लुप्त कैसे हो गयी? यदि सामाजिक स्मृति और ऐतिहासिकता को छोड़

भी दें तो भी वर्तमान पीढ़ी ने निकट भूत में संस्कृत का जो संहार देखा है उससे यह अचरज नहीं है कि इतिहास में बड़े पैमाने के नरसंहार में कुछ ही लोग अपनी मातृभाषा बचा सके। शेष जानबूझकर अथवा अनजाने में ही, स्व–प्रयास अथवा सामुदायिक प्रभाव से प्रत्यक्ष अथवा प्रच्छन्न रूप से अपनी भाषा के संरक्षण–संवर्धन में लगे रहे। यह तो एक संयोग की बात है कि मध्य एशिया व कश्मीर जैसे क्षेत्रों से कुछ पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हो गई, अन्यथा अन्य लुप्त संस्कृत–साहित्य की भाँति इनके अस्तित्व तथा इन क्षेत्रों में संस्कृत–भाषा के प्रसार को आज स्वीकार ही न किया जाता।

विगत चार हजार वर्षो में विश्व में हुई जनसंख्या वृद्धि से सभी अवगत हैं। यह आश्चर्य है कि छियासी हजार ऋषियों की सन्तानें जो मध्यकालीन भारत की विपरीत परिस्थितियों में भी प्रतिरोधात्मक प्रतिरक्षा से बच सकीं, वह विगत १२० वर्षों की जनगणना में अपनी जनगणना की वृद्धि अंकित न करा सकीं, जैसा कि समाज के अन्य लोग कर सके। पुरातत्त्वीय एक सर्वेक्षण के अनुसार दूसरी या तीसरी शताब्दी में कानपुर जिले में जनसंख्या का घनत्व १२.८२ व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर था, जो १९९१ की जनगणना में ७३७.८३ हो गया है। जनसंख्या के वर्तमान घनत्व की वृद्धि के अनुपात में संस्कृत मातृभाषियों की आज वहाँ नाम मात्र की संख्या की स्थिति, स्वयं विचारणीय है।

जर्मन गणतन्त्र के राष्ट्रपति हरजॉग ने फरवरी ९९ में 'वेमर' जर्मन नगर के बारे में बोलते हुए कहा कि "यह नगर न केवल संस्कृति व उसकी आत्मा का सदन था अपितु बर्बरता और असंस्कृति का भी था। जो कोई इतिहास के उज्ज्वल पक्ष–अंश भाग को स्मरण करता है, को अन्धकारमय व भयावह पक्ष को भूलना नहीं चाहिये, कंपा देने वाली स्मृतियों के साथ यह गम्भीर चेतावनी का सतत प्रतीक भी है। संस्कृति और सभ्यता, जिन्होंने पूर्णता के ऐसे आश्चर्य–जनक शिखर वेमर में सृजित किए, सदैव धमकीग्रस्त हैं और शाश्वत रूप से कभी भी सुरक्षित नहीं।" उनकी यह बात संस्कृत मातृभाषियो पर पूरी तरह से लागू है।

समस्या – १

शिक्षा

पिछले अध्याय में वर्णित भारत सरकार के निर्णय के क्रम में उत्तर प्रदेश सरकार ने अपने शासनादेश संख्या A–८५४३५/XXV.३४०६/४३ दिनांक : २०–१०–५८ द्वारा अल्पसंख्यक भाषा–भाषी विद्यार्थियों के लिए उन सभी स्कूलों में जहां एक कक्षा में उस भाषा के कम से कम १० विद्यार्थी अथवा पूरे स्कूल में ४० विद्यार्थी हैं, उस भाषा का एक अध्यापक नियुक्त किये जाने का प्रावधान किया । शिक्षा निदेशक, उत्तर प्रदेश ने अपने पत्र दिनांक : १८–५–६२ जो सभी जिला विद्यालय निरीक्षकों को सम्बोधित था, के माध्यम से स्थानीय निकायों द्वारा संचालित अथवा सहायता–प्राप्त प्राथमिक विद्यालयों के प्राधनाध्यापकों को भाषाई अल्पसंख्यकों के समूहों के प्रत्येक विद्यार्थी की ओर से अग्रिम पंजीयन के लिए प्रदत्त पृथक्–पृथक् प्रार्थना पत्र स्वीकार करने के निर्देश दिये थे। इस पत्र में किसी भाषा–विशेष का नाम नहीं दिया गया था। पुनः उत्तर प्रदेश सरकार के राष्ट्रीय एकीकरण विभाग ने अपने पत्र अ–श ६/१२/४–६३–७ रा० एकीकरण दिनांक: ६–११–७१ द्वारा सरकार की नीति की पुष्टि करते हुए लिखा–

"शासन की यह नीति है कि प्राथमिक स्तर पर कक्षा १ से ५ तक के बच्चों को उनकी मातृभाषा के माध्यम से पढ़ने की सुविधा दी जानी चाहिए । उन क्षेत्रों में जहाँ उर्दू के माध्यम से शिक्षा की मांग है वहाँ उर्दू शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए........। प्रवेश पत्र में एक कालम–"।

यह शासनादेश किसी अल्पसंख्यक भाषा–विशेष मात्र के लिए नही है। इसमें उर्दू को एक उदाहरण स्वरूप ही बताया गया है।

इस शासनादेश के पश्चात् प्राथमिक विद्यालयों में संस्कृत–मातृभाषी विद्यार्थियों के अग्रिम पञ्जीयन के लिए प्रत्येक विद्यार्थी की ओर से दिये

प्रार्थना पत्रों को पृथक्–पृथक् बेसिक प्राइमरी स्कूलों के प्रधानाध्यापकों ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि संस्कृत–मातृभाषी माध्यम से शिक्षा देने के कोई आदेश नहीं हैं और तदनुसार उस शिक्षा सत्र के लिए किये गये हमारे प्रयास निष्फल हो गये। अगले वर्ष कई जिलों के प्राइमरी स्कूलों के लिए २०–२० संस्कृत–मातृभाषी प्रति प्राइमरी स्कूलों के हिसाब से अग्रिम पञ्जीयन के लिए प्रार्थना पत्र सम्बंधित शिक्षा–अधिकारियों को प्रस्तुत किये गये किन्तु उन्होंने यह कहकर प्रार्थना पत्र लेना अस्वीकार कर दिया कि इस प्रकार के कोई आदेश नहीं हैं। संस्कृत पाठशालाओं की एकांगी शिक्षा और संस्कृत मातृभाषा माध्यम से संस्कृत–मातृभाषी बालकों की शिक्षा के भेद को वह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुए।

अतः संस्कृत–मातृभाषाई बालकों की प्राथमिक शिक्षा उनकी मातृभाषा माध्यम से प्रदान करने के लिए जहाँ एक ओर बेसिक शिक्षा के स्कूलों में अग्रिम पंजीयन हेतु विभिन्न स्तरों पर अनुसरण संस्कृत–मातृभाषियों की संस्था 'मनोयोग' द्वारा किया गया, वहीं दूसरी ओर कालान्तर में उनकी शिक्षा की व्यवस्था सखी संस्था बालगोपाल संगठन के माध्यम से संचालित कराना प्रारम्भ किया गया। संस्कृत–मातृभाषी बच्चों को देश की मुख्य धारा में ही रखने के उद्देश्य से, उत्तर–प्रदेश बेसिक–शिक्षा–परिषद् के पाठ्यक्रमानुसार अन्य भाषा–भाषी बालकों की भाँति ही शिक्षा की व्यवस्था प्रारम्भ की गयी। एतदर्थ, शिक्षा–निदेशक, बेसिक एवं अध्यक्ष, बेसिक–शिक्षा–परिषद्, उत्तर–प्रदेश से, अपने इन बच्चों को कक्षा–५ की परीक्षा दिलाने के लिये निवेदन किया गया।

'मनोयोग' के पूरे प्रयास करने पर भी शासन ने अपनी घोषित नीति के अनुसार संस्कृत–मातृभाषी बालकों की उनकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था की कोई कार्यवाही नहीं की।

समस्या – २

संस्कृत–मातृभाषियों की सम्पत्ति का अपहरण

स्वतंत्रता के पूर्व संस्कृत–भाषा के साथ ही संस्कृत–मातृभाषी विद्यार्थियों की शिक्षा तथा उनके सम्यक् पालन–पोषण का कार्य सामान्यतः समाज द्वारा एतदर्थ स्थापित न्यासों आदि के आर्थिक स्रोतों से होता था, किन्तु उसके बाद स्थिति बदल गयी। भारत सरकार द्वारा गठित संस्कृत आयोग, जिसने अपनी आख्या सरकार के शिक्षा मंत्री को ३०–११–५७ को सौंपी थी, ने संस्कृत (मातृभाषी इसी में आते हैं) शिक्षा के लिए बने स्रोतों के दुष्प्रयोजन और अपहरण की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हुए इसे रोके जाने के उपायों की संस्तुति की थी। इस रिपोर्ट के कुछ अंश नीचे दिये जा रहे है :–

१ "यह आयोग सरकार का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट करना चाहता है कि हमारे देश में वेद तथा साधारण संस्कृत के लिए विशेष रूप से संस्थापित अनेक ऐसे प्राभूत विद्यमान है तथा धार्मिक न्यासों, मंदिरों तथा इस प्रकार की अन्य समर्पित निधियाँ भी पायी जाती है जिनके पास अनेक नियमित व्यय किये जाने के अनन्तर धन बच जाता है, यदि इस धन की ठीक–ठीक व्यवस्था की जाये तो इस में संस्कृत अध्ययन के पुनः संघटन, उन्नयन एवं संवर्धन के सम्बन्ध में जो–जो सुझाव दिये गये हैं, उनके कार्यान्वयन में इस धन का प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे प्राभूतों में से अनेक मरणासन्न, निष्क्रिय तथा अव्यवस्थित स्थिति में देखे जाते हैं। अनेक ऐसे भी हैं जो अपने मूल उद्देश्य के विपरीत अपना धन अन्य मार्गो में लगा रहें हैं। इन धार्मिक न्यासों की बचत की धनराशि या तो यूँ ही पड़ी है या अन्य असाम्प्रदायिक कार्यों में व्यय की जा रही है। अतः यह आयोग शासन से आग्रहपूर्वक अनुरोध करता है कि वह केन्द्रीय संस्कृत–परिषद्

अथवा किसी अन्य सक्षम माध्यम द्वारा इन न्यासों की पूरी–पूरी जाँच कराये, उनके प्रशासन को ठीक रास्ते पर लाये, उन्हें सक्रिय करे तथा आय की वसूली में उनकी सहायता करे। साथ ही साथ शासन को यह भी चाहिए कि वह इन मठों, मंदिरों आदि के मार्गान्तरित कोष को वेद, पुराण, इतिहास, आगम, धर्म तथा प्राभूतों के मूल उद्देश्यों से सम्बद्ध संस्कृत के अन्य अध्ययनों के लिए पुनः व्यय किये जाने की व्यवस्था करे।

२ आयोग का यह अनुरोध है कि संस्कृत का अध्ययन एवं अन्य दातव्य उद्देश्यों के लिए जो धन या सम्पत्ति दाता द्वारा निर्धारित की जा चुकी है, उसे अन्य मार्गों में लगाये जाने के लिए प्राभूत व्यवस्थापकों की यदि सहमति प्राप्त हो चुकी हो अथवा न्यायालय के भी आदेश प्राप्त हो चुके हैं तथापि उसे अन्य मार्गो में व्यय न करने दिया जाये। इस सम्बन्ध में शासन द्वारा आवश्यक कानून बनाया जाना चाहिए। संस्थाओं की बचत के धन को असाम्प्रदायिक मार्गों में स्थानान्तरित करने की प्रणाली पर भी रोक लगाया जाना चाहिए। साथ ही साथ संस्कृत का अध्ययन जो स्पष्टतः धार्मिक उद्देश्यों के अन्तर्गत है के लिए इस धन के उपयोग का दबाव डालना चाहिए।

३ आयोग का यह अनुरोध है कि जहाँ कहीं रियासतों, जमींदारियों तथा भूतपूर्व नरेशों तथा राज्यों के उन्मूलन या विलयन के परिणाम–स्वरूप पूर्व व्यवस्था में प्रचलित संस्कृत के पोषण पर विपरीत प्रभाव पड़ा हो, वहाँ केन्द्रीय तथा प्रादेशिक शासनों को चाहिए कि वे इस आशय को सुनिश्चित करे, जो संस्कृत को अपने पूर्व आश्रयदाताओं से प्राप्त हुआ करता था। इस संदर्भ में आयोग की यह संस्तुति है कि शासन वेदों तथा संस्कृत के अध्ययन की दिशा में भूतपूर्व नरेशों तथा जमीदारों की वचनबद्धता का भी पूर्णतः पालन करें।

४ अनेक संस्कृत संस्थायें भूमिप्राभूतों पर आश्रित हैं और संस्कृत विद्यालयों पर कुछ प्रदेशों द्वारा स्वीकृत साम्प्रतिक नीति का विपरीत प्रभाव पड़ा है। इस विषय पर शासन द्वारा गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

५ आयोग की यह भी संस्तुति है कि मंदिरों की निधि के बचत धन को वेदों के कंठपाठ तथा पाठशालाओं के पोषण में लगाना चाहिए और शिक्षा तथा धार्मिक संस्थाओं के अधिकारियों को चाहिए कि जहाँ कहीं वेदो की मौखिक परम्परा समाप्त हो चुकी है वहाँ उसे पुनरूज्जीवित करने की दिशा में वे क्रियाशील हों।

६ इस सम्बन्ध में दक्षिण भारत एवं अन्यत्र भी विभिन्न वेदों के जो न्यास (ट्रस्ट) अपनी कार्यविधि में कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं, में अपनी वार्षिक आय की वसूली तथा उसे उपयोग में लाने के सम्बन्ध में शासन द्वारा सहायता दी जानी चाहिए।"

संस्कृत आयोग की इस आख्या के प्रस्तुत होने के पश्चात् भी विगत ४० वर्षों में स्थिति और बिगड़ी ही है तथा न्यासों के संस्थापकों, दाताओं, पूर्व राजाओं, जमींदारों, तालुकेदारों को दिये गये बचनों का पालन करने के लिए सरकार द्वारा कुछ भी नहीं किया गया है। यहाँ तक की संस्कृत आयोग ने अपनी आख्या, जो अंग्रेजी में प्रस्तुत की गयी थी, में उस आख्या के एक संस्कृत–रूपान्तरण को प्रकाशित करने की भी संस्तुति की थी, किन्तु उस को भी अभी तक पूरा नहीं किया गया। परन्तु, उस आख्या के प्रस्तुत होने के २२ वर्ष बाद जून १६७३ में उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा उस आख्या का एक हिन्दी रूपान्तरण अवश्य प्रकाशित किया गया। अकादमी के तत्कालीन अध्यक्ष ने इस हिन्दी रूपान्तरण के प्रकाशन के प्राक्कथन में संस्कृत के इन ट्रस्टों के आर्थिक स्रोतों के धन को अन्य प्रयोजनों की ओर मोड़े जाने को रोकने के लिए कदम उठाने हेतु सरकार का ध्यान आकृष्ट किया था। अध्यक्ष ने लिखा कि –

"हमारे देश में इस समय संस्कृत शिक्षा सम्बन्धी अनेक न्यास तथा समर्पित निधियाँ विद्यमान हैं। इनमें से कुछ ऐसे भी ट्रस्ट हैं जो या तो निष्क्रिय हैं या दाता की इच्छा के विरूद्ध उनका धन अंग्रेजी शिक्षा को लगाया जा रहा है। यह एक गम्भीर प्रसंग है जिसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते। शासन का कर्तव्य है कि संस्कृत–शिक्षा के हित में वह अपने स्रोतों एवं साधनों से ऐसे अपराधी प्राभूतों का सर्वेक्षण कराये तथा ऐसा कानून बनाये जिससे संस्कृत के लिये समर्पित इन निधियों की आय समुचित रूप से संस्कृत शिक्षा में ही लगाई जा सके। आयोग की इस संस्तुति का कार्यान्वयन संस्कृत–शिक्षा के समुन्नयन तथा उसके सम्मान के संवर्धन की दिशा में निश्चय ही उपकारक सिद्ध होगा।"

संस्कृत–मातृभाषी विद्यार्थियों के लिए भोजन–आवास–शिक्षा व शिक्षण सामग्री आदि उपलब्ध कराने के प्रयास में 'मनोयोग' द्वारा विभिन्न न्यासों से सम्पर्क किया गया। उनमें से अधिकतर की उनकी स्वयं की अरूचि, अज्ञानता, असहाय–स्थिति, अथवा स्वार्थ, 'मनोयोग' के निवेदन के प्रति उपेक्षा का कारण बने। कुछ स्थलों पर तो इस विषय में वार्ता करने पर उनका व्यवहार असंसदीय, वस्तुतः धमकाने वाला व आक्रामक था। सामान्यतः यह पाया गया कि न्यास–सम्पत्ति का उपयोग न्यासियों के निजी हित सहित, न्यास–उद्देश्यों से इतर कार्यो के लिए किया जा रहा है, अथवा सम्पत्ति अन्य किसी के कब्जे में कर दी गयी है या चली गयी है या मुकदमेबाजी में फँसी है अथवा न्यासी अपने व्यक्तिगत कारणों या भय से अनपेक्षित दबाव के चलते अपने दायित्व से विमुख हैं।

स्थिति यह है कि न्यास के उद्देश्यों तथा उनकी स्थापना करने वालों की इच्छाओं के अनुसार न्यास के लाभार्थी अपने प्राप्य से वंचित हैं। न्यासों की सम्पत्ति या तो अनधिकृत लोगों को हस्तान्तरित हो चुकी हैं, हो रही हैं, अथवा सरकार द्वारा बिना उनके लाभार्थियों हेतु कोई सानुपातिक व्यवस्था सुनिश्चित किये ही अधिग्रहण कर ली गयी हैं। यह तथ्य उत्तर–

प्रदेश सरकार के 'धर्मादा आडिट एवं एकाउन्ट्स' के मुख्याधिकारी के सम्मुख 'मनोयोग' द्वारा प्रस्तुत किये गये। उनसे वार्ता से यह ज्ञात हुआ कि सरकार द्वारा निर्धारित कुछ न्यासों का ही ऑडिट वे करते हैं और उसमें भी वह उनका केवल लेखा देखते हैं। ट्रस्टों के लेखे का उद्देश्यपरक ऑडिट वह नहीं करते हैं।

इन सब अनुभवों और सूचनाओं के साथ अपने पूर्व संदर्भों के क्रम में 'मनोयोग' के प्रतिनिधि ने प्रदेश सरकार के राष्ट्रीय एकीकरण एवं धर्मार्थ कार्य विभाग के सचिव से मिलकर उनके अनुसचिव के साथ विस्तृत विचार–विमर्श में बहुत से न्यासों की स्थिति उनके सम्मुख रखकर उनसे सहायता की अपेक्षा की। किन्तु, उन्होंने गोपनीयता के कवच का सहारा लेकर 'मनोयोग' के इस बारे में जानकारी प्राप्त करने के अधिकार पर ही प्रश्नचिह लगा दिया। इस बिन्दु के बारे में लाभार्थियों के अधिकार को भी अस्वीकार करते हुए उन्होंने अपने पार्श्व में रखें न्यास–अधिनियम को दिखाया। किन्तु जब उन्हें इसी अधिनियम में लाभार्थी हित और अधिकार दिखा दिये गये तो उन्होंने 'मनोयोग' द्वारा इस प्रकारण को उठाये जाने की निष्ठा पर प्रश्न चिह लगा दिया। जब उन्हें इसका भी समुचित उत्तर दे दिया गया तो उन्होंने सभी बातों को स्वीकार करते हुए बताया कि सरकार ट्रस्टों का सर्वेक्षण करा रही है और ज़िलों से सूचना माँगी जा रही है जो अभी भी प्रतीक्षित है। साथ ही उन्होंने यह भी कह दिया कि इस प्रकार की समस्याओं के लिए सरकार ने न तो कोई बड़ा कदम उठाया है और न उठाने जा रही है।

अतः बहुत से जन–प्रतिनिधियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं से सामान्य रूप से तथा न्यास–विशेष के प्रबन्धकों से विशेष रूप से धन के समुचित उपयोग के लिए सम्पर्क किया गया, किन्तु वह अपनी राजनैतिक प्रतिबद्धताओं और अपने अनुयायियों अथवा बाहुबालियों के प्रभाव के कारण हस्तक्षेप करने से कतरा गये । इन मामलों को न्यायालय में ले जाना इतना

सहज नहीं हैं । न्यास के विधान आदि न्यासियों के पास है । बहुत थोड़े लोग ऐसे हैं जो विषयों को उठा सकते हैं किन्तु जब उनकी ही सत्यनिष्ठा पर आँच आये, चुनौती दी जाये तथा अन्य व्यावहारिक समस्यायें खड़ी कर दी जायें तो यह कार्य और भी कठिन हो जाता है ।

फिर भी न्यासों की परिसम्पत्तियों के बारे में न्यासियों अथवा हड़पने वालों या कब्जा करने वालों के विरूद्ध न्यायालय में इस प्रकार के वाद दाखिल किये गये हैं । यह अनधिकृत काबिज लोग, अधिक अनुकूल परिस्थितियों में होने के कारण न्यासों की सम्पत्ति से आय प्राप्त करते रहते हैं, किन्तु सार्वजनिक उद्देश्य से संस्कृत–मातृभाषियों/ लाभार्थियों की ओर से लड़ने वालों को न केवल अपना समय अपितु धन भी व्यय करना पड़ता हैं । तिकड़म और साँठ–गाँठ से यह मुकदमें लम्बी अवधि तक अनिस्तारित स्थिति में ही बनाये रखे जाते हैं । परेशान संस्कृत कार्यकर्ता निराश होकर बैठ जाता है, अथवा विरोधी पक्ष के बाहुबलियों द्वारा चुपचाप बैठ जाने पर विवश कर दिया जाता है । जहाँ स्वयं न्यास भी संस्कृत शिक्षा के लिए न्याय दिलाने के लिए उत्सुक होते हैं, वहाँ भी लम्बी मुकद्मे–बाजी के चलते वह भी हताश ही हो जाते हैं ।

इन न्यासों के संस्कृत–मातृभाषी लाभार्थियों के हितों की रक्षा के लिए महामहिम श्री राष्ट्रपति जी तथा माननीय विधानसभा उत्तर-प्रदेश (माननीय लोकसभा को भी दिया गया किन्तु प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं) से निवेदन किया गया । उसके कुछ विवरण 'संस्कृत निदेशालय की स्थापना' पुस्तिका में देने के साथ ही उत्तर-प्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री तथा सम्बन्धित मा० मंत्रियों के अलावा सचिव-शिक्षा, सचिव-धर्मार्थकार्य एवं राष्ट्रीय एकीकरण और मुख्य-सचिव को भी समुचित कार्यवाही के लिए व्यक्तिगत रूप से (मुख्यमंत्री को छोड़ कर, उन्हें डाक से) भेंट कर प्रस्तुत किये गये, किन्तु कोई कार्यवाही नहीं हुई ।

प्रयास – १

शिक्षा–विभाग

मातृभाषा–माध्यम से ही प्राथमिक शिक्षा प्रदान किये जाने की सरकारी घोषित नीति के संस्कृत–मातृभाषियों के बारे में अनुपालन के अभाव में 'मनोयोग' ने स्वयं और बाद में अपनी सखी संस्था बाल गोपाल संगठन के माध्यम व स्थानीय संसाधनों से उत्तर–प्रदेश बेसिक–शिक्षा–परिषद् की सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम के अनुसार संस्कृत–मातृभाषियों के बालकों की शिक्षा की व्यवस्था का श्रीगणेश किया ।

किन्तु वर्ष १६८५–८६ में जब विद्यार्थी पाँचवी कक्षा में पहुँचे तो प्रदेश सरकार के शिक्षा–विभाग की बेसिक शिक्षा परिषद् की पाँचवी कक्षा की परीक्षा में प्रवेश की समस्या सामने आयी । प्रदेश सरकार के जिन जिला स्तरीय शिक्षा अधिकारियों ने पहले स्वतः परामर्श देकर परीक्षा करवा देने का आश्वासन दिया था वह मुकर गये और जीवन के व्यावहारिक पक्ष तथा विभिन्न दलालों के माध्यम से कुछ 'प्राप्त' कराये जाने की आशा इंगित करते रहे । इस अप्रत्याशित व्यय–मद के कारण जब विद्यार्थियों की परीक्षाओं में बाधा पड़ी तो वहाँ के वातावरण के विपरीत, एक महिला अधिकारी ने बेसिक–शिक्षा निदेशक, लखनऊ से सम्पर्क करने के लिए परोक्ष रूप से इंगित किया । प्रदेश सरकार के शिक्षा–विभाग के एक संयुक्त सचिव ने शिक्षा–प्रसार के लिए संगठन के "मौनी बाबा" व "मंत्री जी" द्वारा किये गये प्रयास व विवरण की निष्ठा सुन–समझकर, निदेशक–शिक्षा के नाम एक निजी पर्ची सहायता करने के लिए लिख दी । निदेशक जिनकों यह स्लिप दिनांक १७–१२–८६ को प्रस्तुत की गई, ने बड़े ध्यान से बात सुनी, प्रयास को सराहा, संगठन के १०२ शिक्षा निकेतनों के १७५ बालकों की परीक्षा हेतु 'संगठन का प्रार्थना पत्र हाथ में लिया, बड़े प्रसन्न हुए, सहायता का आश्वासन दिया किन्तु साथ ही यह भी कहा कि जब तक बेसिक–शिक्षा परिषद् की बैठक होगी तब तक वर्तमान शिक्षा–सत्र की

परीक्षायें समाप्त हो जायेंगी, अतः इस वर्ष बालकों की परीक्षायें "किसी प्रकार" करवा लें । साथ ही बल देकर यह भी आश्वस्त किया कि अगले शिक्षा–सत्र के लिए विभिन्न जिलों के इन शिक्षा–निकेतनों की कक्षा पाँच के विद्यार्थियों की परीक्षाओं के लिए एक औपचारिक प्रस्ताव बेसिक–शिक्षा–परिषद् द्वारा पारित करा देगें । अतः 'किसी प्रकार' विद्यार्थी कक्षा पाँच की परीक्षा में सम्मिलित हुए और परीक्षाफल घोषित हो गये ।

अपनी बात के पक्के, निदेशक बेसिक–शिक्षा/अध्यक्ष बेसिक–शिक्षा–परिषद ने विस्तृत विभागीय औपचारिकताएँ और जाँच के साथ–साथ अपने स्तर से भी संस्था द्वारा किये गये कार्य की पुष्टि कराने के पश्चात्, २४–७–८७ को परिषद् के निर्णय की सूचना देते हुए अन्य अपेक्षित विवरण सहित कक्षा पाँच की परीक्षा के लिए औपचारिक प्रार्थना पत्र देने के निर्देश दिए । तदनुसार सीतापुर, लखीमपुर–खीरी, बहराइच और बाराबंकी जिलों के १०२ केन्द्रों के ७४८ विद्यार्थियों की कक्षा पाँच की परीक्षा के लिए विवरण ६/१०–११–८७ को बेसिक–शिक्षा–अधिकारी (बे०शि०अ०), सीतापुर को सौंप दिये गये जिन्होंनें स्वयं अपनी व शेष जिलों के बेसिक शिक्षा अधिकारियों से भी प्राप्त आख्या, बेसिक–शिक्षा–परिषद् को भेज दी और परिषद ने १८–३–८८ को परीक्षा लिये जाने की अनुमति बेसिक शिक्षा अधिकारी (बे०शि०अ०) को सूचित कर दी। व्यक्तिगत रूप से भेंट करने पर निदेशक बेसिक–शिक्षा ने संगठन के पदाधिकारियों को प्रोत्साहित किया और बताया कि यद्यपि प्रारम्भ में परीक्षा का यह प्राधिकार एक वर्ष के लिए ही किया गया है किन्तु बाद में यह स्थायी कर दिया जायेगा । इस प्रकार बेसिक–शिक्षा–परिषद् द्वारा शिक्षा–विभाग के अधिकारियों के माध्यम से कक्षा पाँच के हमारे विद्यार्थियों की शिक्षा सत्र १९८७–८८ की परीक्षायें ले ली गयीं और परीक्षाफल भी प्राप्त हो गये ।

किन्तु, बे०शि०अ० बहराइच ने परिषद् का आदेश मानने से इनकार कर दिया । सीतापुर जिले के एक केन्द्र पर ४० विद्यार्थी, शिक्षा विभाग के अधिकारियों की अनुचित अपेक्षाओं की पूर्ति न कर पाने के कारण परीक्षा से वंचित रह गये । एक अन्य केन्द्र पर अभिभावकों और विद्यार्थियों को

परीक्षफल प्राप्त करने के लिए स्थानीय पुलिस स्टेशन पर गुहार करनी पड़ी तब कहीं ५७ विद्यार्थियों के परीक्षाफल बहुत बहलाने, फुसलाने और हुज्जत के बाद ही मिल सके । चार विद्यार्थियों के परीक्षाफल दिये ही नहीं गये । लखीमपुर जिले के रनियाबेहड़ विकास खण्ड के १०५ विद्यार्थी परीक्षा में तो सम्मिलित किये गये किन्तु परीक्षाफल नहीं दिये गये ।

उत्तर–प्रदेश बेसिक–शिक्षा–परिषद् ने पुनः सीतापुर, लखीमपुर–खीरी, बाराबंकी व बहराइच के कक्षा ५ के हमारे विद्यार्थियों की, शिक्षा सत्र १९८८–८९ की, परीक्षा लिये जाने का अपना दिनांक ६–२–८९ का निर्णय सम्बन्धित बे०शि० अधिकारियों को सूचित कर दिया । लखीमपुर खीरी जिले के बे०शि० अधिकारी द्वारा विगत वर्ष आपत्ति किये जाने पर भी, १९८८–८९ में परीक्षा कराने के निर्देश उन्हें भी बेसिक–शिक्षा–परिषद् द्वारा दिये गये ।

खीरी जिले के छः विकास खण्डों के हमारे ६६ केन्द्रों के ५३३ परीक्षार्थियों ने परीक्षा दी, किन्तु वहाँ के ही फूलबेहड़ तथा निघासन विकास खण्डों के क्रमशः ५० व ६० विद्यार्थियों को वहां के प्रति–विद्यालय–निरीक्षक ने परीक्षा में प्रवेश नहीं दिया । बड़ी हुज्जत बाद ३० विद्यार्थियों की परीक्षा प्रधानाध्यापक द्वारा ली गयी ।

सीतापुर जिले के सात विकास खण्डों के ७० निकेतनों के ५५० विद्यार्थियों की परीक्षायें हुईं । विकास-खण्ड बिसवाँ के दो निकेतनों के ३६ विद्यार्थी परीक्षा से इसलिये वंचित कर दिये गये क्योंकि प्रतिविद्यालय निरीक्षक ने सब परीक्षार्थियों से स्टैम्प–पेपर पर नोटरी से प्रमाणित शपथ–पत्र और विद्यार्थी का फोटो तत्काल प्रस्तुत करने के लिए नयी बात खड़ी करके जिद पकड़ ली । कक्षा पाँच की परीक्षा में इतने भीतरी ग्रामीण क्षेत्र में इस प्रकार की शर्त, वह भी ऐन परीक्षा के दिन ही लगाने के उद्देश्य और उसकी व्यावहारिकता के मन्तव्यों से हम सभी भली–भाँति परिचित हैं । यह स्थिति तब है जब बच्चों की शत–प्रतिशत शिक्षा–साक्षरता की घोषणा, छाती ठोंकते, करते हुए सरकारें थकती ही नहीं । जिले में शेष स्थानों पर

यद्यपि परीक्षायें ली गयीं और बेसिक–शिक्षा–परिषद् के शिक्षक–परीक्षकों ने परीक्षाफल तैयार भी कर दिये किन्तु प्रति-उपविद्यालय निरीक्षक ने बिना कोई कारण बताये प्रतिहस्ताक्षर करने से मना कर दिया । कारण सर्व–विदित है । शिक्षा-संगठन के पदाधिकारियों द्वारा सभी जगहों पर दौड़ने पर भी कुछ न हो सका ।

पूर्व वर्षों की भाँति बेसिक–शिक्षा–परिषद् ने हमारे विद्यार्थियों की कक्षा पाँच की वर्ष १६८६–६० की परीक्षा कराने की अनुमति सम्बन्धित बेसिक शिक्षा अधिकारियों को सूचित कर दी किन्तु परिषद् ने अपने उस पत्र की प्रतिलिपि, शिक्षा–संगठन को पूर्व की भाँति पृष्ठांकित नहीं की । अतः शिक्षा-संगठन के पदाधिकारी बच्चों की परीक्षायें कराने के लिए बेसिक–शिक्षा–अधिकारी व उनके कार्यालय की दौड़ लगाते रहे और अधिकारी यह कहते रहे कि परिषद् का आदेश लाओ । इलाहाबाद में परिषद् के अधिकारी सम्पर्क करने पर यह कहते रहे कि आदेश भेज दिये गये हैं, किन्तु उन्होनें आदेश की प्रति नहीं दी । अन्ततोगत्वा प्रदेश सरकार के माननीय शिक्षामंत्री श्री अशोक वाजपेई के हस्तक्षेप के पश्चात् ही हमारे बच्चों की कक्षा पाँच की परीक्षा हो सकी । यह बाद में ही ज्ञात हो सका कि परिषद् का यह पत्र शिक्षा–संगठन को पृष्ठांकित न करना तथा जिला और प्रदेश कार्यालयों द्वारा परिषद् का आदेश दबाये रखना तीनों स्तर के तिकड़म और मिली भगत का परिणाम था ।

शिक्षा–निदेशक बेसिक, एक नये पदाधिकारी, के हठी व्यवहार व जिले के बेसिक–शिक्षा अधिकारियों के प्रभाव के कारण १६६१ की परीक्षा कराने के शिक्षा–संगठन के सभी प्रयास असफल हो गये । 'मनोयोग' का श्रम और समय जो शिक्षण और शिक्षा–प्रसार में लगता था, केवल कार्यालयों और उनके अधिकारियों के बीच सम्पर्क और भागदौड़ में लगने लगा । इस वर्ष भी सकारात्मक मानवीय प्रयासों के नितान्त अपव्यय का सिलसिला उसी प्रकार जारी रहा ।

प्रयास – २

उच्च–न्यायालय

पूर्व उल्लिखित प्रयास के क्रम में अन्य किसी विकल्प के अभाव में शिक्षा–सत्र १९९०–९१ की बालकों की पाँचवीं कक्षा की परीक्षा करवाने के लिए माननीय उच्च–न्यायालय, इलाहाबाद की लखनऊ बेंच में रिट याचिका, बे०शि०अ० को निर्देश देने हेतु प्रस्तुत की गयी । माननीय उच्च–न्यायालय ने अपनी संवेदनशीलता से हमारे बालकों की कक्षा पाँच की परीक्षा कराने के लिये न्यायोचित आदेश बेसिक–शिक्षा–अधिकारी को प्रदान करने की कृपा की । परीक्षायें हो गयीं । परीक्षाफल भी मिल गये और याचिका समाप्त हो गयी । फिर भी समय और साधन की कमी के कारण जहाँ हमारे कार्यकर्ता न्यायालय के आदेश की प्रति लेकर नहीं पहुँच सके वहाँ समस्या का समाधान न हो सका और अधिकारियों ने पूर्ण स्वेच्छाचारिता बरती ।

अगले वर्ष शिक्षा सत्र १९९२–९३ की कक्षा पाँच की परीक्षा के लिए शिक्षा–विभाग के जिलों के अधिकारियों तथा लखनऊ में शिक्षा–निदेशक से जब सम्पर्क किया गया तो उन्होनें आई०ए०एस० अधिकारियों, जनप्रतिनिधियों और संगठन के प्रति व्यंग्य–कटाक्ष और असंसदीय टिप्पणियाँ कर, बालकों को परीक्षा में सम्मिलित करने से मना कर दिया । हरदोई जिले की एक पूर्व सदस्या विधानसभा के दिनांक : २०–४–९३ के हस्तक्षेप और श्री राज्यपाल के सलाहकार श्री बी० के० गोस्वामी के सतप्रभाव से विद्यार्थियों की परीक्षायें, प्रभारी जिला अधिकारी/मुख्य विकास अधिकारी श्री अरविन्द कुमार, आई.ए.एस. सीतापुर के आदेश से हो सकी । फिर भी बेसिक–शिक्षा–अधिकारी ने एक लिखित प्रतिबन्ध, संगठन के प्रतिनिधियों से यह लिया कि परीक्षाफल बे०शि०परिषद् के आदेश मिलने के पश्चात् ही दिये जायेंगे। बेसिक–शिक्षा–परिषद् का अध्यक्ष, निदेशक बेसिक–शिक्षा स्वयं होता है और उन्होनें विषय को लम्बित रखकर, न तो कोई निर्णय दिया और न परीक्षाफल घोषित किया ।

सभी प्रयास करने पर भी परीक्षाफल घोषित नहीं किये गये। अतः पुनः माननीय उच्च–न्यायालय की लखनऊ बेंच में याचिका १३७७–१६६३ दायर की गयी। माननीय उच्च–न्यायालय ने दिनांकः १०–६–६३ को आदेश दिये कि – "Results be declared or show cause by 16 August' 1993" "परीक्षाफल घोषित किये जायँ या १६ अगस्त १६६३ तक कारण बतायें"। किन्तु बेसिक शिक्षा अधिकारी ने परीक्षाफल नहीं दिये। जुलाई में अगला शिक्षा–सत्र प्रारम्भ हो जाने के पश्चात् यदि परीक्षाफल दिये गये तो अगली कक्षा में विद्यार्थीयों का प्रवेश कठिन होगा और विद्यार्थियों का एक वर्ष बर्बाद हो जायेगा, अतः शिक्षा–विभाग के अधिकारियों द्वारा उच्च न्यायालय के आदेश की अवमानना की एक याचिका प्रकीर्ण वाद संख्या ३८१ (c)/93 पुनः दायर की गयी। किन्तु उस पर भी माननीय उच्च- न्यायालय के आदेश १६–७–६३ की ही हो सके– "Result be declared .... which shall be subject to further Court's order." परीक्षाफल घोषित किये जायें जो न्यायालय के आगे के आदेश के अधीन रहेंगे।

सन्दर्भ से हटकर यहाँ उल्लेखनीय है कि इसी बीच हमारे शिक्षा संगठन के मंत्री श्री सुरेन्द्र प्रसाद त्रिपाठी जो उच्च–न्यायालय में इस मुकदमें की पैरवी के लिए लखनऊ में लगे रहे, को अपने पिता, जिनके वे अकेले पुत्र थे, के देहावसान की सूचना प्राप्त हुई। लखनऊ से तत्काल चल देने के पश्चात् भी वह अपने पिता के दाह–संस्कार के अंतिम दायित्व को पूर्ण करने के लिए समय पर न पहुँच सके।

मा० उच्च–न्यायालय के आदेश दिनांकः १६–७–६३ की प्रति जब निदेशक बेसिक–शिक्षा तथा बे०शि०अ० को दी गयी तो उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। यह तथ्य जब जिलाधिकारी की जानकारी में लाया गया तो उन्होंने बे०शि०अ० को मा० उच्च–न्यायालय के आदेश के अनुपालन के लिए लिखा। नित्य दौड़ाते रहने के पश्चात् २८–७–६३ को बेसिक शिक्षा

अधिकारी ने कहा कि परीक्षाफल नहीं घोषित किये जायेंगे तथा विभाग, मा० उच्च–न्यायालय के आदेश का स्थगन करायेगा। विद्यार्थियों का वर्ष नष्ट हो रहा था, नया शिक्षा–सत्र प्रारम्भ हो चुका था। अतः दिनांकः २–८–६३ को यह प्रकरण श्री राज्यपाल जी के संज्ञान में तथा दिनांक ४–८–६३ को अध्यक्ष विधानसभा, और ५–८–६३ को शिक्षा–सचिव के संज्ञान में लाया गया। माननीय उच्च–न्यायालय के आदेश के अनुपालन न होने की बात बताई गई। निदेशक शिक्षा से भी पुनः कहा गया। किन्तु उच्च–न्यायालय में याचिका की सुनवाई के निर्धारित दिनांक तक न तो कुछ बताया गया न कुछ किया गया। याचिका सुनवाई के निर्धारित दिनांक को बे०शि०अ० और शिक्षा–विभाग की ओर से न्यायालय में यह कह दिया गया कि परीक्षा फल दे दे गये हैं। विभाग ने यह असत्य बात कही थी। अतः वहीं पर इसका प्रतिवाद किये जाने पर माननीय उच्च–न्यायालय ने आदेश दिये कि "परीक्षाफल की एक प्रति याची को प्रस्तुत करें।" वस्तुतः माननीय उच्च–न्यायालय के इस आदेश का पालन ही नहीं किया गया और परीक्षाफल की प्रति आज तक याची को नहीं दी गयी। यद्यपि संगठन के कुछ शिक्षा–निकेतनों के अध्यापकों से "कुछ प्राप्त" करने के पश्चात् परीक्षाफल उनसे यह सहमति बनाकर उन्हें दिये गये कि वह अध्यापक, शिक्षा के इस संगठन से अपने को विरत कर लेंगे, संस्कृत–मातृभाषियों के मामले का परित्याग कर देंगे, स्वतंत्र शिक्षा–संस्था स्वरूप अपना पृथक् पञ्जीयन करायेंगे और इसके प्रतिफलस्वरूप, शिक्षा–विभाग उन्हें तुरन्त औपचारिक मान्यता प्रदान कर देगा एवं उनकी परीक्षायें बिना किसी कठिनाई के करा दी जाया करेंगी।

माननीय उच्च–न्यायालय के आदेश के अनुपालन के सन्दर्भ में, १६६२–६३ का परीक्षाफल दिये जाने के लिए निदेशक बेसिक–शिक्षा तथा बे०शि०अ०, को बार–बार और अन्तिम अनुबोधन पत्र ११–३–६४ को दिया गया, किन्तु परीक्षाफल नहीं प्राप्त हुआ। अतः एक अनुबोधन पत्र की प्रति माननीय उच्च–न्यायालय के रजिस्ट्रार को समुचित कार्यवाही के लिए दी गयी किन्तु कुछ न हो सका।

लगातार कई वर्षों से इन संघर्षो से जूझते, अन्य जिलों के अपने शिक्षा–कार्यक्रम को लगभग उनके ही भाग्य के ऊपर ही छोड़कर १९९३–९४ के शिक्षा–सत्र के लिए सीतापुर जिले के ५२ निकेतनों के ४३१ विद्यार्थियों की पाँचवी कक्षा की परीक्षा के लिए बे०शि०अ० को दिनांकः ४–४–९४ को विवरण प्रस्तुत किये गये। माननीय शिक्षा–मंत्री ने भी हमारे निवेदन को सहानुभूतिपूर्वक निस्तारित करने के लिए लिखा परन्तु निदेशक बेसिक–शिक्षा ने हमारे विद्यार्थियों को परीक्षा में बैठने की अनुमति नहीं दी। शासन के सचिव, बेसिक–शिक्षा से भेंट की गई। उन्होंने तो स्पष्ट कहा कि बेसिक–शिक्षा –परिषद् अधिनियम में सरकार को इस विषय में कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। इसलिये उन्होंने हम लोगों का पत्र निदेशक बेसिक शिक्षा को "कृपया देख लें क्या मामला है" लिखकर भेज दिया। पुनः–पुनः निवेदन करने पर उन्होंने न्यायालय जाने के लिये कहा। अतः पुनः उच्च–न्यायालय की शरण में जाकर याचिका १२४४–१९९४ प्रस्तुत की गयी, जिस पर १३–५–९४ को आदेश हुए – "mean while to permit the students to appear in the examination 1993-94". "तब तक विद्यार्थियों को १९९३–९४ की परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जाती है"।

माननीय उच्च–न्यायालय के आदेश की प्रति उसी दिन बे०शि०अ० को व्यक्तिगत रूप से हस्तगत करा दी गयी। किन्तु वस्तुतः पूर्व में माननीय उच्च–न्यायालय के आदेशों की अवमानना अननुपालन और अवज्ञा तथा असत्य कथन सम्बन्धी वादों में दण्डित न किये जाने से उत्साहित, शिक्षा–विभाग के अधिकारियो ने न्यायालय के दिनांकः १३–५–९४ के आदेश प्रति भी वैसा ही रवैया अपनाया जैसा कि पूर्व आदेशों के साथ किया था।

विद्यार्थियों की परिक्षायें करवाने के बारे में माननीय उच्च न्यायालय के आदेशों के अनुपालन के लिए शिक्षा–संगठन के मंत्री के द्वारा निवेदन करते रहने के पश्चात् बेसिक–शिक्षा–अधिकारी ने दि० : १९–५–९४ को बताया कि निदेशक–बेसिक–शिक्षा तथा सचिव, बेसिक–शिक्षा–परिषद् भी,

अतः याचिका के पक्षकार रूप है, अतः उनसे निर्देश प्राप्त किये जा रहे हैं। लखनऊ में निदेशक और इलाहाबाद में सचिव बे०शि०परिषद् के यहाँ बार–बार सम्पर्क करने पर भी कुछ न हो सका। जिलाधिकारी सीतापुर, जिन्हें न्यायालय के आदेश की प्रति दी गयी, ने बे.शि.अ. को इस टिप्पणी के साथ भेज दी कि "न्यायालय के आदेश का अनुपालन करें अन्यथा उत्तरदायित्व उनका होगा"।

राष्ट्रपति शासन का समय होने के कारण मा० न्यायालय के आदेश अनुपालन में बाधा दूर कराने के लिये मा० अध्यक्ष विधान सभा से निवेदन किया गया, जिन्होंने न्यायालय का आदेश पढ़कर, प्रमुख–सचिव शिक्षा को न्यायालय के आदेश पालन कराने के लिखित निर्देश दिये और साथ ही दूरभाष पर समस्या के समाप्त कराने के लिये कहा। प्रमुख–सचिव से मिलने पर उन्होंने निदेशक–शिक्षा से दूरभाष पर बात की जिन्होंने इस प्रकार हुई किसी परीक्षा को ही स्वीकार नहीं किया। अतः तुरन्त ही शिक्षा–विभाग के अधिकारियों के हस्ताक्षर से राजकीय कोषागार में जमा कराये गये परीक्षा–शुल्क के ट्रेजरी चालान प्रमुख–सचिव के सम्मुख रख दिये गये। वह निरूत्तर थे। वहाँ के अन्य लोगों के आचरण से प्रतीत हुआ कि वह लोग भी तिकडम में संलग्न हैं और प्रमुख–सचिव असहाय।

अन्य किसी विकल्प के अभाव में यद्यपि माननीय उच्च–न्यायालय के आदेश का अनुपालन न किये जाने के बारे में पुनः अवमानना की कार्यवाही हेतु वाद प्रस्तुत किया गया किन्तु सभी सहयोगी कार्यकर्ताओं का मन बना कि शिक्षा–निदेशक व उनके अधीन कार्यालयों, प्रदेश सरकार के सचिवालयों, विधानसभा, विधान परिषद् तथा राजभवन जहाँ से हमें प्रभावी तथा सामयिक न्याय नहीं प्राप्त हो सका है, अब न जाया जाय। अपने सीमित जन–धन व समय–साधन का इन स्थानों पर अपव्यय करने की अपेक्षा वर्ष १६६१ की जनगणना के समय किये गये कार्य की भाँति, यह निर्णय लिया गया कि संस्कृत–मातृभाषियों को बचाने के लिए किये गये प्रयासों के प्रति सरकार द्वारा प्रदर्शित अवहेलना को देखते हुए जनतांत्रिक

रूप से आम आदमी को देश में डटकर खड़े होने का आह्वान किया जाय। और, सभी राजनैतिक दलों व उनकी सरकारों के सबको शिक्षित करने के ढोंग का मुखौटा हटा कर उनका असली चेहरा सबको दिखाया जाए।

यहाँ यह भी स्मरण करना आवश्यक है कि भारत के सर्वोच्च–न्यायालय द्वारा संस्कृत–भाषा की शिक्षा के बारे में एक बार स्पष्ट निर्णय देने के बाद भी भारत–सरकार के सचिव, मानव-संसाधन-विकास की ढिठाई का स्वाद सर्वोच्च–न्यायालय को पुनः चखना पड़ा। भारत सरकार के अतिरिक्त सालीसिटर जनरल श्री तुलसी जिन्होंने सेंन्ट्रल बोर्ड ऑफ सेकेण्डरी इजूकेशन की ओर से वहाँ पर संस्कृत को दूर रखने की दलीलें दी, के बारे में एक अन्य वाद में सर्वोच्च–न्यायालय ने अपनी मर्यादा और शिष्टाचार की भाषा में निर्णय देते हुए लिखा कि सरकार व बोर्ड की "संस्कृत को दूर रखने की इच्छा यहीं नहीं समाप्त हो जाती है, क्योंकि उनका यह भी अनुरोध है कि यदि संस्कृत आई तो बोर्ड को फ्रेंच और जर्मन जैसी भाषाओं को भी लाना पड़ेगा। यही नहीं सालीसीटर जनरल द्वारा यह भी कहा गया है कि बोर्ड अनुभव करता है, तब तो लेप्चा भाषा, जिसका नाम बहुत से भारतीयों ने न सुना होगा, में भी शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करनी पड़गी।" न्यायालय ने अपने निर्णय में आगे लिखा है कि "बोर्ड जैसी उत्तरदायी संस्था जिसको इस देश के युवा, जिसके हाथों में भविष्य की नियति है, को शिक्षित करने का अति मार्मिक कर्तव्य सौंपा गया है, के द्वारा अपनाये गये आधार को वह सराह नहीं कर पर रहे हैं क्योंकि वह सभी प्रकार से अधार्य है।" जब देश के सर्वोच्च स्तर पर सरकार का यह दृष्टिकोण और आचरण है तब छोटे से छोटे गाँवों में संस्कृत–मातृभाषी की अपनी शिक्षा के संघर्ष की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि सरकार व उसके शिक्षा बोर्ड की "संस्कृत को दूर रखन की इच्छा" के बारे में सर्वोच्च–न्यायालय की टिप्पणी से भासित है कि संस्कृत–मातृभाषियों की किसी इच्छा व प्रयास के विपरीत, सरकार अपने आचरण से उन को एक 'नखलिस्तान' की ओर धकेल रही है।

प्रदेश सरकार के शिक्षा–विभाग सहित शिक्षा–निदेशालय व बेसिक–शिक्षा–परिषद् के आचरण और व्यवहार की सदाशयता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि शिक्षा–निदेशालय द्वारा बेसिक–शिक्षा को अपनी निजी सम्पत्ति और व्यवसाय समझने के हठ के कारण जुलाई १६६३ में उत्तर–प्रदेश के समस्त जिला–परिषदों के निर्वाचित अध्यक्षों ने न केवल अपने त्याग पत्र महामहिम श्री राज्यपाल जी को सौंप दिये अपितु जिला–परिषद परिसर से बेसिक–शिक्षा–अधिकारियों को अपने कार्यालय हटा देने के लिए कह दिया। जब जिले के प्रमुख स्थानीय–निकाय के निर्वाचित प्रतिनिधियों की यह असहाय स्थिति है, तब संस्कृत–मातृभाषी आत्मेरित संगठन जो नितांत विपन्न, सुविधाहीन है तथा दुर्गम, आन्तरिक अंचलों में जैसे–तैसे ही कार्य कर रहें हैं की दशा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

गत वर्ष फरवरी २१, १६६६ में को एक प्रमुख हिन्दी उपन्यासकार जो किसी प्रशासकीय समिति में प्रदेश सरकार द्वारा नामित किये गये थे, को प्रदेश सरकार के ही एक प्रमुख–सचिव ने अकारण इतना अपमानित किया कि उन्होंने कह दिया कि वह समिति से त्यागपत्र दे देंगे। ऐसे में विपन्नों की स्थिति के लिये क्या कहा जाय ।

जब हमारी अवमानना हुई तब सर्वोच्च पदाधिकारियों को ध्यान देने का समय न था, अब प्रदेश में जब स्थिति इतनी विकृत हो चुकी है कि शासन के मंत्रियों की अवमानना होने लगी है, जैसा कि समाचार पत्रों मे खूब छप रहा है, तो हमें भी प्रसन्नता ही होती है। क्या प्रदेश के मुख्यमंत्री इस अवमानना से बच सकेंगे, विचारें।

इसी प्रकार के व्यवहार के कारण उत्तर प्रदेश संस्कृत–अकादमी के अध्यक्ष ने वहाँ के एक प्रकाशन में वहाँ के एक निदेशक, (सरकारी अधिकारी) के बारे में भी प्रकारान्तर से इसी प्रकार इंगित किया है।

प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम की पुस्तकों के अनुरूप संस्कृत मातृभाषियों को मुद्रित पुस्तकें न उपलब्ध करा सकने की स्थिति में उनका रूपान्तरण करवा छपवाने की अनुमति 'मनोयोग' ने बेसिक–शिक्षा–परिषद् से चाही थी। सर्वज्ञात है कि आर्थिक रूप से यह शुद्ध आर्थिक घाटे का कार्य है, किन्तु सरकार और उसका शिक्षा–विभाग पत्रों का उत्तर नहीं देता।

इस लम्बी खिंची लड़ाई में हमारे शिक्षा–निकेतन प्रथम शहीद हुए। लड़ाई की इस मुठभेड़ में इन प्रच्छन्न शत्रुओं के व्यवहार के कारण सैन्य रणनीति के अनुसर विवश होकर हम पीछे तो अवश्य हट गये हैं किन्तु युद्ध समाप्त नहीं हुआ है।

प्रयास – ३

केन्द्र व प्रदेश सरकार

संस्कृत–मातृभाषी बालकों की शिक्षा के लिए विभिन्न स्तरों पर किये गये प्रयास जिसका विवरण पूर्व पृष्ठों में दिया गया है, के निष्फल होने के कारण संस्कृत–मातृभाषियों की संस्था 'मनोयोग' ने उत्तर प्रदेश सरकार के विषेश सचिव, भाषाई अल्पसंख्यक नामित 'नोडल' अधिकारी के नाम ५–६–८६ को एक पत्र भेज कर यह निवेदन किया कि जहाँ कहीं अभिभावक अपने बच्चों की प्राथमिक शिक्षा संस्कृत–मातृभाषा माध्यम से दिलाने के लिए अग्रिम पञ्जीयन हेतु प्रार्थना पत्र दें वहाँ, अन्य भाषाई अल्पसंख्यकों की भाँति, संस्कृत–मातृभाषी बालकों की शिक्षा की व्यवस्था उनकी मातृभाषा–माध्यम से की जाये। किन्तु न तो इस पत्र की प्राप्ति ही स्वीकार की गयी और न ही उत्तर प्राप्त हुआ। संस्कृत–मातृभाषियों की समस्यायों को प्रस्तुत करने के लिए पत्र दिनांकः ५–६–८६ के द्वारा आयुक्त, भाषाई अल्पसंख्यक, भारत–सरकार से भेंट का समय मांगा गया। उसमें यह विशेषतः लिख दिया गया कि हम किसी जिद या हठ से यह निवेदन नहीं कर रहे हैं, अपितु संस्कृत– मातृभाषियों के समाप्त होने का संकट वास्तविक है। किन्तु कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ।

इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री जी से भी निवेदन करने हेतु भेंट के लिए समय माँगा गया। उनके विशेष कार्याधिकारी ने अपने अर्द्धशासकीय पत्रांक पीएस/११७७१/सीएम/–२/८६, दिनांकः १२–६–८६ द्वारा यह अवगत कराया कि यतः मा० मुख्यमंत्री अपनी पूर्व निर्धारित व्यस्तताओं के कारण भेंट का समय नहीं दे पा रहें हैं, अतः सम्बन्धित विषय को लिखकर भेज दिया जाय, जिससे उनकी जानकारी में पूरी बात लायी जा सके। अतः विस्तृत निवेदन मुख्यमंत्री जी के नाम भेज दिया गया है जो बाद में दो पुस्तिकाओं "जनसामान्य की अव्यक्त मातृभाषा–संस्कृत " तथा

"संस्कृत निदेशालय की स्थापना–एक ज्वलन्त समस्या" के रूप में प्रकाशित की गयी। विशेष कार्याधिकारी की एक पृच्छा के क्रम में उन्हें यह सूचित किया गया कि 'मनोयोग' का निवेदन सरकार से किसी अनुदान प्राप्त करने के लिए नहीं अपितु सरकार की घोषित नीति के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है । उन्हें यह भी अवगत कराया गया कि यह प्रकरण उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी से सम्बन्धित नहीं हैं, जिसे 'मनोयोग' का पूर्व पत्र विशेष कार्याधिकारी द्वारा भेज दिया गया है।

अतः, कहीं से प्रत्युत्तर के अभाव में दिनांकः २२–३–९० को महामहिम राष्ट्रपति महोदय से निवेदन किया गया (संलग्नक १)। इस पत्र की प्रतिलिपि आयुक्त भाषाई अल्पसंख्यक, महानिदेशक–जनगणना–कार्य भारत सरकार, उत्तर–प्रदेश सरकार के मा० शिक्षा मंत्री के साथ–साथ उत्तर–प्रदेश सरकार के शिक्षा–सचिव व सचिव, धर्मार्थ–कार्य विभाग को भेजी गयी। इसी पत्र की एक प्रतिलिपि संलग्न पुस्तिकाओं सहित श्री राज्यपाल उत्तर–प्रदेश के सम्मुख व्यक्तिगत रूप से १–५–९० को इस निवेदन के साथ प्रस्तुत की गयी कि वह अपने पदीय सत्प्रभाव से हस्तक्षेव करने का कष्ट करें। उन्होंने कृपापूर्वक, ध्यान से पूरे विषय को सुनने के पश्चात् सहमति व्यक्त की और पुनः शिक्षा–मंत्री तथा शिक्षा–सचिव से मिलने के निर्देश दिये तथा आश्वस्त किया कि वह सरकार को समुचित कार्यवाही के लिए लिखेंगे।

श्री राज्यपाल जी के निदेशानुसार उत्तर प्रदेश सरकार के शिक्षा-मंत्री, शिक्षा सचिव व सचिव राष्ट्रीय एकीकरण व धमार्थ कार्य विभाग तथा वहां के विशेष सचिव व संयुक्त सचिव से पुनः भेट पर पूर्ण विवरण प्रस्तुत करते हुए संस्कृत-मातृभाषियों की समस्याओं का समाधान कराने का निवेदन किया गया । प्रदेश के शिक्षा मंत्री श्री रमाशंकर कौशिक व श्री अशोक वाजपेई से ४.२.८६ को पृथक-पृथक भेंट कर संस्कृत मातृभाषा माध्यम से प्राथमिक शिक्षा प्रदान कराने का निवेदन किया गया। उन्हें यह भी

अबगत कराया गया कि यतः सरकार ने मातृभाषा माध्यम से प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने के अपने संवैधानिक दायित्व का निर्वाह नहीं किया है अतः 'मनोयोग' ने स्वतः अपनी ओर से इसकी व्यवस्था की है। उन्हे यह भी बताया गया कि जब तक सरकार इस पूरे कार्य को अपने साधनों से, अपने हाथ में नहीं लेती तब तक 'मनोयोग' अपनी सामर्थ्य भर अपना योगदान करने के लिये बचन बद्ध है। माननीय मंत्री महोदयों को दिये गये पत्रों, जो उनके द्वारा भाषा-विभाग को भेजे गये का परिणाम कभी ज्ञात न हो सका। अन्य भाषाओं के मातृभाषियों की भांति, संस्कृत मातृभाषी विद्यार्थियों को भुगतान के आधार पर पाठयक्रम की पुस्तकें उपलब्ध कराने की कोई व्यवस्था निवेदन करने पर भी नहीं की गई। अतः सरकार की प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित पाठय पुस्तकों का संस्कृत रूपान्तरण कर के मुद्रित कराने की अनुमति मांगी गई। किन्तु, वह भी प्राप्त न हुई। सभी जानते है कि यह कार्य आर्थिक रूप से लाभ का नहीं है, केवल सेवा के लिये ही 'मनोयोग' ने यह निवेदन किया था। वह भी सरकार को स्वीकार नहीं हुआ।

प्रदेश के मा० शिक्षा मंत्री श्री अशोक वाजपेई ने 'मनोयोग' के वार्षिक अधिवेशन २१/२३.३.६१ में श्री राज्यपाल जी की उपस्थिति में घोषित किया कि सरकार ने 'मनोयोग' की पृथक् "संस्कृत निदेशालय" स्थापना की मांग स्वीकार कर ली है। इस बारे में समाचार पत्रों के माध्यम से भ्रम की स्थिति निवारण हेतु प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव से भेंट कर संस्कृत-मातृभाषियों की समस्याओं, उनके साथ किए जा रहे भेद-भाव और असंवेदनशील व्यवहार, विशेषतः- सरकार के प्राथमिक विद्यालयों में संस्कृत मातृभाषा माध्यम से शिक्षा प्रदान करने, संस्कृत के पुराने न्यासों की प्राप्तियां उनके लाभार्थियों को दिलाना सुनिश्चित कराने और संस्कृत निदेशालय की स्थापना के निर्णय को शिक्षा, राष्ट्रीय एकीकरण और धमार्थ कार्य विभाग द्वारा लागू करवाने का निवेदन किया गया। उन्होने सहानुभूति पूर्वक विषय को सुना और कार्यवाही कराने का आश्वासन दिया।

मुख्य सचिव श्री वी.के. सक्सेना से भेंट के पश्चात, कदाचित् उन्हीं के निदेश से विशेष-सचिव शिक्षा श्री योगेश कुमार ने सरकार के शिक्षा विभाग और शिक्षा-निदेशालय के अधिकारियों की एक बैठक बुलाई जिसमें 'मनोयोग' को भी आमंत्रित किया गया। 'मनोयोग' के प्रार्थना पत्रों के बारे में शिक्षा-विभाग के अधिकारियों का मत सुनने-समझने के पश्चात्, विशेष सचिव ने 'मनोयोग' का मत सुना। बैठक में उपस्थित सचिवालय सेवा के एक अधिकारी जो 'मनोयोग' द्वारा पूर्व में दिये गये प्रतिवेदनों को पढ़ कर कदाचित पूरी तैयारी से बैठक में आये थे, ने संस्कृत मातृभाषियों के बारे में दिये गये तथ्यों को स्वीकार किया। शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने भी संस्कृत-मातृभाषियों को ध्यान में रख कर कोई सेवा न प्रदान किये जाने की पुष्टि की किन्तु बजट की कमी का प्रकरण उठाया। 'मनोयोग' की ओर से 'बजट' की समस्या का समाधान भी प्रस्तुत किया गया। अन्त में विशेष-सचिव ने 'मनोयोग' की मांगों को सैद्धन्तिक, व्यवहारिक और वास्तविक स्वीकार करते हुए, बैठक में प्रस्तुत प्रस्ताव को औपचारिक रूप से शीघ्र देने को कहा। तदनुसार १४.५.६१ को पूरा प्रस्ताव पुस्तकाकार रूप में विशेष सचिव को 'मनोयोग' द्वारा प्रस्तुत कर दिया गया, जिसमें संस्कृत-मातृभाषियों की प्राथमिक शिक्षा, संस्कृत माध्यम से शिक्षा के साथ ही संस्कृत-शिक्षा से सम्बन्धित न्यासों के प्रबन्धन को भी सम्मिलित किया गया था। किन्तु उसके कुछ ही समय बाद प्रदेश में निर्वाचन, अधिकारियों के स्थानान्तरण और नई सरकार के गठन के बाद इस क्रम में हुई प्रगति की कोई जानकारी न हो सकी।

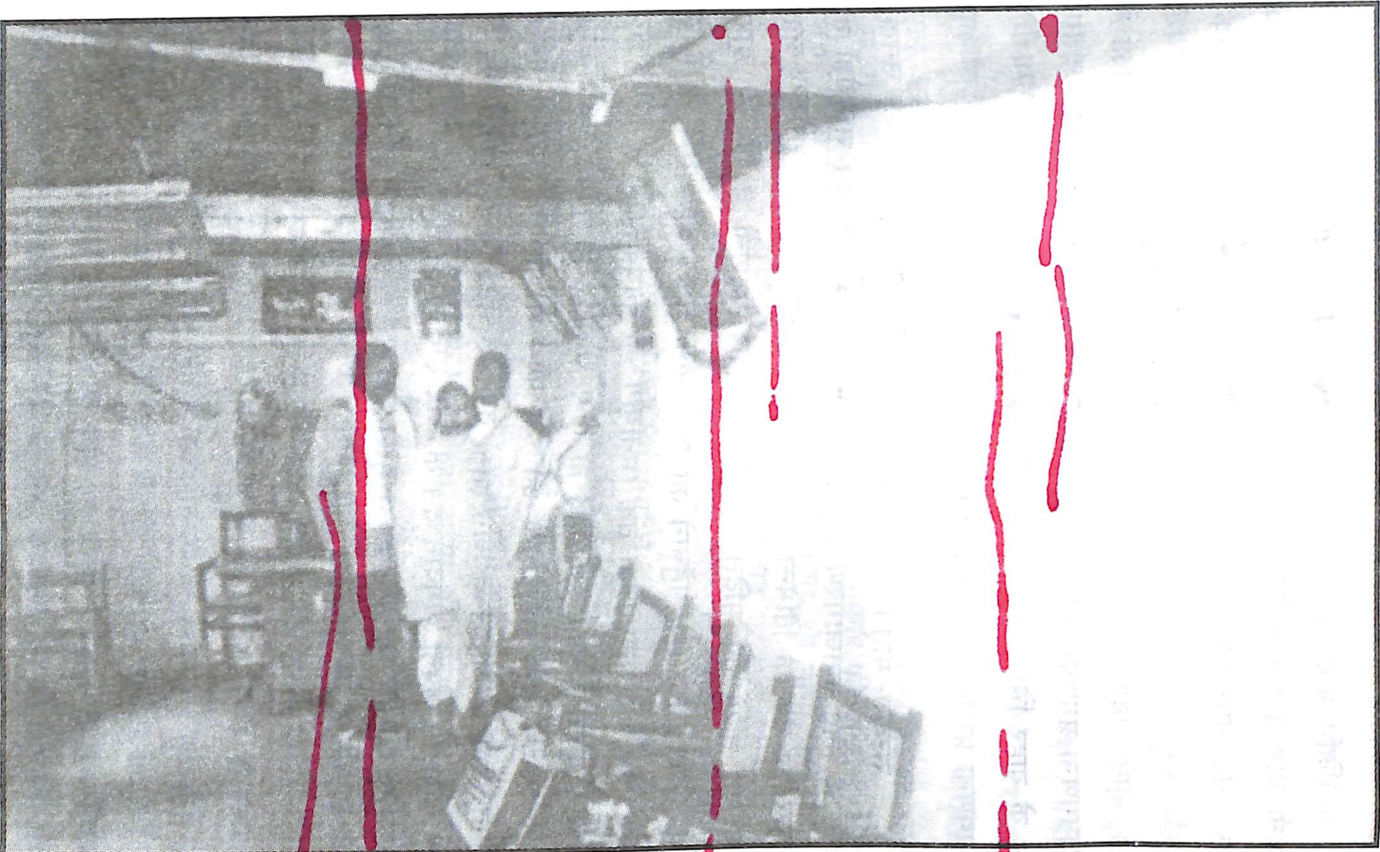
भारत के जनगणना कार्य के महानिदेशक, नई दिल्ली तथा श्री राज्यपाल जी उत्तर प्रदेश जिन्होंने हमारे निवेदनों पर कार्यवाही की, को छोड़कर, श्री राष्ट्रपति महोदय जिन्हें पत्र सम्बोधित था और अन्य पदाधिकारी व अधिकारी जिन्हें उसकी प्रतिलिपियाँ भेजी गयी थी, से उत्तर प्राप्त होना तो दूर उसकी प्राप्ति भी स्वीकार नहीं की गयी। जनगणना कार्य महानिदेशालय, नई दिल्ली के निदेशक ने अपने पत्र दिनांकः ५-६-६०

द्वारा यह अवगत कराया कि जनगणना प्रगणकों को मातृभाषा सही अंकित करने के बारे में सजग रहने के निर्देश दिये गये हैं। जनगणना कार्य महानिदेशालय के पत्र व निर्देश की फोटो-स्टेट प्रतियाँ 'मनोयोग' ने अपनी ओर से उत्तर-प्रदेश के समस्त जिलों तथा अन्य प्रदेशों के अपने प्रमुख सम्पर्क-सूत्रों के पास सही गणना कराने के अपने निवेदन के साथ भिजवा दीं।

संस्कृत-मातृभाषियों के प्रति सरकार का भेदभावपूर्ण और असंवेदनशील रुख भांपकर 'मनोयोग' ने एक ओर तो सरकार से अपनी समस्याओं के निराकरण के लिए अनुसरण जारी रखा किन्तु दूसरी ओर इस समस्या के प्रति जनजागरण के कार्यक्रम को सुदृढ़ कर "संस्कृत-मातृभाषिणः समाप्त प्रायाः" प्रपत्र व "जनगणना-प्रगणक ध्यान दें-हम संस्कृत मातृभाषी हैं" चिप्पियां (स्टिकरों) तथा "जनसामान्य की अव्यक्त-मातृभाषा-संस्कृत" पुस्तिका व अन्य विभिन्न संचार-माध्यमों से अगली जनगणना में अपनी मातृभाषा सही अंकित करवाकर सकारात्मक-प्रजातांत्रिक रूप से अपने अस्तित्व के संघर्ष को जारी रखने का निर्णय लिया।

मातृभाषा के महत्त्व और प्रदेशवार एवं उत्तर-प्रदेश में जिलेवार संस्कृत-मातृभाषियों की संख्या के बारे में मुद्रित प्रपत्रों द्वारा जन सामान्य को सं०मातृभाषियों के अस्तित्व के आसन्न संकट के बारे में अवगत कराया गया। इसी क्रम में केन्द्र-सरकार के प्रमुख विभागों, सभी मंत्रियों तथा उत्तर-प्रदेश के सभी सांसदों, उत्तर-प्रदेश के सभी मंत्रियों, विधान-सभा व विधान-परिषद के सभी सदस्यों, शासन के सभी सचिवों व विभागाध्यक्षों, उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों के सभी ग्राम प्रधानों को राष्ट्रीय नववर्ष मार्च १९९० की शुभकामनाओं के माध्यम से संस्कृत-मातृभाषियों के अस्तित्व के आसन्न संकट की स्थिति के बारे में विचार करने का निवेदन किया गया।

भारत के जनगणना कार्य महानिदेशक-आयुक्त, जिन्हें महामहिम श्री राष्ट्रपति जी को सम्बोधित 'मनोयोग' के प्रार्थना पत्र दिनांकः २२-३-९०



केदारनाथ में प्रदर्शनी लगाते (बायें) श्री रामचन्द्र व श्री सुरेन्द्र प्रसाद

की प्रतिलिपि भेजी गयी थी, से प्राप्त उत्तर व निर्देशों को 'मनोयोग' ने अपनी ओर से देश के विभिन्न भागों में बसे अपने ज्ञात संस्कृत–मातृभाषियों और उनके माध्यम से अन्य लोगों को भी अवगत कराकर व्यक्तिगत सम्पर्क, गोष्ठी, पत्र, समाचार पत्र–पत्रिकाओं आदि के द्वारा अज्ञात सं०मातृभाषियों तक अपना संदेश पहुँचाने का प्रयास किया। उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों में "जनगणना प्रगणक ध्यान दें" 'हम संस्कृत मातृभाषी है' की मुद्रित प्रतियां घर के बाहर चिपकवाकर यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया कि जनगणना प्रगणकों को कोई भ्रम न रहें।

संस्कृत–मातृभाषियों के बारे में उनके ही बीच सजगता एवं उनकी शिक्षा के लिए जनजागरण हेतु प्रमुख वार्षिक उत्सव व जन समारोहों के अवसर पर देश के विभिन्न भागों में, बद्री–केदार से लेकर रामेश्वर तक सम्बन्धित तथ्यों को मुद्रित रूप में व सचल प्रदर्शनी व शिविरों द्वारा अधिकाधिक लोगों तक पहुँचाने का यत्न किया गया। छोटे–छोटे ग्रामों से लेकर प्रदेश की राजधानियों तक 'मनोयोग' के कार्यकर्ताओं ने यथासम्भव अपना योगदान किया। इस कार्य के लिए सीतापुर जिले को मुख्य केन्द्र मानकर अपने सभी सहयोगियों को इस कार्य में भागीदार बनाया गया। साक्षात् संपर्क के अतिरिक्त जिन लोगों तक यह संदेश केवल मुद्रित रूप मे पहुँच सका, ने अपना योगदान देने के लिए हमें सूचित किया। लखनऊ के एक प्रमुख दैनिक समाचार–पत्र ने मुख्य पृष्ठ पर ही क्रमवार दो दिन तथ्य पूर्ण पूरे विवरण को प्रकाशित किया।

प्रयास—४

भाषाई अल्पसंख्यक—आयोग

जैसा पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, 'मनोयोग' ने अपने पत्र दिनांकः ५—६—८६ द्वारा संस्कृत—मातृभाषियों की समस्याओं के निराकरण के लिए भाषाई अल्पसंख्यकों हेतु उत्तर—प्रदेश सरकार के नामित नोडल ऑफिसर, लखनऊ तथा भाषाई अल्पसंख्यक आयुक्त, भारत सरकार, इलाहाबाद से निवेदन किया था। कोई उत्तर प्राप्त न होने पर जब आयुक्त, भाषाई अल्पसंख्यक, इलाहाबाद के यहाँ सम्पर्क किया गया तो बताया गया कि न तो यहाँ पर दिये जाने वाले पत्र की प्राप्ति स्वीकार की जाती है और न उत्तर दिया जाता है। उनसे मिलने के लिए समय भी मांगा गया किन्तु कोई उत्तर प्राप्त न हो सका। उत्तर-प्रदेश सरकार के सचिवालय से भी नोडल अधिकारी के यहाँ से कोई उत्तर अथवा जानकारी प्राप्त न हो सकी।

सभी ओर से निराश होकर 'मनोयोग' ने महामहिम श्री राष्ट्रपति जी के नाम प्रार्थना पत्र भेजकर समस्या के निराकरण का अनुरोध २२—३—९० को किया था । इस पत्र की प्रति, रजिस्टर्ड डाक द्वारा भाषाई अल्पसंख्यक आयुक्त, भारत सरकार, इलाहाबाद को भेजी गयी थी। भाषाई अल्पसंख्यक आयुक्त द्वारा उत्तर—प्रदेश सरकार के शिक्षा—सचिव को, संस्कृत—मातृभाषियों की समस्याओं के निराकरण के बारे में दिनांकित १५—२—९१ को भेजे गये तात्कालिक अनुबोधक पत्र, जिसकी प्रतिलिपि 'मनोयोग' को पृष्ठांकित की गई थी, से ज्ञात हुआ कि "मनोयोग" का प्रार्थना—पत्र प्रदेश सरकार को कार्यवाही के लिए भेजा गया है। इस संदर्भ में जब शिक्षा सचिव से सम्पर्क किया गया तो ज्ञात हुआ कि भाषाई अल्पसंख्यक आयुक्त लखनऊ आये थे और मुख्य सचिव के साथ उनकी बैठक भी हुई थी। यह उल्लेखनीय है कि न तो आयुक्त भाषाई अल्पसंख्यक और न प्रदेश सरकार ने इस बैठक अथवा आयुक्त के लखनऊ आने की सूचना 'मनोयोग' को दी, अन्यथा भेंट करके उनको तथ्यों से अवगत कराया जा सकता था।

उत्तर प्रदेश सरकार के मा० शिक्षा–मंत्री को 'मनोयोग' द्वारा दिये गये अगस्त १९९१ और जनवरी १९९२ के पत्रों, जिनमें सं० मातृभाषियों की कठिनाइयों के निवारण का निवेदन तथा सरकार के असंवेदनशील व्यवहार का उल्लेख था, की प्रतिलिपियाँ समुचित कार्यवाही के लिए भाषाई अल्पसंख्यक आयोग को भी भेजी गईं थीं। किन्तु कार्यवाही होना या उत्तर प्राप्त होना तो दूर, पत्रों की प्राप्ति भी स्वीकार नहीं की गयी।

आयुक्त, भाषाई अल्पसंख्यक, ने जुलाई १९९० से १९९१ की अवधि की अपनी तीसवीं वार्षिक रिपोर्ट में विचाराधीन कुछ शिकायतों की सूची में 'मनोयोग' की शिकायत का उल्लेख किया है। इस रिपोर्ट में उत्तर–प्रदेश के बारे में वर्ष १९८७ और १९८८ के आँकड़े इस टिप्पणी के साथ दिये गये हैं कि प्रदेश सरकार द्वारा दी गयी सूचना अधूरी है। संस्कृत का उल्लेख केवल कर्नाटक राज्य के संदर्भ में किया गया है जहाँ संस्कृत बोलने वालों की संख्या २१४६ अंकित की गयी है । यह संख्या जनगणना के आंकड़ों से मेल नहीं खाती। रिपोर्ट में स्कूलों की संख्या, संस्कृत–माध्यम की कक्षाओं की संख्या, दोनों श्रेणियों के विद्यार्थियों की संख्या, भाषा स्वरूप संस्कृत पढ़ने वालों की संख्या तथा उनसे सम्बन्धित शिक्षकों की संख्या वर्ष १९८७–८८ की दी गयी है।

तीसवीं रिपोर्ट के पश्चात् छपी रिपोर्टों में अन्य प्रदेशों की बात तो छोड़ें, कर्नाटक के बारे में पूर्व की भाँति सूचना देना बन्द कर दिया गया है। हो सकता है, संस्कृत–मातृभाषियों के बारे में सूचना देने की परम्परा को देश की कुल संख्या में इनकी संख्या १५ प्रतिशत से कम होने के कारण बन्द कर दिया गया हो, किन्तु अन्य भाषाओं के बारे में यह प्रतिबन्ध नहीं रखा गया है। यह भी हो सकता है कि संस्कृत–मातृभाषियों को भाषाई–अल्पसंख्यक स्वीकार करने से आयोग अपने हाथ खींच लेना चाहता हो।

भाषाई–अल्पसंख्यक आयोग ने अपनी ३१वीं रिपोर्ट में लिखा है कि आयुक्त ने खेरासराय (जौनपुर, उत्तर प्रदेश) तथा इलाहाबाद में (भाषाई

अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों की) बैठकों में भाग लिया एवं अन्य प्रदेशों में भी जाकर समूहों में बैठकें की । यह ध्यान देने की बात है कि संस्कृत–मातृभाषियों की समस्याओं को सुनने का अवसर, समय मांगने पर भी, आयुक्त ने 'मनोयोग' को नहीं दिया । इसी रिपोर्ट में यद्यपि संस्कृत का विरोध करने वालों के संदर्भ दिये गये हैं किन्तु संस्कृत–मातृभाषियों द्वारा की गयी शिकायतों के बारे में रिपोर्ट मौन है । उत्तर–प्रदेश के मुख्य सचिव के साथ आयुक्त भाषाई अल्पसंख्यक की बैठक के विवरण में भी केवल एक भाषाई–अल्पसंख्यक विशेष का ही उल्लेख किया गया है । भाषाई–अल्पसंख्यकों में भी अल्प–संख्यक, संस्कृत–मातृभाषियों को अल्प–संख्यकों के बीच के बहुसंख्यकों की अपेक्षा, किनारे सरका दिया गया है । रिपोर्ट में दिये गये विवरण से स्वतः स्पष्ट है कि संस्कृत–मातृभाषियों के बारे में आयुक्त ने मुख्य सचिव के यहाँ हुई बैठक में चर्चा ही नहीं की ।

आयोग ने अपनी ३२वीं रिपोर्ट में इस बात का उल्लेख किया है कि अरबी, फारसी मदरसों की मान्यता और सरकार द्वारा उन्हें अनुदान किये जाने के आदेश जारी कर दिये गये हैं । अभी तक प्रकाशित अपनी अन्तिम ३३ वीं रिपोर्ट (जुलाई १९९२ से जून १९९३) में आयोग ने भाषाई–अल्पसंख्यकों में से ९.२ प्रतिशत वाले बहुसंख्यकों पर ही अपनी दृष्टि पूर्णतः केन्द्रित रखी है । इस रिपोर्ट के अनुसार उत्तर–प्रदेश सरकार ने ११ जिलों की २२ तहसीलों को एक भाषा–विशेष के लिए भाषाई–अल्पसंख्यक ज्ञापित कर दिया है जहाँ उनकी संख्या स्थानीय जनसंख्या का १५ प्रतिशत अथवा अधिक है।

संस्कृत–मातृभाषियों की संख्या के आधार पर उन्हें तदनुसार घोषित करने के लिए प्रदेश–सरकार व उनसे सम्बन्धित जिला–प्रशासक मौन साधे हैं ।

जनगणना वर्ष १९८१ की रिपोर्ट के पश्चात् अपने पूर्व प्रकाशन में 'मनोयोग' ने इस बात का उल्लेख किया था कि भाषाई–अल्पसंख्यक आयोग ने अपनी १९वीं वार्षिक रिपोर्ट में यह अंकित किया है कि देश में

संस्कृत मातृभाषा के माध्यम से प्राथमिक स्तर की शिक्षा की व्यवस्था किसी प्रदेश में नहीं है । आयोग ने अपनी २४वीं रिपोर्ट में कर्नाटक में माध्यमिक स्तर पर संस्कृत माध्यम से शिक्षा की स्थिति पर प्रकाश डाला था ।

तदनुसार कर्नाटक में संस्कृत–भाषा के माध्यम से शिक्षा की स्थिति इस प्रकार है :

वर्ष	अल्पसंख्यक संस्कृत–मातृभाषा माध्यम से शिक्षा के स्कूलों की संख्या	पूर्व स्तम्भ की भांति पृथक् कक्षाओं की संख्या	स्तम्भ २ व ३ के छात्रों की संख्या	भाषा रूप में संस्कृत अल्प–संख्यक भाषा पढ़ने वालों की संचया	कार्यरत शिक्षकों की संख्या
१	२	३	४	५	६
१९८१–८२	१०	२८	६७१	६,४६३	१,७३८
१९८२–८३	१४	६८	६,२८५	१३,१२५	१५८

इन्हीं तथ्यों के आधार पर 'मनोयोग' ने अपने उस प्रकाशन में टिप्पणी द्वारा स्पष्ट किया था कि कर्नाटक में वर्ष १९८१–८२ में शिक्षकों की संख्या १७३८ थी, जो यद्यपि वर्ष १९८२–८३ में घटकर १५८ हो गयी किन्तु भाषा स्वरूप संस्कृत पढ़ने वालों की संख्या ६४६३ से बढ़कर १३१२५ हो गयी तथा संस्कृत माध्यम से पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या ६७१ से बढ़कर ६२८५ हो गयी एवं कक्षाओं की संख्या बढ़कर २८ से ६८ हो गयी । विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि के पश्चात् भी शिक्षकों की संख्या में घटोत्तरी, संस्कृत–शिक्षा, विशेषतः मातृभाषा रुप में, के प्रति सरकार का व्यवहार इंगित करती हैं ।

आयोग की उसी रिपोर्ट से 'मनोयोग' ने भेदभाव का दूसरा उदाहरण उत्तर–प्रदेश का दिया था जहाँ संस्कृत–माध्यम से शिक्षण की व्यवस्था

सरकार द्वारा नहीं की गयी है, यद्यपि उर्दू–शिक्षण की व्यवस्था और उसके आंकड़े इस प्रकार दिये गये :–

(क) माध्यमिक शिक्षा के अर्न्तगत उर्दू :–

वर्ष	स्कूलों की संख्या		छात्रों की संख्या		अध्यापकों की संख्या
	उर्दू माध्यम	उर्दू भाषा रूप में	उर्दू माध्यम	उर्दू भाषा के रूप में	
१९७१–७२	५	६१०	२,७६६	४,७४४	६३६
१९८१–८२	१४६	१५४	१७,८१७	१,०४,७३१	२५५०

(ख) प्राथमिक शिक्षा के अर्न्तगत उर्दू :–

वर्ष	स्कूलों की संख्या		छात्रों की संख्या		अध्यापकों की संख्या
	उर्दू माध्यम	उर्दू भाषा रूप में	उर्दू माध्यम	उर्दू भाषा के रूप में	
१९८१–८२	१७७८	३६६०	२२२४३७	१५६१४३	५४४६+३८६७

आयोग की इसी सूचना के आधार पर 'मनोयोग' ने अपने विगत प्रकाशन में यह टिप्पणी की थी कि १९७१–८१ के दशाब्द में उर्दू–माध्यम से शिक्षण देने वाली संस्थाओं की संख्या ५ से बढ़कर १४६, विद्यार्थियों की संख्या २७६६ से बढ़कर १७८१७ और शिक्षकों की संख्या ६३६ से बढ़कर २५५० हो गयी जो क्रमशः २८८ प्रतिशत, ६२६ प्रतिशत तथा २७२ प्रतिशत वृद्धि इंगित करता है ।

इन सब परिस्थितियों के रहते, यह भी उल्लेखनीय है कि आयोग ने अपनी चौबीसवीं रिपोर्ट में यह अंकित किया कि यद्यपि आयोग की तेरहवीं रिपोर्ट (जो जुलाई १९७० से जनू १९७१ तक की है और मई १९७१ में संसद में प्रस्तुत हो चुकी है), से लेकर इक्कीसवीं रिपोर्ट (जो जुलाई १९७० से जून १९८१ तक की है और दिसम्बर १९८१ में आयोग ने प्रस्तुत कर दी थी) पर लोकसभा में चर्चा नहीं हुई । आयोग ने आगे लिखा है कि :–

"इक्कीसवीं रिपोर्ट जो कि सरकार को दिसम्बर १६८१ में प्रस्तुत की गयी थी, उसे नवम्बर १६८३ में लगभग दो वर्ष के बाद संसद् के समक्ष रखा गया । बाइसवीं और तेइसवीं रिपोर्ट जो कि सरकार को क्रमशः ३१ दिसम्बर १६८२ और २६ दिसम्बर १६८३ को प्रस्तुत की गयी थी, उन्हें संसद् के समक्ष रखना अभी बाकी है ।"

आयोग ने अपनी चौबीसवीं रिपोर्ट में आगे यह लिखा है कि– "इस प्रकार के असाधारण विलम्ब से भाषाजात अल्पसंख्यकों के मन में उपेक्षा और भेदभाव की भावना उत्पन्न होने तथा उनके हितों के सुरक्षण देने के निमित्त स्थापित संरचना के प्रति उनकी निष्ठा कम हो जाने की संभावना रहती है । परिणामतः उस विशिष्ट प्रयोजन के निष्फल हो जाने की आशंका बनी रहती है, जिसके लिए भाषाजात अल्पसंख्यकों के लिए सुरक्षणें की योजना बनायी गयी है । यही उचित समय है जबकि सरकार को इस मामले पर उपयुक्त उपचारी कार्यवाही करनी चाहिए" ।

प्रदेश सरकारों से अपेक्षित सूचना प्राप्त न हो सकने का उल्लेख विगत तीन रिपोर्टों में आयोग कर चुका है । सवैधानिक संस्थाओं की स्वयं अपनी स्थिति के बारे में जब यह टिप्पणियाँ हैं तो एक सामान्य संस्कृत–मातृभाषी नागरिक की स्थिति का अनुमानं 'नक्करखाने में तूती की आवाज' के अनुसार किया जा सकता है । आयोग ने अपनी तीसवीं रिपोर्ट के पश्चात की रिपोर्टों में, इस बिन्दु को क्यों नहीं छुआ, यह तो आयोग ही जाने ।

संस्कृत–मातृभाषी इस तथ्य से भलीभांति सजग हैं कि भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए संवैधानिक सुरक्षा कवचों का प्रयोग केवल उसी सीमा तक होना चाहिए कि वह राष्ट्र के इकाई स्वरूप ताने–बाने को हानि न पहुँचावे और विघटनकारी प्रवृतियों को बढ़ावा न दें, किन्तु जिस प्रकार संस्कृत मातृभाषियों की अनसुनी, अनदेखाभाली की जा रही है और भेदभाव करके देश की मुख्यधार से उन्हें पृथक् रखा जा रहा है, के कारण वह अपनी ओर से बिना किसी नकारात्मक अथवा सकारात्मक प्रयास के एक पृथक् धारा के रूप में स्वतः स्वाभाविक रूप से परिवर्तित हो जायेगा ।

प्रयास–५

माननीय विधान–सभा, उत्तर–प्रदेश को प्रस्तुत याचिका

केन्द्र व प्रदेश सरकार के असंवेदनशील व्यवहार के कारण संस्कृत मातृभाषियों की व्यथा–कथा–सहायता के लिये "मनोयोग" की याचिका (संलग्नक–२) माननीय विधान–सभा उत्तर-प्रदेश को उसके सचिवालय लखनऊ में प्रस्तुत की गयी । सभा में प्रस्तुत होने में अत्यधिक विलम्ब होता देखकर १०.१.९२ के विधानसभा के सचिव के नाम अनुबोधन–पत्र भेजा गया तथा माननीय अध्यक्ष विधान–सभा से दिनांक १४.१.९२ को भेंट कर याचिका की एक प्रति देकर, शीघ्र न्याय प्रदान कराने का निवेदन किया गया। अध्यक्ष, विधान-सभा श्री केसरी नाथ त्रिपाठी जो स्वयं प्रदेश के उच्च–न्यायालय के प्रतिष्ठित एडवोकेट भी हैं, ने याचिका ध्यान से पढ़ी और कहा "मैं विषय को समझ गया; कार्यवाही होगी"। उन्होंने हमारी याचिका शिक्षा मंत्री के पास कार्यवाही हेतु भिजवा दी और पत्र की प्रतिलिपि "मनोयोग" को भी पृष्ठांकित कर दी। विधान–सभा सचिवालय के उप सचिव ने "मनोयोग" को अपने पत्र दिनांक १८.२.९२ द्वारा याचिका न प्राप्त होने का उल्लेख किया। परन्तु हमारी याचिका मा० विधान सभा के सम्मुख ३.४.९२ को प्रस्तुत हुई जिसे स्वीकार कर याचिका–समिति को संदर्भित कर दिया गया। किसी कार्यवाही के न होने पर, पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि प्रदेश–सरकार का न तो राष्ट्रीय एकीकरण विभाग और न शिक्षा विभाग ही याचिका के बिन्दुओं को अपने कार्य से सम्बन्धित मानता है। इसके फलस्वरूप याचिका की पत्रावली दोनों विभागों के बीच पत्राचार में है। दोनों विभागों के सम्बन्धित सचिवों से कई बार भेंट कर निवेदन किया गया कि जो उत्तर वह ठीक समझें, विधान–सभा के सचिव को भिजवा दे, जिससे कार्यवाही तो आगे बढ़े, किन्तु इस बारे में बहुत प्रयास करने पर भी कुछ न हो सका।

अतः हरदोई जिले की एक पूर्व विधायक के माध्यम व साथ "मनोयोग" के पदाधिकारियों ने मा० विधान-सभा उपाध्यक्ष श्री राम आसरे वर्मा, जो पदेन याचिका समिति के अध्यक्ष थे, से भेट की और "मनोयोग" की संस्कृत–मातृभाषियों की लम्बित महत्त्वपूर्ण याचिका का शीघ्र निरस्तारण

करा देने का निवेदन किया। मा० उपाध्यक्ष जी ने कुछ लोगों के द्वारा परोक्ष विरोध करने पर भी याचिका समिति की बैठक २२.११.९२ को आहूत करने तथा शासन से सम्बन्धित सचिवों को साक्ष्य के लिये तिथि सूचित करने के आदेश दे दिये । मा० अध्यक्ष ने यह भी आश्वासन दिया कि याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई का भी अवसर दिया जायेगा।

"मनोयोग" के पदाधिकारियों ने उत्तर–प्रदेश सरकार के सम्बन्धित दोनो सचिवों (सचिव उच्च शिक्षा व सचिव राष्ट्रीय एकीकरण) से भेंट कर संस्कृत–मातृभाषियों के लम्बित, विशेषतः जो याचिका में दिये गये हैं, का निस्तारण कराने में न्याय का पक्षधर रहने का निवेदन किया। याचिका समिति के सदस्यों से व्यक्तिगत रूप से भेट कर निवेदन किया गया।

याचिका समिति की बैठक के दिन सचिवालय के सम्बन्धित कक्ष के बाहर ही अधिकारियों, सचिवों, सदस्यों व अध्यक्ष को आते–जाते हम अभिवादन करते रहे। उसके एक दो–दिन बाद, सचिव राष्ट्रीय एकीकरण से पुनः भेंट की गई। उन्होंने बताया कि इस विषय को राष्ट्रीय एकीकरण विभाग द्वारा निस्तारित किये जाने के लिये सहमति हो गयी है। सरकार की ओर से समिति को यह बता दिया गया है कि संस्कृत भाषाई अल्पसंख्यकों के बारे में केन्द्र सरकार की अनुमति प्राप्त होने के पश्चात् ही कार्यवाही की जा सकेगी। सचिव ने सान्त्वना के स्वर में यह भी कहा कि उन्होंने स्वयं अपने ऊपर यह दायित्व इसलिये लिया है क्योंकि पूर्व में केन्द्र सरकार में नियुक्त रहने के कारण उन्हें विषय की जानकारी भी हैं और अगले माह के प्रथम सप्ताह में जब वह दिल्ली जायेंगे तब मामले को शीघ्र निस्तारित करा देगें। किन्तु जब उनसे याचिका के अन्य बिन्दुओं के बारे में जानकारी चाही गई वह निरूत्तर थे। ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे सभी बिन्दुओं पर विचार ही नहीं हुआ।

इसके कुछ ही दिन के पश्चात् विधान–सभा भंग हो गयी। अन्ततोगत्वा याचिका के किसी बिन्दु पर कुछ भी न हो सका। औपचारिक उत्तर की जानकारी देने का कोई प्रश्न ही नहीं।

राज्यसभा को दी गई हमारी याचिका (संलग्नक–३) का प्रमाण हमारे पास उपलब्ध नहीं है। उस पर हुई कार्यवाही की जानकारी भी हम न कर सके।

प्रयास–६

अभिज्ञान-शिक्षण–प्रशिक्षण–प्रसार

संस्कृत के मातृभाषी–स्वरूप व संस्कृत मातृभाषी–परिवारों के संरक्षण, उनकी शिक्षा व विकास के लिए उत्तर–प्रदेश के स्थानीय निकायों, शिक्षा निदेशालय, प्रदेश–केन्द्र सरकार, भाषाई अल्पसंख्यक आयोग, विधानसभा आदि के माध्यम से किये गये से किये गये प्रयासों का संक्षेप में उल्लेख पूर्व पृष्ठों में किया गया है। किन्तु संस्कृत–मातृभाषियों व उस के मातृभाषी स्वरूप का संरक्षण, तो वस्तुतः सं०मा०भाषियों को स्वयं ही अपने आचरण और व्यवहार से करना है।

अतः इसी मन्तव्य से देश में संस्कृत–मातृभाषियों की वर्तमान संख्या और पिछले दशकों में हुई गिरावट का संकलन कर सर्वप्रथम उन्हें ढूँढ़ने व पहचानने का कार्य अपने कुछ सहयोगियों के साथ प्रारम्भ किया गया। इस प्रयास में, सम्पर्क में आने वाले लोगों को, सं०मा०भाषियों के विलुप्तप्राय वर्ग के संकट के प्रति सजग किया गया। संस्कृत–मातृभाषी चिह्नित इन परिवारों से अपनी जगह दृढ़ रहने और पारस्परिक सहयोग का निवेदन किया गया। साथ ही उनसे ऐसे परिवारों को चिह्नित करने के लिए कहा गया, जो अभी अन्य भाषाओं के पूरे प्रभाव में नहीं हैं। नगरों में अनौपचारिक वार्ताओं के पश्चात् ग्रामीण–क्षेत्रों में भी जाना प्रारम्भ किया गया।

ग्रामों में जाने पर अनुभव हुआ कि वस्तुतः सं०मातृभाषी स्वयं तो सजग थे, किन्तु परिस्थिति व परिवेश–वश अपने और अपनों तक ही सीमित थे। इस "अभिज्ञान–अभियान" में बालकों की नैसर्गिक क्षमता व योग्यता के अनुरूप शिक्षा व आर्थिक प्रगति के अवसर की सुविधा के अभाव के प्रकरण बहुधा आ जाते थे। अतः यह विचार किया गया कि नैसर्गिक प्रतिभावान् बालकों को, उनकी विशेषताओं के आधार के अनुसार ही शिक्षा की व्यवस्था की जाये। इस कार्य के लिए विशेषज्ञों के सहयोग से आधुनिक वैज्ञानिक

प्रयोगशाला स्थापित करने के बाद बालकों की क्षमता का परीक्षण कार्य प्रारम्भ हुआ। कुछ आश्चर्यजनक परिणाम भी प्राप्त हुए। किन्तु यह भी स्पष्ट हुआ कि यह कार्य स्वयं ही इतना बड़ा है कि इसमें लगने के बाद साधनों के सीमित होने के कारण संस्कृत के मातृभाषी स्वरुप का संरक्षण – कार्य पिछड़ जायेगा। अतः यद्यपि संस्कृत–मातृभाषियों के संरक्षण के कार्य को ही पूरी शक्ति से करने का निर्णय लिया गया, किन्तु मनोविज्ञान के दूरगामी प्रभाव के कार्य का मोह छोड़कर, संस्था का नाम "मनोयोग" ही निर्धारित किया गया, जिससे विज्ञान व विश्व के आधुनिकतम परिवेश से संस्कृत–मातृभाषी जुड़े रहें। साथ ही यह भी निर्णय लिया गया कि केवल कुछ संस्कृत वक्ता मात्र तैयार करने के स्थान पर, सामूहिक रूप से सभी संस्कृत मातृभाषियों की भाषा की शुद्धता व क्षमता बढ़ाने व शिक्षा पर बल दिया जाय।

इस दृष्टिकोण से विशेषतः लखनऊ व निकट जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर संस्कृत–मातृभाषी परिवारों की पहचान करने का कार्य बढ़ाया गया। कई वर्ष कार्य करने के अनन्तर अचानक अनौपचारिक वार्ता में यह तथ्य सामने आया कि जितने लोग इस कार्यक्रम में लखनऊ में जुड़ते गये, उनमें से अधिकतर सीतापुर जिले के निवासी हैं, अथवा वहाँ से सम्बन्धित रहे हैं। अतः सीतापुर जिले को ही केन्द्र मानकर, गाँव–गाँव जाकर, संस्कृत– मातृभाषी परिवारों की पहचान व सम्पर्क करके उनकी निराशा को दूर कर आत्म–विश्वास जाग्रत करने का कार्य प्रारम्भ किया गया। इन अनौपचारिक सम्पर्क बैठकों में अज्ञान, अनभ्यास, अशिक्षा व प्रतिकूल वातावरण के प्रभाव से दैनिक प्रयोग के शब्दों और वाक्यों के अशुद्ध उच्चारण की ओर संस्कृत मातृभाषियों का ध्यान दिलाया गया। लोगों को यह भी समझाया गया कि अपने को अधिक जानकार, प्रगतिशील, शहरी व शिक्षित जताने के लिए जिन सरल–सुबोध व नित्य–प्रयोग के शब्दों को देहाती समझकर वह त्याग देते हैं, वह वास्तव में शुद्ध संस्कृत के शब्द है। लोगों की समझ में यह आने पर कि उनके द्वारा बोले गये अधिकतम शब्द



संस्क त-संगीत-कैसेट के विमोचन के अवसर पर उसकी प्रत्यक्ष-प्रस्तुति

व वाक्य शुद्ध संस्कृत में हैं, उनका उत्साह बढ़ा। इसके पश्चात् किसी औपचारिक शिक्षण के बजाय, अनौपचारिक रूप से सामान्यतः बोले जाने वाले अधिकतर शब्दों व वाक्यों को शुद्ध उच्चारण करके उन्हें बताया गया। इससे उन्हें सहसा अनुभव हुआ कि बिना किसी विशेष शिक्षण के वह संस्कृत बोलने व समझने में सक्षम है। इस तथ्य से अनभिज्ञ सामान्यतः शिक्षित वर्ग प्रभावित हुआ और सहयोगी बना, जिसमें जाति और धर्म का भेद समाप्त दिखाई पड़ा। संस्कृत बहुत कठिन या रटने की भाषा है, के मिथ्या व भ्रामक प्रचार को दूर करने के लिये स्थानीय लोगों द्वारा नित्य बोले जा रहे वाक्यों को उन्हीं के द्वारा शुद्ध उच्चारण करवाकर संस्कृत का मातृभाषी स्वरूप उन्हें स्पष्ट किया गया। इससे उन लोगों में आत्मविश्वास आया कि वास्तव में तो वह संस्कृत ही बोल रहे हैं और उसमें रटने का कोई काम नहीं है। उन्हें अनुभव हुआ कि वह यह भी नहीं जानते थे कि वह कौन सी भाषा बोल रहे हैं। साहित्यकारों की संस्कृत और परिवारिक–पारस्परिक–दैनिक बोलचाल की संस्कृत के भेद को स्पष्ट किया गया।

संस्कृत–मातृभाषी–अभिज्ञान–अभियान के प्रारम्भिक चरण के पश्चात् सरल संस्कृत के संगीत के कैसेट बनवाये गये। उत्तर प्रदेश के महामहिम श्री राज्यपाल जी द्वारा इनका विमोचन हुआ। चिहित संस्कृत–मातृभाषी व ग्राह्य क्षेत्रों में जाकर "मनोयोग" के यह 'सरल–संस्कृत–संगीत' के कैसेट बजाकर सुनाये गये। प्रतिक्रिया स्वरूप लोग उसके साथ संगीत की धुन पर स्वयं भी बोलने लगते थे। जहाँ उपयोगिता अधिक समझी जाती थी वहाँ कैसेट दे भी दिये जाते थे। इन कैसेट के माध्यम से उनमें उत्सुकता पैदा हुई व लोगों का अभ्यास स्वतः बढ़ने लगा। स्थानीय भजन–मण्डलियों के सदस्य पहले तो संस्कृत का नाम सुनकर डरे व हिचके किन्तु थोड़ा अभ्यास कराने के बाद वह स्वयं हमारे प्रचारक हो गये । मनोयोग की पुस्तक "जन सामान्य की अव्यक्त मातृभाषा संस्कृत" के प्रमुख अंशों के टेप बनवाकर, रिक्शे पर लाउड स्पीकर से नित्य बजवाने की व्यवस्था बनारस के प्रमुख वृद्ध संस्कृत सेवी पं० वासुदेव शास्त्री जी ने स्वतः अपनी ओर कर दी।



चलित प्रर्दशनी का एक दृश्य

इतना आधार तैयार हो जाने के पश्चात् "रसवन्ती" एक बढ़े आकार में प्रकाशित कर, रसोई से सम्बन्धित सभी विभिन्न अन्नों, दालों, शाक, सब्जी, मसालों, तेलों, उपकरणों, मिष्ठान्नों आदि के नित्य प्रयोग के लौकिक, किन्तु शुद्ध संस्कृत शब्दों के, विवरणों की जानकारी लोगों को दी गई। सब्जियों के बड़े–बड़े चार्ट और पोस्टरों के द्वारा अथवा स्थानीय मेला, बाजारों में फलों शाक–भाजी आदि के पास उनके संस्कृत नाम लिखकर, सामान्य लोगों की लौकिक किन्तु शुद्ध–संस्कृत शब्द–ज्ञान की पुष्टि करवायी गयी।

संस्कृत–भाषा न पढ़े हुए शिक्षित–विशिष्ट वर्ग के लिये, संस्कृत की सभी धातुओं का तत्काल–ज्ञान व मूल्यांकन करने के लिये "स्वतः आत्मबोध परीक्षण–विधि" तैयार की गई । इस विधि से तत्काल ज्ञान प्राप्त हो जाने से डाक्टर, इंजीनियर, एडवोकेट, वैज्ञानिक आदि जैसे वर्ग के लोगों को संस्कृत का सरल–व्यावहारिक व उपयोगी स्वरूप स्पष्ट हुआ और वह लोग इसके प्रति आकृष्ट हुए। इसी वर्ग के लिये "अमर–कोष" के आडियो कैसेट तैयार करवा कर अध्ययन के लिये दिये गये।

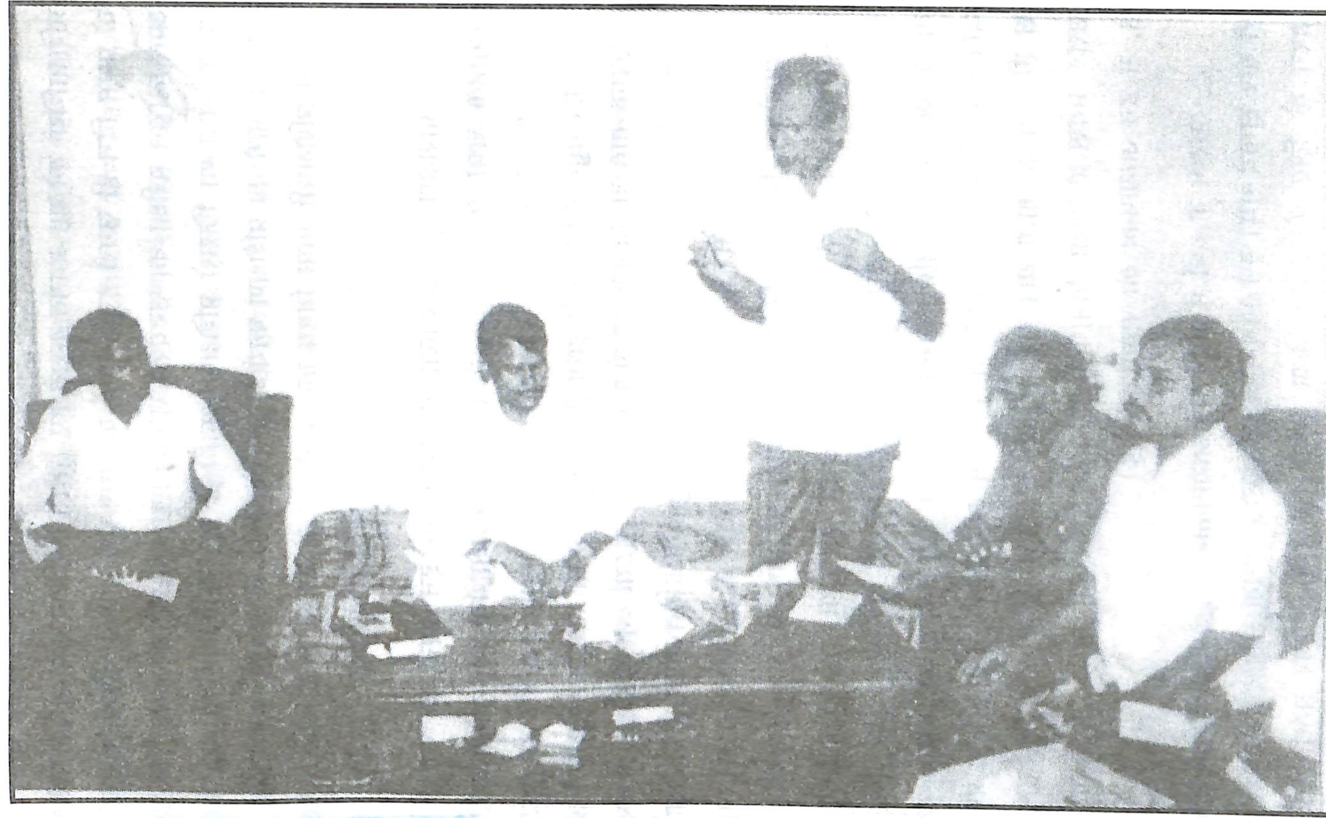
स्थानीय लोगों में थोड़ा आत्म विश्वास व आधार पैदा करने के पश्चात् प्रदेश की सामान्य शिक्षा की प्राथमिक पाठशालाओं में अध्यापन की शैक्षिक योग्यता रखने वाले वृत्ति (नौकरी) विहीन ऐसे युवकों को अपने साथ जोड़ा गया जो अपेक्षाकृत नाम मात्र के धन पर शिक्षण कार्य के लिए स्वेच्छा से उत्साह–पूर्वक उन क्षेत्रों मे कार्य करने के लिए तैयार थे, जहाँ सरकार की जिला परिषदीय पाठशालायें नहीं थीं अथवा यदि थीं तो वहाँ वस्तुतः शिक्षण कार्य नहीं होता था। ऐसे ही क्षेत्रों में स्थानीय सहयोग से शिक्षा केन्द्र स्थापित किये गये। अतः अपने ऐसे इन अध्यापकों के लिये संस्कृत–मातृभाषी–प्रशिक्षण का कार्य प्रारम्भ किया गया।

प्रशिक्षण में आने से पूर्व ही बेसिक शिक्षा परिषद् की कक्षा पाँच तक की हिन्दी की पाठ्य–पुस्तकों के आधार पर, भाषा–विषयक कुछ प्रश्न इन

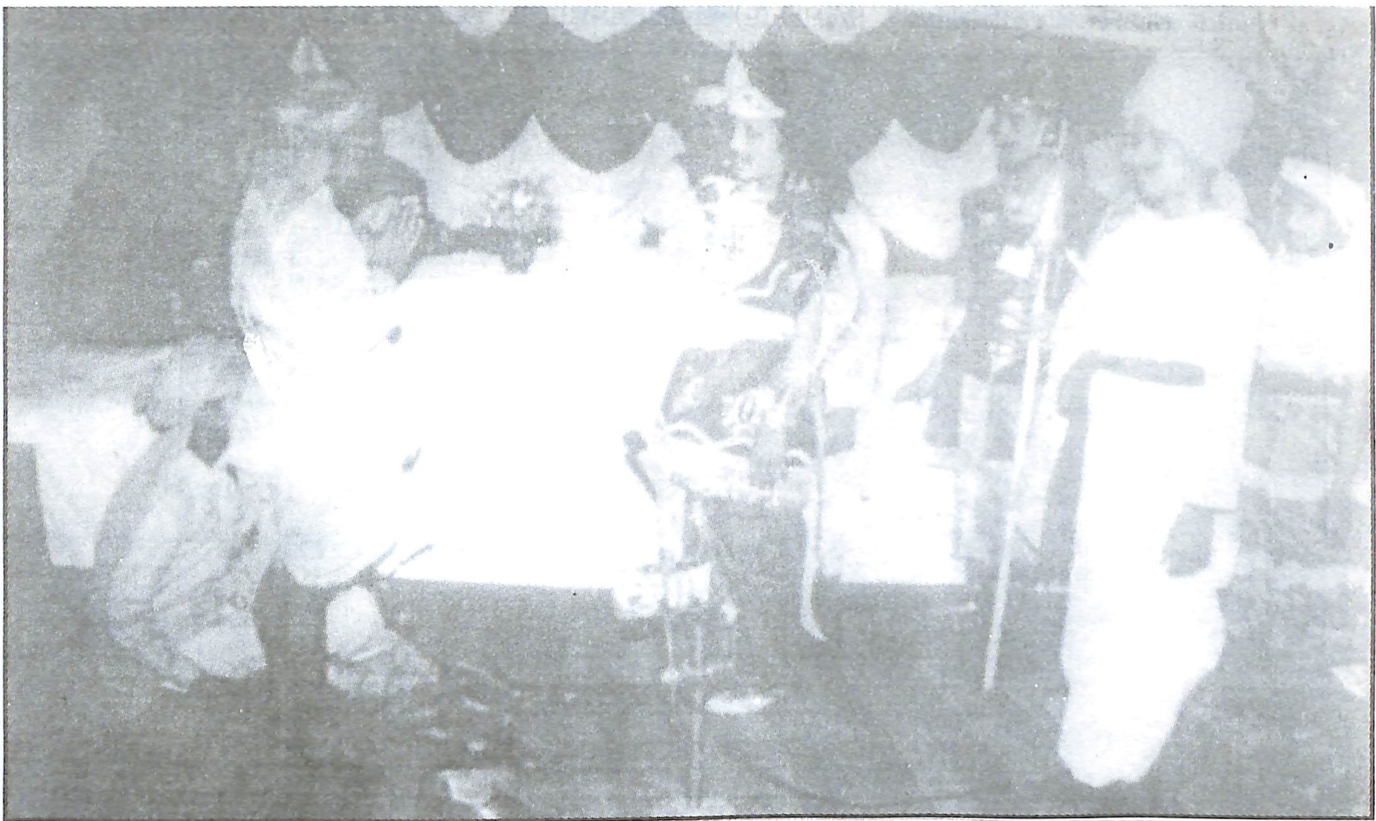
प्रशिक्षार्थियों को यह अवगत कराते हुए सूचित कर दिये जाते थे कि प्रशिक्षण के प्रथम दिन ही उनसे इन्हीं प्रश्नों के उत्तर पूँछे जायेंगे। इस प्रशिक्षण पूर्व आत्मालोचन परीक्षा का उद्देश्य उनके भाषा सम्बन्धी ज्ञान का स्तर ज्ञात करना होता था जिससे प्रशिक्षण–अवधि में उन दोषों/कमियों को अवश्य दूर कर आगे का प्रशिक्षण कार्य प्रारम्भ हो। साथ ही इसका मन्तव्य यह भी था कि प्रशिक्षार्थी भाषा विषय को अपने घर से तैयार करके आयें जिससे प्रशिक्षण–अवधि में समय का अधिकतम उपयोग हो सके।

प्रशिक्षण–पूर्व आत्मालोचन–परीक्षा के इन प्रश्नों के उत्तरों पर सामूहिक चर्चा में विचार करने से सभी प्रशिक्षार्थियों को अपनी त्रुटियां समझने का अवसर प्राप्त हो जाता था। हमें भी अनुभव हुआ कि इन त्रुटियों का सुधार बहुत कठिन नहीं होता है । वस्तुतः न तो सामान्य–शिक्षा में और न उसके बाद सामाजिक–परिवेश में उनकी त्रुटियों को कोई इंगित करता है। अतः दोष यथावत् चलते रहते हैं। किन्तु दोष इंगित करते ही प्रशिक्षार्थी उसका महत्त्व समझकर सुधार लेता है। इस आधारभूत आत्मालोचन–शिक्षण–प्रक्रिया में संस्कृत–मातृभाषा में इन बिन्दुओं की उपयोगिता का महत्त्व उन्हें स्वतः स्पष्ट हो जाता था। अधिकतर प्रशिक्षण मौखिक, व्यावहारिक तथा लोकोक्ति–सूक्ति व एक–दो अथवा तीन शब्दों के वाक्यों और उनकी मुद्रित अभ्यास पुस्तिका और सुलेख पर केन्द्रित रहता था। पुस्तकों व अभ्यास पुस्तिका का काम सादे कागज व फोटोस्टेट प्रतियों से ही चलाया जाता था। सखी संस्था के शिक्षण केन्द्रों, जिनका उल्लेख उत्तर–प्रदेश के शिक्षा–विभाग से सम्बन्धित समस्याओं के क्रम में किया गया है, में इन अध्यापकों की सेवाएँ ली गई।

प्रारम्भ के वर्षो में अपने इन अध्यापकों के लिये यह प्रशिक्षण वर्ष में दो बार लगाये गये। इन अध्यापकों को अन्यत्र अधिक लाभ का अवसर प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता रहा तथा अवसर प्राप्त होने पर ससम्मान विदा किया गया। यह प्रशिक्षित अध्यापक जहाँ कहीं गये, वहाँ संस्कृत–मातृभाषा का सन्देश अपने साथ ले गये। जिन अध्यापकों ने किसी



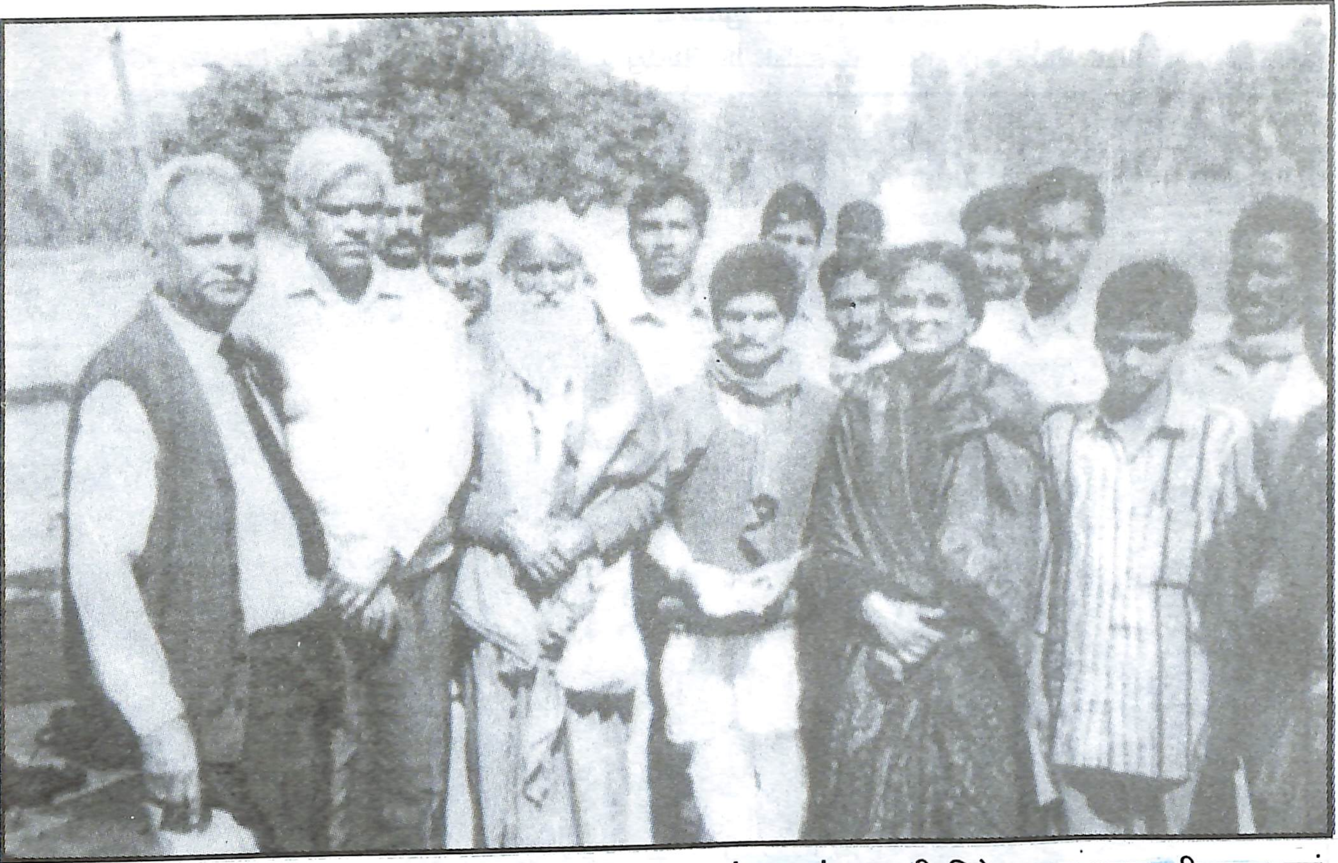
मन्दिर-निर्माणार्थ-भूमि विवादः का विमोचन, श्री रमापति शास्त्री, मंत्री उत्तर-प्रदेश-सरकार ।
मन्च पर बैठे दाहिने से श्री मोहन शंकर, डा. वीरभद्र मिश्र



उ.प्र.संस्कृत अकादमी प्रांगण में 'मन्दिर निर्माणार्थ भूमि विवादः का मंचन करते बच्चे । पीछे मंच पर (बायें से) श्री सुबोध नाथ झा, सचिव-शिक्षा, उ.प्र.सरकार, श्री हीरा लाल निगम-कुलपति-रीवा विश्वविद्यालय, श्री लक्ष्मीरमण आचार्य-पूर्व मंत्री उ.प्र. सरकार व वरिष्ठ अधिवक्ता, उच्च-न्यायालय ।



संस्कृत मातृभाषियों के लिए अध्यापकों का प्रशिक्षण शिविर (नैमिषारण्य) । प्रशिक्षणार्थियों का नगर भ्रमण



अध्यापकों के एक छोटे प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर उ.प्र. संस्कृत संस्थान की निदेशक डा.अल्का श्रीवास्तव बाएं से दूसरे सहायक निदेशक डा. चन्द्रकान्त, बीच में मौनी बाबा हरिहर सिंह



कुर्सियों पर बैठे (दाहिने से) डा.जे.पी.सिन्हा, डा.अशोक कालिया, श्री त्रिभुवन प्रसाद,
डा. भूदेव शर्मा व न्यायमूर्ति श्रीनाथ सहाय



"सुलेख प्रदीप" का विमोचन - न्यायमूर्ति श्रीनाथ सहाय द्वारा निदेशक उ. प्र.संस्कृत संस्थान डा. अल्का श्रीवास्तव को देते हुए

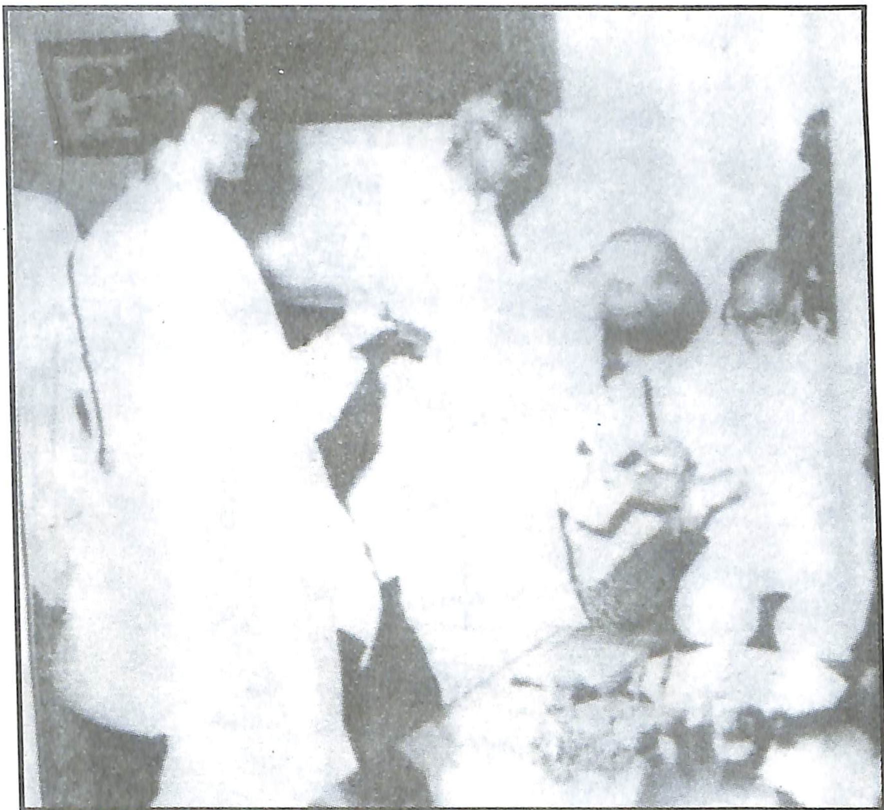


सम्मान समारोह में पुरस्कार प्राप्त करते श्री रामाधार राम

निजी कारणवश शिक्षण–कार्य त्याग भी दिया, उन्होंने प्रशिक्षण अवधि में अर्जित ज्ञान का मानव–स्वभाववश, समाज में अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करने में प्रयोग किया, जो प्रकारान्तर से संस्कृत–मातृभाषी के सन्देश का वाहक रहा। इन अध्यापकों के एक प्रशिक्षण–शिविर को नैमिषारण्य पीठाधीश्वर स्वामी विवेकानन्द जी के निर्देश पर वहीं किया गया, जिसका शुभारम्भ व संकल्प स्वामी सर्वदानन्द जी के आशीर्वाद से हुआ। अन्यत्र ऐसे ही एक छोटे– प्रशिक्षण–शिविर में निदेशक, उत्तर–प्रदेश संस्कृत–संस्थान ने पहुंच कर प्रशिक्षार्थियों का उत्साहवर्धन किया।

बिना किसी सरकारी–गैरसरकारी आर्थिक सहायता के 'मंगलम्' 'घटीयंत्रम' 'मन्दिरनिर्माणार्थ भूमिविवादः' (वर्तमान संदर्भ में नहीं – अपितु ऐतिहासिक) आदि प्रकाशन, प्रदेश के श्री राज्यपाल, माननीय मंत्री व शासन के सचिवों, विश्वविद्यालय के कुलपतियों, वयोवृद्ध स्वतंत्रता–संग्राम के राष्ट्रीय सेनानियों, व संस्कृत–मातृभाषी विद्वानों के द्वारा विभिन्न वर्षो में विमोचित करवा कर विद्यार्थियों के लिये भेजे गये। अपने शिक्षण केन्द्रों के बच्चों द्वारा "मन्दिर–निर्माणार्थ भूमि–विवादः" नाटक का अभिनय उ०प्र० संस्कृत–अकादमी के प्रागंण में भी किया गया। अखिल भारतीय संस्कृत परिषद के सह–संयोजकत्व में, प्रदेश सरकार के पूर्व मुख्य सचिव व पूर्व उप राज्यपाल श्री त्रिभुवन प्रसाद जी, वर्ल्ड एसोसिएशन ऑफ वैदिक स्टीज (संयुक्त राज्य अमेरिका) के अध्यक्ष–अतिथि श्री भूदेव शर्मा जी व पूर्व न्यायमूर्ति श्री श्रीनाथ सहाय जी को 'मनोयोग' द्वारा संस्कृत–मातृभाषियों के लिये जनगणना–कार्य–अवधि में विशेष योगदान के पूरे कार्य का संकलन प्रस्तुत किया गया। प्रदेश के विभिन्न जिलों से आये हुए 'मनोयोग' के सहयोगियों को सम्मानित व पुरस्कृत किया गया। इसी अवसर पर 'सुलेख प्रदीप' का विमोचन करवाकर विद्यार्थियों के लिए भेजी गयीं।

संस्कृत–मातृभाषा के सन्देश–प्रसार, कृत–कार्य व भावी योजनाओं की जानकारी व निर्णय आदि के लिए वर्ष में दो मुख्य आयोजन लखनऊ में किये जाते रहे हैं। प्रथम आयोजन अगस्त–सितम्बर में संस्कृत–दिवस



संस्कृत दिवस पर 'मनोयोग' की ओर से महामहिम राज्यपाल को रक्षा बांधते डा. विजलवान (केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ लखनऊ)



राजभवन से संस्कृत प्रदर्शनी का शुभारम्भ करते उ.प्र. के
राज्यपाल श्री स.ना.रेड्डी



(बायें से) उ.प्र.संस्कृत संस्थान के निदेशक श्री मधुकर द्विवेदी, मुख्य अतिथि श्री त्रिभुवन प्रसाद जी तथा श्री शिवशंकर त्रिवेदी



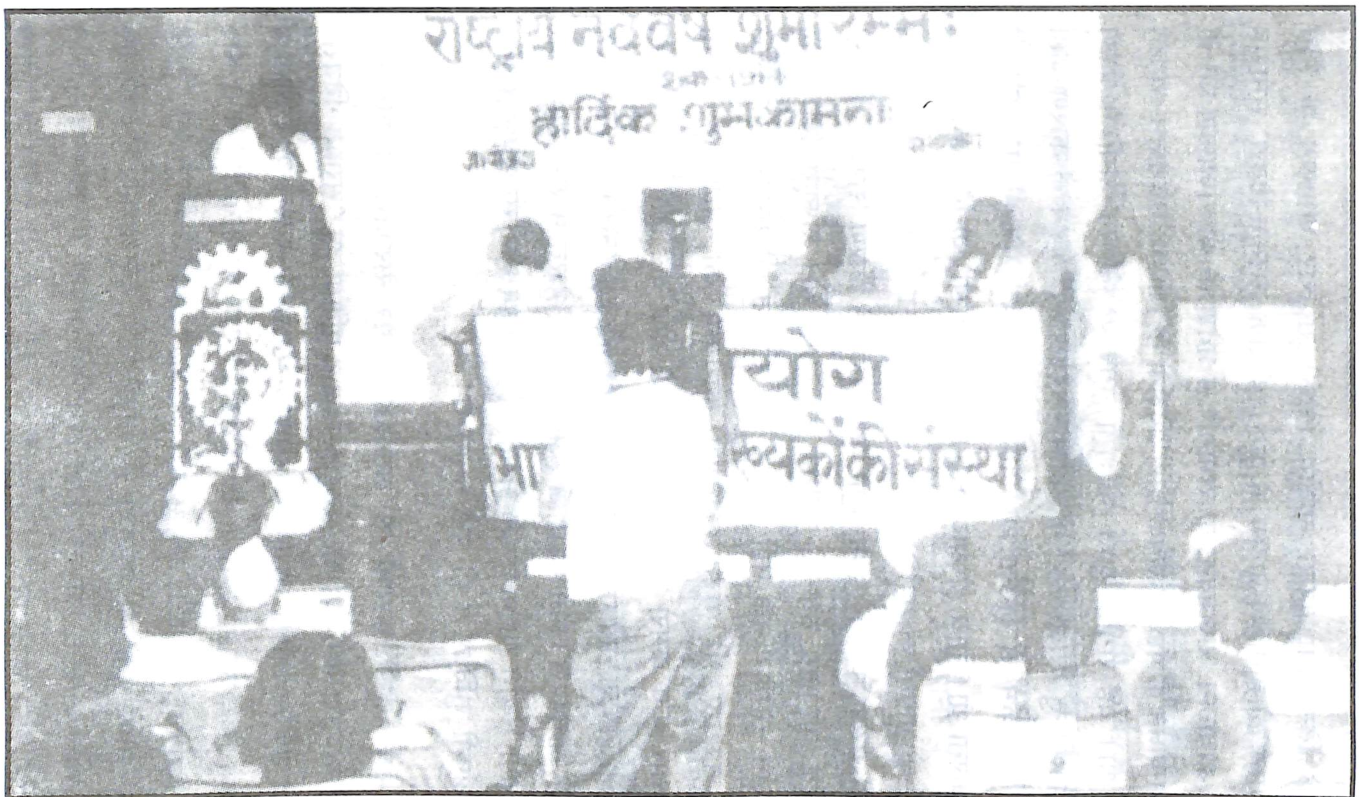
राष्ट्रीय-नव-वर्ष पर संस्कृत प्रदर्शनी का अवलोकन करते श्री अशोक बाजपेयी, शिक्षा मन्त्री, उ.प्र.सरकार



संस्कृत दिवस आयोजन में सभागार का एक दृश्य



सभागार में जाते समय पं० वासुदेव शास्त्री उनके पीछे वाराणसी का उनका समर्पित युवा कार्यकर्ता



सचिव, शिक्षा उत्तर प्रदेश (श्री नवीनचन्द्र बाजपेयी) सम्बोधित करते हुए । मंच पर बैठे (बायें से) श्री शिवशंकर त्रिवेदी, न्यायमूर्ति जयशंकर त्रिवेदी, डा.भगीरथ प्रसाद निदेशक - अनुसंधान, सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय, वाराणसी, श्री बृजभूषण मिश्र - ग्रामवासी स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी ।

श्रावणी के दिन तथा दूसरा राष्ट्रीय (शक) संवत्सर् शुभारम्भ के दिन २१–२२ मार्च को होता है। प्रारम्भ के कुछ वर्षो तक 'सरस्कृत-दिवस' समारोह का प्रातः आयोजन 'राजभवन' के सभागार में प्रदेश के श्री राज्यपाल जी के संक्षिप्त सम्बोधन के पश्चात् उनके द्वारा प्रदर्शनी के विधिवत् उद्घाटन–चालन से होता था। यह संगीत–युक्त–प्रर्दशनी नगर के विभिन्न भागों में भ्रमण करती थी। किन्तु "राजभवन" के "आभा–मण्डल" से जुड़ने के कारण जहाँ एक वर्ग कार्यक्रम से जुड़ता था, वहीं सामान्य वर्ग मन ही मन दूरी भी अनुभव करता था। साथ ही श्रावणी (रक्षाबन्धन–राखी) के दिन उत्तर भारत में बहिनों के भाइयों के यहाँ अथवा भाइयों के बहिनों के यहाँ आने–जाने से बहुत बड़ी संख्या में जन–सामान्य के व्यस्त रहने के कारण 'संस्कृत–दिवस' औपचारिक कार्यक्रम तक ही सीमित रह जाता था। संस्कृत–दिवस का सन्देश जन–सामान्य तक नहीं पहुँचता था। संस्कृत की सरकारी या उससे पोषित संस्थाए भी संस्कृत–दिवस कार्यक्रम का आयोजन अपनी सुविधानुसार बन्द कमरों में ही संस्कृतज्ञों के बीच कर लेती थीं। सामान्य जन में कोई संदेश नही जाता था। अन्य नगरों में इस समस्या के निराकरण के बारे में जानकारी करने पर ज्ञात हुआ कि उत्तर भारत में सभी स्थानों पर लगभग यही स्थिति है। वाराणसी में भी यही समस्या थी। संस्थायें व व्यक्ति अपनी–अपनी सुविधा से ही इसे मनाते थे।

अतः इन्हीं कारणों से लखनऊ में गैर–सरकारी–संस्कृत–सेवी संस्थाओं के द्वारा मार्गशीर्ष को संस्कृत–मास व पूर्णिमा को "संस्कृत–दिवस" मनाने, व उसका प्रारम्भ संस्कृत के जीवन्त–मातृभाषी–स्वरूप के संरक्षण व प्रसारण के लिये अपनी सन्तानों के जीवन को दांव पर लगा देने वाले डा० वीरभद्र (अनिता–वीरभ्रदौ) के आवास "संस्कृतालय" से करने का निर्णय सम्बन्धित महानुभावों की सहमति से लिया गया। दूसरा वार्षिक आयोजन राष्ट्रीय संवत्सर (शक) के नववर्ष के दिन, जो प्रत्येक वर्ष सामान्य रूप से प्रयुक्त ग्रिगरियन कलेण्डर के अनुसार २१–२२ मार्च को पड़ता है, किया जाता है। इस अवसर पर संस्कृत–मातृभाषियों की ओर से सम्बन्धित बिन्दु

को इंगित करते हुए शुभकामना कार्ड भेजे जाते हैं और एक सार्वजनिक आयोजन संस्कृत, राष्ट्रीयता और नववर्ष के बारे में किया जाता है।

सार्वजनिक विषयों से सम्बन्धित अन्य संस्थाओं द्वारा प्रायोजित प्रशिक्षण आदि कार्यक्रमों में भी संस्कृत के मातृभाषी कार्यक्रम को जोड़ा गया। प्रदेश के बन्दीगृहों में प्रदर्शनी लगाकर इच्छुक बन्दीजनों को संस्कृत के माध्यम से सफल जीवन व्यतीत करने के लिये प्रोत्साहित किया गया।

जिलों तथा ग्रामों में प्रदर्शनी लगाकर जनगणना के अवसर पर संस्कृत–मातृभाषी के प्रति सजगता का कार्य मुख्यतः उत्तर-प्रदेश में ही किया गया। सामाजिक व धार्मिक वार्षिक उत्सवों व मेलों, जिसमें कुम्भ के स्थान प्रयाग, हरिद्वार व उज्जैन तथा उत्तराखण्ड के बदरीनाथ, केदारनाथ व उनके मार्ग भी सम्मिलित हैं में मनोयोग की प्रदर्शनी विशेष रूप से लगाई गयीं। बहुत से समाचार पत्र–पत्रिकाओं ने भी इसमें अपना योगदान दिया।

कार्य तो बढ़ गया किन्तु जन–धन के साधन अत्यन्त सीमित होने के कारण जितने परिवारों का शोधन किया जा चुका है, उनके लिये शिक्षण सुविधा उपलब्ध कराना सम्भव नहीं हो पा रहा है।



जनगणना और उसके पश्चात्

जनगणना–कार्य–१६६१ समाप्त होने के पश्चात् जब 'मनोयोग' के पदाधिकारी सीतापुर के अपने छात्रों की परीक्षाओं की बाधाओं के निवारण के बारे में शासन व उच्च–न्यायालय में व्यस्त थे, उसी अवधि में अचानक एक दिन प्रातःकाल सहयोगियों ने आकर लखनऊ में सूचित किया कि जनगणना विभाग के मुख्यालय के अधिकारी, सीतापुर जिला–प्रशासन के सहयोग से सरकारी आंकड़ों में अंकित संस्कृत–मातृभाषी–परिवारों से आपत्ति और अपमानजनक प्रश्न पूछकर परेशान कर रहे हैं तथा यह भी कह रहे हैं कि सभी लोगों के नाम संस्कृत मातृभाषियों की गणना से हटा दिये जायेंगे और उन लोगों के विरूद्ध कार्यवाही की जायेगी।

अतः 'मनोयोग' के पदाधिकारियों के एक दल ने सीतापुर के साथ–साथ अन्य जनपदों में भी जाकर सं०मातृभाषियों से भेंटकर वस्तु–स्थिति की जानकारी प्राप्त की और यह पाया कि वास्तव मे जाँच के नाम पर उन संस्कृत–मातृभाषियों के प्रति अशिष्ट और अमर्यादित व्यवहार किया गया है। भ्रमण से लौटकर लखनऊ में निदेशक जनगणना से भेंट की गयी। उन्होंने जाँच कराये जाने की पुष्टि के साथ बताया कि सं०मातृभाषियों के आंकड़ों के संकलन में उपमहानिदेशक (भाषा) कलकत्ता ने पूर्व जनगणना वर्ष की अपेक्षा १६६१ में संस्कृत–मातृभाषी–संख्या अधिक पाई है और इसी कारण, उन्हीं के आदेश पर यह जाँच करायी जा रही है तथा इसकी रिपोर्ट जनगणना आयुक्त, दिल्ली को मामले के निर्णय के लिये भेजी जायेगी। अतः आयुक्त जनगणना–कार्य, दिल्ली को पत्र लिखकर वस्तु–स्थिति से अवगत कराया गया और पत्र की प्रतिलिपि निदेशक जनगणना, लखनऊ व जनगणना–उपमहानिदेशक (भाषा), कलकत्ता को भी भेजी गयी। तीनों स्थानों में से कोई उत्तर प्राप्त न होने पर पूरे तथ्य प्रेस कान्फ्रेन्स के माध्यम से जनसामान्य की जानकारी में लाये गये।

जनगणना महानिदेशक दिल्ली से व्यक्तिगत रूप से मिलकर, भ्रम निवारण और तथ्यों से अवगत कराने के लिए 'मनोयोग' के पदाधिकारी वहाँ गये और यह आश्वासन प्राप्त किया कि संस्कृत–मातृभाषियों के साथ कोई अन्याय न होगा। तब से जनगणना के मातृभाषी–विषयक अधिकृत व पुष्ट आंकड़ें प्राप्त करने के लिए लगातार सम्पर्क किया जाता रहा। अन्ततोगत्वा १९९८ में वहां के उपनिदेशक श्री अरूण कुमार सिंह तथा सहायक निदेशक (संगणक) श्री अनिल कुमार से कम्प्यूटर फ्लापी से प्राप्त आँकड़ों एवं अन्य के आधार पर संस्कृत–मातृभाषियों से सम्बन्धित यह विश्लेषण तैयार कर प्रस्तुत किया जा रहा है।

देश में चार जनगणना–आख्याओं–में संस्कृत–मातृभाषी

देश में चार जनगणना वर्षो १९६१, १९७१, १९८१ व १९९१ में कुल सं० मातृभाषी–संख्या क्रमशः २५४४, २२१२, २९४६ (१९९१ के अभिलेख मे ६१०६ अंकित है) व ४९७३६ रही है। जनगणना वर्ष १९९१ के समग्र आँकड़ों में जनगणना–महानिदेशक ने वर्ष १९८१ की संख़्या ६१०६ अंकित की है। इस अन्तर के बारे में महानिदेशक जनगणना–कार्य नई दिल्ली में सम्बन्धित उपनिदेशक से पूछने पर श्री शान्ति स्वरूप भारद्वाज स्टेटिस्टिकल असिस्टेन्ट (भाषा) ने बताया कि ६१०६ व्यक्तिगत पर्चियों में आया था। उसका जिलावार विवरण छापा नहीं गया है और न उसका विवरण विभाग के पास ही है।

देश में १९८१ की अपेक्षा १९९१ में विभिन्न मातृभाषियों की संख्या में प्रतिशत वृद्धि के आँकडे अधोलिखित है :

क्रमांक	मातृभाषी	जनगणना वर्ष १९९१ में संख्या में प्रतिशत वृद्धि
१	नेपाली	५२.६२
२	मणिपुरी	४०.१६
३	बंगाली	३५.६७
४	उर्दू	३४.२३

५	तैलगू	३०.४१
६	हिन्दी	२७.५१
७	कन्नड़	२७.४६
८	मराठी	२६.३४

यद्यपि १६६१ की गणना मे संस्कृत मातृभाषियों की संख्या में प्रतिशत वृद्धि इन सभी भाषा–भाषियों से अधिक रही है किन्तु इतनी वृद्धि होने पर भी देश की कुल जनसंख्या में अन्य भाषा के मातृभाषियों की अपेक्षा संस्कृत–मातृभाषियो का प्रतिशत अंश न्यूनतम और लगभग नगण्य है, जैसा नीचे लिखे आंकड़ो से स्पष्ट है।

क्रमांक	मातृभाषा	प्रतिशत अंश	क्रमांक	मातृभाषा	प्रतिशत अंश
१	हिन्दी	३६.८५	२	बंगाली	८.२२
३	तैलगू	७.८०	४	मराठी	७.३८
५	तमिल	६.२६	६	उर्दू	५.१३
७	गुजराती	४.८१	८	कन्नड़	३.८७
६	मलयालम	३.५६	१०	उडिया	३.३२
११	पंजाबी	२.७६	१२	आसामी	१.५५
१३	सिन्धी	०.२५	१४	नैपाली	०.२५
१५	कोकणी	०.२१	१६	मणिपुरी	०.१५
१७	संस्कृत	०.०१			

स्पष्ट है कि देश में सं०मातृभाषी ही सबसे कम हैं

दिल्ली व पाण्डिचेरी सहित देश के १७ प्रदेशों के १३५ जिलों में २५४४ संस्कृत मातृभाषी १६६१ की जनगणना में थे। आसाम, अरूणाचल, नागालैण्ड, मेघालय, उडीसा, चण्डीगढ़ और त्रिपुरा में सं०मातृभाषी अंकित नही थे। जनगणना वर्ष १६७१ मे उड़ीसा, गोवा, मेघालय तथा चण्डीगढ में

सं०मातृभाषी अंकित होने से सं०मातृभाषी प्रदेशों की संख्या बढ़कर २० तथा जिलों की संख्या १५४ हो गयी किन्तु जम्मू–कश्मीर इस सूची से हट गया। जनगणना वर्ष १९८१, मे जम्मू–कश्मीर के इस सूची में पुनः आ जाने और चण्डीगढ़ व पाण्डिचेरी के इस सूची से हट जाने के कारण सं०मातृभाषी प्रदेशों की संख्या यद्यपि १६ हो गई किन्तु जिलों की संख्या घटकर ८२ (पूर्व जनगणना की लगभग आधी) रह गयी। जनगणना १९९१ में आसाम, अरूणाचल, नागालैण्ड और त्रिपुरा में पहली बार तथा चण्डीगढ़ और पाण्डिचेरी में पुनः सं०मातृभाषी अंकित की जाने से सं०मातृभाषी प्रदेशों संख्या बढ़कर २४ तथा जिलों की संख्या २६२ हो गयी। किन्तु, जम्मू–कश्मीर में अशान्ति के कारण जनगणना कार्य नहीं हो सका।

जनगणना वर्षवार, प्रदेशवार सं०मातृभाषी संख्या इस प्रकार रही हैः

प्रदेश	१९६१	१९७१	१९८१	१९९१
आन्ध्र	२५	४५	२६	१९६
बिहार	१२६	३४०	११७४	८०२
गुजरात	६६	३८	१६	८१
हरियाणा	३०	४०	१४८	५७५
हिमाचल	५३	८४	८१	१६७
कर्नाटक	१२५	१११	५०६	६६४
केरल	७	४	७	३१
मध्य प्रदेश	३७४	६१	७०	६५०
महाराष्ट्र	८२	१५५	२८१	२७७
राजस्थान	३१	११५	८५	४३३
तमिलनाडु	११७	२५४	२४४	१९६

उत्तर-प्रदेश	१३३२	५०८	१०७	४४,८४७
पश्चिमी-बंगाल	४	१७७	२२	२३
पंजाब	४१	७७	६१	२६
दिल्ली	६४	६४	६३	५८२

(जम्मू–कश्मीर, पाण्डेचेरी, मेघालय, उड़ीसा व अरुणाचल के आँकड़े यहाँ नहीं दिये जा रहे है)

इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि–

१) उत्तर–प्रदेश व मध्य–प्रदेश में १९६१ की अपेक्षा १९७१ व १९८१ की गणना में सं०मातृभाषियों की संख्या में घटोत्तरी हुई है। किन्तु १९९१ में वृद्धि हुई है।

२) केरल में भी १९७१ में घटोत्तरी के पश्चात् १९९१ में वृद्धि अंकित हुई है।

३) गुजरात में तीन जनगणना वर्षो में क्रमशः सं०मातृभाषी संख्या में कमी आती गई। जनगणना वर्ष १९९१ में यद्यपि संख्या में वृद्धि है किन्तु १९६१ से फिर भी कम ही है।

४) कर्नाटक में १९७१ तथा आन्ध्र, हिमांचल प्रदेश, राजस्थान व दिल्ली में १९८१ में सं०मातृभाषी संख्या में घटोत्तरी के बाद १९९१ में वृद्धि अंकित हुई है।

५) तमिलनाडु व पंजाब में १९७१ से सं०मातृभाषियों में क्रमशः घटोत्तरी होती गई है।

६) हरियाणा में सं०मातृभाषी संख्या में चारों जनगणना वर्षवार क्रमशः वृद्धि हुई है।

७) बिहार व महाराष्ट्र में यद्यपि तीन वर्षो में क्रमशः बढ़ोत्तरी हुई है किन्तु १९९१ में संख्या घट गई है।

८) प. बंगाल में १९८१ में कमी के पश्चात् १९९१ में संख्या में एक की वृद्धि है।

९) जनगणना वर्ष १९९१ में पूर्व जनगणना वर्षो की अपेक्षा सबसे अधिक वृद्धि हुई है।

देश में जनगणना वर्ष १९६१ को आधारवर्ष मानने पर सं०मातृभाषी संख्या में १९७१ में (–) १३%, १९८१ में ३३.१८% तथा १९९१ में १५८८.२५% की घटोत्तरी–बढ़ोत्तरी हुई है। इन वर्षो में देश की कुल सं०मातृभाषी संख्या में पुरूषों की संख्या का प्रतिशत १९६१ के ७२.६८ से घटकर १९७१ में ६७.०४%, १९८१ में ५५.३९% तथा १९९१ मे कुछ बढ़कर ५६.२४% हो गया और तदनुसार ही स्त्रियों का १९६१ का २७.३२% बढ़कर १९७१ में ३२.८५%, १९८१ में ४४.३१% तथा १९९१ में कुछ कम ४३.८६% हो गया है। सं०मातृभाषियों में स्त्री–पुरूष का अनुपात देश के सामान्य अनुपात के अनुसार ही रहा।

देश की चारों जनगणना–वर्षवार संस्कृत–मातृभाषियो की कुल संख्या में, ग्रामीण क्षेत्रीय सं०मातृभाषियों का प्रतिशत क्रमशः २१.५४%, ३६.५२%, ५२.५४% व ८९.८४% बढ़ता गया है तथा नगरीय क्षेत्र का क्रमशः ७८.४६% से ६३.४८%, ४७.३६% व ९.०१% घटता गया है।

विभिन्न प्रदेशों की १९९१ की जनगणना में प्रति १० लाख पर वहां की संस्कृत–मातृभाषी संख्या देखने से विदित होता है कि न केवल संख्या अपितु प्रति १० लाख जनसंख्या के आधार पर भी उत्तर–प्रदेश में सं०मातृभाषी सर्वाधिक हैं, जैसा कि अवरोही क्रम में आगे लिखे आँकड़े व्यक्त करते हैं :–

क्रम संख्या	प्रदेश	प्रति १० लाख जनसंख्या पर संस्कृत मातृभाषी संख्या (१६६१)	क्रम संख्या	प्रदेश	प्रति १० लाख जनसंख्या पर संस्कृत मातृभाषी संख्या (१६६१)
०१	उत्तर--प्रदेश	३२२.३६	०२	हरियाणा	३५.३७
०३	हिमांचल–प्रदेश	३२.१०	०४	कर्नाटक	१५.४७
०५	मध्य–प्रदेश	६.८३	०६	बिहार	६.२६
०७	राजस्थान	६.८४	०८	दिल्ली	६.२३
०६	महाराष्ट्र	३.५०	१०	तमिलनाडु	३.०२
११	आन्ध्र–प्रदेश	२.६२	१२	उड़ीसा	२.५६
१३	गुजरात	१.६६	१४	पंजाब	१.२८
१५	केरल	१.०६	१६	बंगाल	०.६०
१७	आसाम	०.३१			

यह आँकड़े स्पष्ट करते है कि :

१) पश्चिमोत्तर में हरियाणा (३५.६७) व हिमांचल–प्रदेश (३२.१०), दक्षिण में मध्य–प्रदेश (६.८३) व पूर्व में बिहार (६.२६) एवं पश्चिम में राजस्थान (६.८४) व दिल्ली (६.२३) क्रमशः घटते हुये संस्कृत मातृभाषी घनत्व के क्षेत्र हैं। सर्वाधिक संस्कृत–मातृभाषी घनत्व के क्षेत्र उत्तर–प्रदेश के एक परिमण्डल स्वरूप यह छः प्रदेश अपने भौगोलिक नैकट्य, सम्बद्धता एवं गुरूत्व केन्द्र की प्रतिच्छाया प्रदर्शित करते हैं।

२) प्रति दस लाख जनसंख्या पर चार प्रदेशों में सं०मातृभाषी संख्या २.५० से ३.५० के बीच, तीन प्रदेशों में एक से कम है।

३) सं०मातृभाषी घनत्व के गुरूत्व केन्द्र उत्तर–प्रदेश के परिमण्डल स्वरूप निकट के इन छः प्रदेशों और देश के शेष नौ प्रदेशों के संस्कृत–मातृभाषी घनत्व (३.५० व ०.३) के बीच कर्नाटक का संस्कृत मातृभाषी घनत्व (१५.४७) अपना स्पष्ट व पृथक् अस्तित्व और महत्त्व प्रदर्शित करता है।

जनगणना वर्ष १९९१ में पहली बार अंकित संस्कृत–मातृभाषी जिले

देश के अट्ठारह प्रदेशों के ८५ जिलों में १९९१ की जनगणना में २५९१ सं० मातृभाषी पहली बार अंकित हुए हैं । आसाम के धुवरी, कामरूप और तिनसुखिया में क्रमशः ५–१–१ तथा अरूणाचल के सुबन्सरी और तिरप जिलों में क्रमशः ५ व १ संस्कृत- मातृभाषी १९९१ में पहली बार अंकित हुए हैं । देश के इन ८५ जिलों में से सर्वाधिक जिले (१७) व संस्कृत–मातृभाषी (१५९०) उत्तर–प्रदेश के हैं, शेष ६८ जिलों में १००४ संस्कृत--मातृभाषी हैं। अर्थात्, उत्तर प्रदेश की यह संस्कृत–मातृभाषी संख्या (१५९०) देश के शेष सं० मातृभाषियों की संख्या (१००४) से ड्योढ़ी है ।

पहली बार संस्कृत–मातृभाषी युक्त अंकित इन ८५ जिलों में सर्वाधिक मातृभाषी संख्या गोंडा (८३८), उन्नाव (२२८३), (दोनों उत्तर–प्रदेश) तथा रोहतक (२५५–हरियाणा) में है ।

इस श्रेणी के सं०मातृभाषी युक्त सर्वाधिक जिलों की संख्या वाले शेष प्रदेशों में बिहार व मध्य–प्रदेश के ११–११ जिलों में क्रमशः १८७ व ८३ सं० मातृभाषी हैं । इस श्रेणी के ६ जिलों वाला हरियाणा सं०मातृभाषी संख्या (३९६) के आधार पर उत्तर–प्रदेश के बाद दूसरे क्रमांक पर है । उल्लेखनीय है कि इस श्रेणी के उत्तर–प्रदेश के जिलों की सं०मातृभाषी संख्या, बिहार से ८ गुना, मध्य प्रदेश से १८ गुना और हरियाणा से ४ गुना अधिक है । इन चार प्रदेशों की पृथक्–पृथक् व कुल जनसंख्या व सं० मातृभाषी की संख्या के अनुपात में हरियाणा प्रथम है ।

प्रदेश वार इन जिलों का विवरण अधोलिखित है :

१) उत्तर–प्रदेश के इस श्रेणी के १७ जिलों में प्रथम तीन जिलों–गोंडा, उन्नाव व बहराइच में (८३८+२८३+१२६) कुल १२४७ सं० मातृभाषी हैं जो प्रदेश के इस श्रेणी के जिलों की कुल सं० मातृभाषी का ७९ प्रतिशत हैं । सं०मातृभाषी संख्या के अवरोही क्रम में शेष जिले–टेहरी (६५), अलीगढ़,मऊ व एटा (तीनों ४३–४३), सिद्धार्थ नगर (२४), हरदोई

(१७), कानपुर नगर (१५), हरिद्वार (६), गाजियाबाद (८), बाराबंकी (६), पीलीभीत (५), बिजनौर तथा नैनीताल (२–२) हैं ।

२) यद्यपि मध्य–प्रदेश व बिहार दोनों में ११–११ नये सं०मातृभाषी युक्त जिले हैं; किन्तु मध्य–प्रदेश के इन जिलों के स०मातृभाषियों की कुल संख्या (८३), बिहार के ऐसे जिलों की सं०मातृभाषी संख्या (१८७) के आधे से भी कम है । मध्य–प्रदेश में सर्वाधिक संख्या ग्वालियर (१६) में है जो बिहार के सर्वाधिक संख्या वाले गिरीडीह (६६) की चौथाई (२४. ६%) है। सं०मातृभाषी संख्या के अवरोही क्रमानुसार मध्य–प्रदेश के इस श्रेणी के जिले–विदिशा (१५), रीवा (१४), रतलाम (१३), राजनादगांव (६), सतना (५), शिवपुरी (४), झबुआ (३), रायसेन (२), सीधी व बालाघाट (१–१) हैं ।

३) बिहार के ११ जिलों में से प्रथम तीन जिलों–गिरीडीह (५६), मधुबनी(५३), समस्तीपुर (१६) में कुल १३८ सं०मातृभाषी हैं । शेष आठ जिलों में गोपालगंज (१४), भोजपुर (१२),अररिया (६), रोहतास(१०), सिंहभूमि–पश्चिम व देवगढ़ (२–२), पूर्वी–चम्पारण और दुमका (१–१), कुल ५१ सं०मातृभाषी हैं ।

४) उड़ीसा व राजस्थान दोनों में ६–६ जिलों में क्रमशः ५० व १२८ सं० मातृभाषी हैं । प्रथम–दृष्ट्या उड़ीसा की सं०मातृभाषी संख्या, राजस्थान के आधे से भी कम प्रतीत होती है किन्तु राजस्थान के केवल एक जिले चुरू की (१०१) सं०मातृभाषी संख्या घटाने से वहाँ २७ ही शेष रह जाते हैं, जो उड़ीसा के कुल सं०मातृभाषी (५०)के लगभग आधे ही हैं । उड़ीसा के धनकनाल (२३), बालनगीर (११), बालेश्वर (६), केउंझर (४), कोरापुट (३)और फुलबनी में (२) क्रमशः घटती संख्या में सं०मातृभाषी हैं । जिलेवार सं०मातृभाषी संख्या के अवरोही क्रम में राजस्थान के चुरू जिले के अतिरिक्त बनासवाड़ा (१६), सिरोही (४), झालवाड़ (२), जालौर और जैसलमेर (१–१), है ।

इसी प्रकार हरियाणा के ६ जिलों के ३६६ सं०मातृभाषियों में से २५५ (७० प्रतिशत) केवल रोहतक जिले में हैं । शेष ११० में से यमुना–

नगर में ७१ (१६.३ प्रतिशत), कैथल में २३ (६.२ प्रतिशत) हैं । इस प्रकार हरियाणा के इन छः नये सं०मातृभाषी जिलों के कुल सं०मातृभाषियों के क्रमशः ७० प्रतिशत, १६.३ प्रतिशत व ६.२ प्रतिशत केवल इन तीन जिलों में हैं । शेष तीन जिलों--सोनीपत में ८, रिवाड़ी में ७ व सिरसा में २ सं०मातृभाषी हैं ।

५ केरल और महाराष्ट्र के पाँच--पाँच नये सं०मातृभाषी जिलों में क्रमशः कुल २८ व १६ सं०मातृभाषी हैं । केरल में सर्वाधिक इरनाकुलम में २० हैं । कोट्टय्यम में ४, कसरागाड में २ तथा पल्लकड़ व इडक्की में एक–एक सं०मातृभाषी है । किन्तु महाराष्ट्र में सर्वाधिक १० सं०मातृभाषी अकोला में हैं, जो केरल के सर्वाधिक एरनाकुलम (२०) का आधा ही है। इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र के लटूर तथा यवतमल में तीन–तीन, जालना व गदचिरौली में एक--एक सं०मातृभाषी है । इस प्रकार केरल के एरनाकुलम (२०) और महाराष्ट्र के अकोला के (१०) सं०मातृभाषी को छोड़ कर दोनों प्रदेशों में नये सं०मातृभाषी लगभग बराबर (८–६) ही हैं।

६ आन्ध्र–प्रदेश के इस श्रेणी के ४ जिलों–रंगारेड्डी (२४) चित्तूर (१७) करीमगंज (११) तथा खम्मन (५) में कुल मिलकर ५७ सं० मातृभाषी हैं।

७ तमिलनाडु के तीन जिलों–धर्मपुर (४), तिरूवन्नमलई (७) तथा चेंगाई अन्ना (१८) में सं०मातृभाषी पहली बार अंकित हुए हैं । यद्यपि १६७१ में गोवा में संस्कृत–मातृभाषी थे किन्तु गोवा–दक्षिण जिला संस्कृत–मातृभाषी युक्त इस बार ही अंकित है ।

८ हिमांचल–प्रदेश, गुजरात, पश्चिमी–बंगाल, गोवा, त्रिपुरा और नागालैण्ड में प्रत्येक में एक–एक नया सं०मातृभाषी जिला १६६१ में पहली बार अंकित हुआ है जिनमें क्रमशः उना, साबरकांठा, जलपाईगुड़ी, दक्षिणी–गोवा, उत्तरी–त्रिपुरा और कोहिमा में क्रमशः २२,६,६,२,१ व १ संस्कृत मातृभाषी हैं ।

इन ८५ जिलों के २५६१ संस्कृत मातृ–भाषियों की देखभाल व जीवन्त बना रहना उत्सुकता से अगली जनगणना तक प्रतीक्षित रहेगा ।

सुषुप्त संस्कृत–मातृभाषियों का १६६१ की जनगणना में पुनः अंकुरण

देश के एक सौ सैंतीस जिलों में, विवेचनाधीन चार जन--गणना वर्षों में से किन्ही एक या दो गणना वर्षों में संस्कृत–मातृभाषी अंकित थे तथा एक–दो वर्षों में अंकित नहीं थे परन्तु १६६१ की गणना में अब पुनः अंकित हैं । इन १३७ जिलों में से, पूर्व की अपेक्षा, ६० जिलों में अधिक, ३७ जिलों में कम तथा दस जिलों में समान संख्या में संस्कृत–मातृभाषी १६६१ में अंकित हुए हैं । केवल एक जनगणना वर्ष १६६१ के संस्कृत मातृभाषी युक्त २५ जिले, १६६१ व १६७१ के दोनों वर्षों में संस्कृत–मातृभाषी युक्त २६ जिले, तथा १६६१ व १६८१ के दोनों वर्षों में संस्कृत–मातृभाषी युक्त रहे १३ जिले (कुल मिलाकर ६७ जिले) ऐसे हैं जहाँ १६६१ में संस्कृत–मातृभाषी थे और १६६१ में पुनः अंकित हुए हैं किन्तु बीच के एक–दो वर्षों में नहीं रहे । तीन जनगणना वर्षों की अपेक्षा १६६१ की गणना में इन ६७ जिलों मे से ४५ जिलों में अधिक, १७ जिलों में कम व पाँच जिलों में पूर्ववत् संख्या में संस्कृत–मातृभाषी अंकित हुए है ।

जनगणना वर्ष १६७१ के २१ जिलों व १६८१ के भी २१ जिलों, एवं १६७१ व १६८१ दोनों वर्षों में संस्कृत–मातृभाषी युक्त रहे २८ जिलों (कुल ७०) में १६६१ की गणना की में संस्कृत–मातृभाषी पुनः अंकित हुए हैं । इन ७० जिलों में से ४५ जिलों में पूर्व की अपेक्षा १६६१ में अधिक, २० में कम, व ५ जिलों में बराबर संख्या में संस्कृत–मातृभाषी अंकित हुए ।

समान संख्या में पुनः अंकुरण –

अधोलिखित दस जिलों में से पाँच जिलों में १६६१ की तथा अन्य पाँच में १६७१ की संख्या के बराबर ही संस्कृत–मातृभाषी १६६१ में पुनः अंकित हुए हैं जब कि केवल १६८१–१६६१ के दशक में ही इन जिलों की कुल जनसंख्या में वृद्धि संस्कृत–मातृभाषी की संख्या वृद्धि से कहीं अधिक हैं।

क्र०	जिला	जनगणना वर्षवार संस्कृत–मातृभाषी संख्या				१६८१–१६६१ में जिले में जनसंख्या की सामान्य वृद्धि
		१६६१	१६७१	१६८१	१६६१	%
१.	कांगड़ा	१८	०	०	१८	१८.५०
२.	भावनगर	३	०	०	३	२१.६६
३.	पाली	३	४	०	३	१६.६३
४.	दतिया	१	०	०	१	२२.४५
५.	बूंदी	१	०	०	१	२५.८५
६.	सूरत	०	१	१	१	३६.३६
७.	नान्देद	०	२	२३	२	३३.२१
८.	जोधपुर	०	२	१३	२	२६.१२
६.	कलकत्ता	०	१०	२	१०	०६.६१
१०.	मुजफ्फरपुर	०	१३	०	१३	२५.३०

इन दस जिलों में सुषुप्तावस्था के बाद १६६१ में बराबर की संख्या में संस्कृत–मातृभाषियों का पुनः अंकुरण आशाजनक होने पर भी चिन्तनीय है, क्योंकि सामान्यतः जनसंख्या–वृद्धि के अनुपात से संस्कृत–मातृभाषियों में संख्या–वृद्धि तो होनी ही चाहिए थी । नान्देद व जोधपुर में तो १६८१ में संस्कृत–मातृभाषी संख्या अधिक होने पर भी १६६१ में पुनः कम होना और भी विचारणीय है ।

कम संख्या में पुनः अंकुरण :

जनगणना वर्ष १६६१ में संस्कृत–मातृभाषी पुनः अंकुरण के १३७ जिलों में से ३७ (वर्ष १६६१ के १७ तथा १६७१ व १६८१ के २०) जिलों में पूर्व की अपेक्षा कम संख्या में संस्कृत मातृभाषी अंकित हुए हैं जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :–

१. जालन्धर, त्रिचूर व गाजीपुर जहाँ १६६१ में क्रमश २, ३ व ८ (कुल–१३) संस्कृत मातृभाषी थे, वहाँ १६६१ में केवल एक–एक (कुल–३) है । गुना, चित्रदुर्ग व मैनपुरी जहाँ १६६१ में क्रमशः १७, १८ व १६ (कुल–५४) संस्कृत–मातृभाषी थे, वहाँ १६६१ में १५, ६ व ६ (कुल–२७) अंकित हैं । अर्थात् वर्ष १६६१ के छः जिलों के (१३+५४=)६७ संस्कृत–मातृभाषियों के स्थान पर १६६१ में (३+२७=)३० ही पुनः अंकुरित हुए हैं ।

२. जनगणना वर्ष १६६१ में चार जिलों होशंगाबाद, पटना, अहमदाबाद व मुरादाबाद में क्रमशः ८,२४,८६,१६६ (योग–२८७) संस्कृत–मातृभाषी थे किन्तु पुनः १६६१ में क्रमशः २,१२,८ व ११ (योग–३३) अंकित हुए हैं। अर्थात् २८७ से घटकर ३३ ही पुनः अंकुरित हुए हैं ।

३. जनगणना वर्ष १६६१ के सात जिलों, जहाँ १६७१ में संस्कृत मातृभाषी नहीं थे किन्तु १६८१ में थे, में से दो जिलों, धारवाड में वर्ष १६६१ के ४८ संस्कृत–मातृभाषी के स्थान पर ४ तथा इलाहाबाद में ६२६ के स्थान पर ४१, जनगणना वर्ष १६६१ में अंकित (१६८१ में क्रमशः ४० व १ थे) हैं । माण्ड्या और बेलगाँव जहाँ १६८१ में दोनों स्थानों में ५०–५० संस्कृत मातृभाषी थे वहाँ १६६१ में क्रमशः ४ व २ (१६६१ में क्रमशः १ व ३ थे) हैं । जलगाँव, कोलार व औरंगाबाद जहाँ १६६१ में क्रमशः १, ४ व १४ तथा १६८१ में क्रमशः १५,१८ व २४ संस्कृत–मातृभाषी थे, वहाँ १६६१ में क्रमशः ३,६ व ५ हैं । इन पाँच जिलों–माण्ड्या, बेलगाँव, जलगाँव, कोलार व औरंगाबाद में १५७ के स्थान पर २० संस्कृत–मातृभाषी १६६१ में रह गये जो १६६१ से भी कम हैं । बेलगाँव व औरंगाबाद के कारण ही १६६१ में संस्कृत–मातृभाषी संख्या १६६१ से भी कम है । इस प्रकार इन सात जिलों के वर्ष १६६१ के ६६७ व वर्ष १६८१ के १६८ संस्कृत–मातृभाषी, १६६१ में ६५ ही पुनः अंकुरित हुए हैं ।

४. कच्छ व मेंदनीपुर में १६७१ में क्रमशः छः व सात संस्कृत–मातृभाषी थे किन्तु १६६१ में वहाँ केवल एक–एक ही है । रामपुर व सिरमौर के १६७१ के १०–१० व सीकर के २० संस्कृत–मातृभाषी, १६६१ में क्रमशः आठ,छः व आठ ही हैं । इस प्रकार इन पांच जिलों के १६७१ के ५३ संस्कृत–मातृभाषी घटकर १६६१ में २४ ही हैं ।

५.. जनगणना वर्ष १६८१ में फरीदाबाद व रूपनगर में क्रमशः ४८ व १० संस्कृत–मातृभाषी थे, जहाँ १६६१ में एक–एक ही अंकित है । इन दो जिलों सहित १६८१ के सात जिलों के कुल १२६ संस्कृत–मातृभाषियों के स्थान पद १६६१ में ४२ अंकित है ।

६. आठ जिलों में जहाँ १६६१ में संस्कृत–मातृभाषी नहीं थे किन्तु १६७१ व १६८१ में थे, वहाँ १६६१ में भी हैं । इनमें से दो जिलों थाणे व जूनागढ़ में अंकुरण के पश्चात् क्रमशः (१३–६–४ व ८–७–४)घटोत्तरी ही होती जा रही है । उत्तरी–गोवा व खासी–पहाड़ियों में २०–२० के स्थान पर १६६१ में क्रमशः छः व आठ संस्कृत–मातृभाषी हैं । कोल्हापुर व विलासपुर (हि०प्र०) में १६७१ के २२–२२ के स्थान पर १६६१ में ६ व ८ संस्कृत मातृभाषी हैं । विलासपुर में १६८१ में तो ३१ थे । दक्षिण–कन्नड़ में १६७१ में २५ व १६८१ में ३० संस्कृत–मातृभाषी थे किन्तु १६६१ में केवल १६ ही हैं । सर्वाधिक कमी मथुरा में है जहाँ १६७१ के ४२६ संस्कृत–मातृभाषी घटकर १६८१ में ५ व १६६१ में २६ ही अंकित हैं । इस प्रकार इन आठ जिलों के १६७१ के पुनः अंकुरित ५५६ व १६८१ के ६५ संस्कृत–मातृभाषी, १६६१ में ८४ ही अंकित है।

इन सैंतीस जिलों के विवरण से स्पष्ट है कि :

१. केवल १६६१, १६७१ व १६८१ एक–एक वर्ष के (६७+५३+१२६=)२४६ संस्कृत–मातृभाषी, १६६१ में (३०+२४+४२=)६६ हैं ।

२. गणना वर्ष १६६१ व १६७१ के २८७, वर्ष १६६१ व १६८१ के ६६७, तथा १६७१ व १६८१ के ५५६ संस्कृत–मातृभाषियों के स्थान पर, १६६१ में १८२ संस्कृत–मातृभाषी अंकुरित हुए हैं । अर्थात् पूर्व गणना वर्षो के सुप्त (१२८४+२११+५५६=)२०५१ संस्कृत–मातृभाषियों के स्थान पर वर्ष १६६१ में २७८ संस्कृत–मातृभाषी अंकुरित–अंकित हुए।

इस प्रकार १६६१ के (६७+२८७+६६७=) १३५१ संस्कृत–मातृभाषी व १६७१ व १६८१ के (५३+१२६+५५६=) ७३८, कुल (१३५१+७३८=) २०८६ के स्थान पर १६६१ में मात्र २७८ संस्कृत-मातृभाषी ही पुनः अंकुरित हुए । अर्थात् (२०२२–२७८=) १८११ कम संस्कृत–मातृभाषी पुनः अंकुरित हुए ।

वृद्धि–सहित अंकुरण :

जनगणना–वर्ष १६६१ के १६ जिलों, वर्ष १६६१ व १६७१ के २३ जिलों एवं १६६१ व १६८१ के ६ जिलों (योग ४५); वर्ष १६७१ के १५ जिलों, १६८१ के १३ जिलों तथा १६७१ व ८१ के १७ जिलों (योग ४५ जिलों) में १६६१ में संस्कृत–मातृभाषी, संख्या–वृद्धि सहित पुनः अंकुरित हुए हैं । इस प्रकार कुल ६० जिलों में संख्या–वृद्धि सहित संस्कृत–मातृभाषी पुनः अंकुरित–अंकित हुए हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है :–

१– (क) जनगणना वर्ष १६६१ में छः जिलों – मिर्जापुर, परभनी, बैतूल, जामनगर, गोरखपुर व रायबरेली में जहाँ एक–एक संस्कृत मातृभाषी था वहाँ वर्ष १६६१ में क्रमशः ३, ५,८,६,१२ व ५५ संस्कृत–मातृभाषी हैं । दो–दो संस्कृत–मातृभाषी वाले दो जिलों–भटिण्डा व भण्डारा में क्रमशः ६ व २४, तथा तीन–तीन संस्कृत–मातृभाषियों वाले तीन जिलों–उदयपुर, सागर व मुजफ्फरनगर में क्रमशः ५, ८, व १४ संस्कृत मातृभाषी १६६१ में हैं । दुर्ग में १६६१ के चार के स्थान पर २० हैं । पाँच पाँच संस्कृत–मातृभाषियों के तीन जिलों फेजावाद, लखनऊ व

प्रतापगढ़ में क्रमशः १३, १७७ व ६४६ हैं । खीरी लखीमपुर में ५२ संस्कृत–मातृभाषियों के स्थान पर ४२४ अंकित हुए हैं । इन सभी १६ जिलों में १६६१ के कुल ६० संस्कृत--मातृभाषी के स्थान पर १६६१ में १७२६ संस्कृत–मातृभाषी अंकित हुए हैं ।

(ख) जनगणना वर्ष १६६१ व १६७१ में दोनों वर्षों में एक--एक संस्कृत–मातृभाषी वाले दो जिलों--बनासकांठा व देवरिया में १६६१ में क्रमशः २ व ७२ हैं । एक--एक सं०मातृभाषी के १६६१ के शेष छः जिलों में से चार--बिलासपुर, मुंगेर, झुनझुनू व शहडोल में अब क्रमशः ६८, १२, ४ व ४ संस्कृत–मातृभाषी १६६१ में है जब कि १६७१ में क्रमशः २, ११, ४३ व ४४ थे । तीनों जनगणना वर्षों १६६१, १६७१ व १६६१ में महबूबनगर व सुरगुजा दोनों स्थानों पर क्रमशः १, ४ व ५ संस्कृत मातृभाषी रहे । इस प्रकार इन आठ जिलों के १६६१ के आठ सं०मातृभाषी १६७१ में ११० तथा १६६१ में २०२ हो गये ।

(ग) जनगणना १६६१ के दो--दो संस्कृत मातृभाषी वाले पांच जिलों–हजारीबाग, बस्तर, जयपुर, अर्काट व सीतापुर में १६६१ में क्रमशः ८,४,१५,८ व ४०११६ सं०मा०भा० हैं । चार जिलों – नालन्दा, गुड़गाँव, पाली व बरेली, में जहाँ वर्ष १६६१ में तीन–तीन व १६७१ में एक–एक संस्कृत–मातृभाषी था वहां १६६१ में क्रमशः ६, ५, ३ व १०७ अंकित हुए हैं । इन ६ जिलों में सं०मातृभाषी ३७ से बढ़कर २७२ हो गये (सीतापुर में ११६ मानकर)

(घ) छः जिलों देहरादून, अमरावती, कोटा, बदायूँ, नागपुर व मैसूर में वर्ष १६६१ में कुल मिलाकर ७५ तथा वर्ष १६७१ में कुल ८१ संस्कृत–मातृभाषी थे वहाँ १६६१ में कुल २०४ अंकित हुए । अन्य छः जिलों उत्तर-कन्नड़, मेरठ, कानपुर, खेरा, धार व अलवर में कुल मिलाकर १६६१ में २१ व १६८१ में ३० संस्कृत

मातृभाषी थे किन्तु १९९१ में ८७५ हैं । इस प्रकार इन १२ जिलों के १९६१ के ६६ सं०मातृभाषी १९९१ में १०७६ हो गये । इसमें से केवल कानपुर में ही १९९१ में ८०४ संस्कृत–मातृभाषी होने के कारण यह वृद्धि अधिक दिखाई देती है अन्यथा १९६१ (के इक्कीस) व १९८१ (के तीस) के स्थान पर १९९१ में (८७५–८०४=) ७१ की वृद्धि अन्य शेष जिलों की वृद्धि के समान ही है ।

इस प्रकार इन २९ जिलों में १९६१ के २३१ संस्कृत मातृभाषी १९९१ में ३२८२ हो गये । (सीतापुर में ४० हजार कम करके केवल ११६ ही मान कर)

२. जनगणना वर्ष १९७१ के १५ जिलों में से १० जिलों–विशाखापतनम्, शाजापुर, बांदा, बस्ती, कोडागू, मंडसोर, माण्डला, निजामाबाद, पुरी व इन्दौर में जहाँ एक–एक संस्कृत–मातृभाषी था वहाँ १९९१ में क्रमशः २,३,४,६,६,६,६,१७,२५ व ११० है । अनन्तपुर में दो के स्थान पर ५ हो गये हैं । तीन–तीन संस्कृत–मातृभाषी के १९७१ के तीन जिलों–बारमेड, गुण्टूर व जिन्द में क्रमशः ४, १३ व ३६ हो गये हैं । राजकोट में दस के स्थान पर २३ संस्कृत–मातृभाषी १९९१ में पुनः अंकुरित हुए हैं । इस प्रकार १९७१ के पन्द्रह जिलों के संस्कृत–मातृभाषी ३१ से बढ़कर १९९१ से २७८ हो गये हैं ।

३. कुल्लू, टोंक, चम्बा, बड़ोदरा, बिल्लेरी व पुणे (छः जिलों) में १९७१ में एक–एक संस्कृत–मातृभाषी (कुल छः) था, जहाँ १९९१ में कुल १३६ हैं । अन्य छः जिलों गुलवर्ग, रायपुर, नन्देद, जोधपुर, गंगानगर व सुरेन्द्रगढ़ (उड़ीसा) जहाँ प्रत्येक में १९७१ में दो–दो (कुल १२) संस्कृत–मातृभाषी थे, वहाँ १९९१ में कुल मिलाकर ४६ हैं जबकि १९८१ में कुल ७२ थे । अर्थात् वस्तुतः इन छः जिलों में तो यहाँ घटोत्तरी ही है । पांच जिलों–नौगढ़, धुले, रांची, कूच–विहार व

मण्डी जहां १६७१ में कुल २२ तथा १६८१ में २४ संस्कृत–मातृभाषी थे, वहां १६६१ में २०७ है । किन्तु वस्तुतः १६६१ की गणना में केवल नौगढ़ में १७१ संस्कृत मातृभाषी अंकित होने के कारण यह अधिक वृद्धि दिखाई देती है । इन १७ जिलों में १६७१ के ४० संस्कृत–मातृभाषियों के स्थान पर १६६१ में ३८२ अंकित हैं ।

४. जनगणना वर्ष १६८१ के १३ जिलों (दो नीमार से १४) के कुल १०६ संस्कृत मातृभाषी १६६१ में ५२५ हो गये हैं ।

इस प्रकार वृद्धि सहित पुनः संस्कृत–मातृभाषी अंकुरित ६० जिलों में ४०८ संस्कृत–मातृभाषी के स्थान पर १६६१ में ४४६२ संस्कृत–मातृभाषी अंकित हुए हैं ।

पूर्व वर्षों के प्रसुप्त संस्कृत–मातृभाषियों के इन १३७ जिलों में से ३७ जिलों के २०८६ संस्कृत मातृभाषियों के स्थान पर १६६१ की जनगणना में २७८ पुनः अंकुरित हुए और ६० जिलों के ४०८ संस्कृत मातृभाषियों के स्थान पर ४४६७, अंकुरित हुए अर्थात् कुल (२०८६+४८०=) २४६७ संस्कृत–मातृभाषियों के स्थान पर (२७८+४४६७=) ४७४५ संस्कृत–मातृभाषी अंकुरित हुए । दस जिलों में संख्या पूर्ववत् रही । अतः पुनः अंकुरण स्वरूप (४७४५-२४६७=)२२४८ संस्कृत–मातृभाषियों की वृद्धि इन १३७ जिलों में हुई है ।

तत्त्वतः विवेचनाधीन चारों जनगणना वर्षों में से १६८१ में जब देश में न्यूनतम् संस्कृत–मातृभाषी जिले (८२) व संस्कृत–मातृभाषी (२६४६) अंकित हुए थे और उसी वर्ष केवल ३६ जिलों में संस्कृत–मातृभाषी संख्या २०५७ थी, तब १३७ जिलों में वर्ष १६६१ में पुनः अंकुरण स्वरूप २०४८ संस्कृत–मातृभाषियों का अंकन आशाप्रद होते हुए भी पूरे देश में संस्कृत–मातृभाषियों के लिए कोई संतोषप्रद स्थिति नहीं है ।

चारों–जनगणना में रहे संस्कृत–मातृभाषी–युक्त जिले

देश के उन्तालिस जिलों में चारों जनगणना वर्षों (१६६१–१६६१) में सं० मातृभाषी रहे हैं । इन जिलों में संस्कृत–मातृभाषियों की विद्यमानता की यह निरन्तरता व अन्य जिलों में इसका अभाव तथा विभिन्न प्रदेशों व पूरे देश के तत् सम्बन्धी आंकड़ो का पारस्परिक विश्लेषण संस्कृत–मातृभाषियों की स्थिति के बारे में विशेष प्रकाश डाल सकता है ।

जनगणना वर्षवार (१६६१–६१) देश में कुल संस्कृत–मातृभाषी –संख्या व तत्सम्बन्धित जिलों की संख्या के साथ ही चारो गणना वर्षों में संस्कृत –मातृभाषी युक्त देश के ३६ जिलों व शेष सं०मातृभाषी जिलों तथा वहाँ सं०मातृभाषियों की संख्या के आँकड़े तीन स्तरों की पारस्परिक स्थिति स्पष्ट करने हेतु नीचे दिये जा रहे हैं :–

	१६६१		१६७१			१६८१			१६६१		
	सं.मा भाषी जिलों की संख्या	सं.मा भाषियों की संख्या	सं.मा भाषी जिलों की संख्या	सं.मा भाषियों की संख्या	पूर्व वर्ष की अपेक्षा सं.माभा का प्रतिशत	सं.मा भाषी जिलों की संख्या	सं.मा भाषियों की संख्या	पूर्व वर्ष की अपेक्षा संमाभा का प्रतिशत	सं.मा भाषी जिलो की संख्या	सं.मा भाषियों की संख्या	पूर्व वर्ष की अपेक्षा सं.मां भाषियों प्रतिशत
देश में	१३८	२५४४	.१५४	२२१२	– १३	१२३	२६४६	३३.१८	२६३	४६७३६	१६८.२५
३६ जिलों में	३६	५४८	३६	८५८	५६.५७	३६	२०५७	२३६.७४	३६	२२८६	१२६
शेष जिलों में	६६	१६६६	११५	१३५४	–३३	८४	८८६	–३६	२२४	४७४४७	५३३६

इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि :–

१ देश में सं०मातृभाषी जिलों की संख्या १६८१ में न्यूनतम (१२३) है ।

२ देश में १६६१ में सं०मातृभाषी जिलों व संस्कृत मातृभाषियों की संख्या में पूर्व वर्षों की अपेक्षा वृद्धि हुई है ।

३ यद्यपि वर्ष १६६१ की अपेक्षा १६७१ में देश में सं०मातृभाषी जिलों की संख्या १३८ से बढ़कर १५४ हो गयी किन्तु इसके विपरीत सं० मातृभाषी संख्या २५४४ से घटकर २२१२ गई । परन्तु इसी अवधि में ३६ जिलों में सं०मातृभापियों की संख्या ५४८ से बढ़कर ८५८ हो गयी।

४ यद्यपि वर्ष १६७१ की अपेक्षा १६८१ में देश में सं०मातृभाषी जिलों की संख्या घट (१५४–१२३) गई, फिर भी पूरे देश में सं०मातृभाषियों की संख्या में (२२१२–२६४६) ३३.१८ प्रतिशत की वृद्धि हुई और ३६ जिलों में तो यह वृद्धि (८५८ से २०५७) अपेक्षाकृत अधिक (२३६.७४% लगभग ढाई गुना) हुई ।

५ देश में जनगणना १६७१ में सं०मातृभाषी जिलों की संख्या बढ़ने (१३८–१५४) पर भी सं०मातृभाषी संख्या घटी (२५४४ से २२१२) किन्तु १६८१ में जिलों की संख्या घटने (१५४ से १२३) पर भी सं०मातृभाषी (२२१२ से २६४६) बढ़े हैं ।

६ चारों गणना वर्षों में देश के सं०मातृभाषी युक्त ३६ जिलों में वर्ष १६८१ में २०५७ सं०मातृभाषी थे किन्तु देश के शेष भाग में ७४ जिलों में केवल ८८६ सं० मातृभाषी थे ।

७ चारो जनगणना वर्षों में प्रदेशवार सं० मातृभाषी ३६ जिलों में १६६१, '७१, व '८१ व '६१ में सं० मातृभाषी संख्या क्रमशः ५४८, ८५८, २०५७ व २२८६ रही जो पूर्व वर्ष की अपेक्षा १६७१ में ५६.५७%, १६८१ में २३६.७४% (लगभग ढाई गुना) व १६६१ में १२.६% अधिक रही । इस प्रकार वर्ष १६६१ में १६८१ की अपेक्षा २३२ सं०मातृभाषियों की वृद्धि न्यूनतम है । यह वृद्धि देश में जनसंख्या की सामान्य वृद्धि की अपेक्षा और भी कम है ।

८ यद्यपि चारों गणना वर्षों में रहे ३६ जिलों में सं०मातृभाषियों की संख्या में क्रमशः (५४८, ८४८, २०५७, २२८६) वृद्धि होती गयी, किन्तु देश के शेष सं०मातृभाषी जिलों में तीन गणना वर्षों में सं०मातृभाषियों की संख्या क्रमशः (१६६६–१३५४–८८६) घटती गयी और केवल वर्ष १६६१ में (४७४४७) वृद्धि हुई ।

६ देश में १६७१ की सं० मातृभाषी संख्या (२२१२) व १६८१ में सं० मातृभाषी जिलों की संख्या (१२३) को छोड़कर शेष वर्षों व वर्गों में

जिलों व भाषियों की संख्या में वृद्धि हुई । यह वृद्धि वर्ष १९९१ में न्यूनतम है जो देश की जनगणना में सामान्य वृद्धि के अनुपात में और भी कम है ।

देश के १९६१–९१ के चारो जनगणना वर्षों में सं०मातृभाषी वाले १३ प्रदेशों में चारों गणना वर्षों में सं० मातृभाषी युक्त ३६ जिलों की संख्या इस प्रकार है : तमिलनाडु व बिहार में ६–६, कर्नाटक में ५, महाराष्ट्र में ४, मध्य-प्रदेश व हरियाणा में ३–३, आन्ध्र, हिमांचल–प्रदेश, पंजाब, राजस्थान और उत्तर–प्रदेश प्रत्येक में २–२, केरल व दिल्ली के एक–एक । अरूणाचल, आसाम, गोवा, गुजरात, जम्मूकश्मीर, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, उड़ीसा, पश्चिम–बंगाल, त्रिपुरा व पाण्डिचेरी (१५ प्रदेश) का कोई जिला चारो गणना वर्षों (१९६१–९१) में सं० मातृभाषी युक्त नहीं रहा है ।

प्रदेशों के कुल जिलों की संख्या, वहाँ के चारो जनगणना में सं० मातृभाषी युक्त जिलों की संख्या व उनके प्रतिशत के अधोलिखित आंकड़े वहाँ के सं० मातृभाषी आच्छादन क्षेत्र की स्थिति स्पष्ट करते हैं ।

क्रमांक	प्रदेश	१९९१ में प्रदेश के कुल जिलों की संख्या	चारों जनगणना वर्षों में सं०मातृभाषी युक्त जिलों की संख्या	कुल जिलों की संख्या में सं० मातृभाषी जिलों का प्रतिशत
१.	तमिलनाडु	२१	६	२८.५७
२.	बिहार	४२	६	१४.२८
३.	कर्नाटक	२०	५	२५.००
४.	महाराष्ट्र	३०	४	१३.३३
५.	मध्य–प्रदेश	४५	३	०६.६६
५.	हरियाणा	१६	३	१८.७५
७.	आन्ध्र–प्रदेश	२३	२	०८.६६
८.	हिमाचल–प्रदेश	१२	२	१६.६६
९.	पंजाब	१२	२	१६.६६
१०.	राजस्थान	२७.	२	०७.४०
११.	उत्तर–प्रदेश	६३	२	०३.१७
१२.	केरल	१४	१	०७.१४
१३.	दिल्ली	१	१	१००.००
	योग	३२६	३६	

इन आँकड़ो से स्पष्ट हैं कि सं० मातृभाषी युक्त रहे देश के (कुल) ३२८ जिलों में से ३६ (११.८%) जिले लगातार चारों गणना वर्षों में रहे हैं। प्रदेशों के जिलों की कुल संख्या की अपेक्षा इन उनतालिस जिलों में से वहाँ के जिलों की कुल संख्या के अनुसार सर्वाधिक आच्छादन प्रतिशत तमिलनाडु (२८.५७%), कर्नाटक (२५%), हरियाणा (१८.७५%), हिमांचल तथा पंजाब (दोनों १६.६६%) में है । सबसे कम आच्छादन उत्तर-प्रदेश (३.१७%), मध्य-प्रदेश (६.६६%) तथा राजस्थान (७.४%) व केरल (७.१४%) में है ।

प्रदेशों की चारों जनगणना वर्षवार कुल सं० मातृभाषी संख्या, तथा प्रदेशवार, उनतालिस जिलों से सम्बन्धित प्रदेशों की (३६ जिलों की) सं० मातृभाषी संख्या और वहीं के शेष जिलों की सं० मातृभाषी संख्या के आंकड़े इन तीनों श्रेणी के सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिये नीचे दिये जा रहे हैं :–

जनगणना वर्षवार, कुल संस्कृत–मातृभाषी संख्या, प्रदेशवार, उनतालिस जिलों में व शेष जिलों में

		१९६१			१९७१			१९८१			१९९१		
क्र०		पूरे प्रदेश में	३९ जिलों में	शेष जिलों में	पूरे प्रदेश में	३९ जिलों	शेष जिलों	प्रदेश में	३९ जिलों	शेष जिलों	प्रदेश में	३९ जिलों	शेष जिलों
१	आन्ध्र–प्रदेश	२५	२१	४	४५	१७	२८	२६	११	१५	१६६	५५	१४४
२	बिहार	१२६	७६	५०	३५०	२२४	१२६	११७	११२४	५०	८०२	३०४	४६८
३	हरियाणा	३०	२७	३	४०	३६	४	१४८	८७	६१	५७५	७८	४६७
४	हिमांचलप्रदेश	५३	४५	८	८४	४२	४२	८१	३०	५१	१६७	२६	१४१
५	कर्नाटक	१२५	२२	१०३	१११	७०	४१	५०६	२७५	२३४	६६५	५६१	१७६
६	केरल	७	०४	३	०४	०४	०	७	०७	०	३०	०२	२६
७	मध्यप्रदेश	३८४	१०१	२८३	६१	२२	६६	७०	२०	५०	६५०	८६	५६१
८	महाराष्ट्र	८२	३५	४७	१५५	७४	८१	२८१	६७	२१४	२७७	८६	१८८
९	पंजाब	४१	०८	३३	७७	५६	१८	६१	२३	३८	२६	१६	१०
१०	राजस्थान	३१	०३	२८	११५	१६	६६	८५	३३	५२	४३३	२१	४१२
११	तमिलनाडु	११७	१०१	१६	२५४	१७३	८१	२४४	२००	४४	१६६	११७	५२
१२	उ०प्र०	१३३२	३८	६५	५०८	२४	४८४	१०७	८७	९.२०	४४८४७	३८७	४४४६१
१३	दिल्ली	६४	६४	–	६४	६४	–	६३	६३	–	–	५८७	–
योग			५४८			८५८			२०५७			२२८६	
देश की कुल सं.मातृभाषी संख्या		२२५४			२२१२			२६५६			४६७३६		

इन आँकड़ो से ज्ञात होता है कि :—

१ चारो जनगणना वर्षों में सं० मातृभाषी युक्त तमिलनाडु के (छः) जिलों की कुल मातृभाषी संख्या (१०१, १७३, २०० व १७७) से, प्रदेश के शेष जिलों की कुल सं० मातृभाषी संख्या (१६, ८१, ४४ व ५२) चारों वर्षों में कम रही ।

२. बिहार, केरल और हरियाणा में वर्ष १९९१ में तथा कर्नाटक में १९९१ को छोड़कर अन्य तीन गणना वर्षों में, इन प्रदेशों के ३६ जिलों की श्रेणी के जिलों की सं० मातृभाषी संख्या इन प्रदेशों के इन से इतर शेष जिलों की कुल सं०मातृभाषी संख्या से कम है । केरल व हरियाणा के इन इतर शेष जिलों में १९९१ में अपेक्षाकृत विशेष वृद्धि तथा ३६ जिलों की श्रेणी के जिलों की सं० मातृभाषी संख्या में विशेष कमी हुई है ।

३ मध्य–प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान व उत्तर–प्रदेश के सं० मातृभाषी युक्त ३६ जिलों की श्रेणी से इतर शेष जिलों में चारों जनगणना वर्षों में सं मातृभाषी अधिक रहे ।

४ आन्ध्र–प्रदेश में १९९१ को छोड़कर, शेष तीन गणना वर्षों में ३६ जिलों की श्रेणी से इतर शेष जिलों में सं०मातृभाषी अधिक रहे ।

५. पंजाब प्रदेश में जनगणना वर्ष '७१ व '८१ से क्रमशः घटते हुए १९९१ में मात्र ३६ सं०मातृभाषी हैं । यही स्थिति वहाँ के ३६ जिलों की श्रेणी के दो जिलों की हैं, जहाँ घटते हुए क्रमशः ५६, २३ व १६ सं०मातृभाषी हैं । उनतालिस जिलों की श्रेणी के इन दो जिलों से इतर शेष जिलों में भी सं०मातृभाषी संख्या १९९१ में न्यूनतम है । इन इतर शेष जिलों की श्रेणी में १९८१ में सर्वाधिक सं०मातृभाषी (३८) रहे । किन्तु १९९१ की गणना में वह भी न्यूनतम की स्थिति (१०) में आ गये ।

६. हिमाचल प्रदेश में ३६ जिलों की श्रेणी से इतर शेष जिलों में १९६१ में कम, '७१ में बराबर किन्तु '८१ व '९१ में अधिक संख्या में सं०मातृभाषी हैं। इन इतर शेष जिलों में सं०मातृभाषी संख्या प्रति गणना–वर्ष (१९६१, '७१ '८१, '९१) बढ़ती गयी (८–४२–५१–१४१) जबकि ३६ जिलों की श्रेणी के जिलों में लगातार (४५–४२–३०–२६) घटती गयी ।

७. सात प्रदेशों में १९८१ की अपेक्षा १९९१ में सं०मातृभाषी संख्या घटी है । इन प्रदेशों की दोनों गणना वर्षवार कुल सं०मातृभाषी संख्या तथा वहाँ के ३६ जिलों की श्रेणी के जिलों की सं०मातृभाषी संख्या में निम्नलिखित दो वर्ग स्पष्ट दिखाई देते हैं :–

(क) चार प्रदेशों में १९८१ से '९१ में कुल सं०मातृभाषी संख्या में वृद्धि हुई किन्तु इन्हीं प्रदेशों के चारों गणना वर्षो में रहे जिलों में संख्या घटी हैं

क्र०	प्रदेश	प्रदेश की सं०मा०भा० संख्या		३६ जिलों से सम्बंधित जिलों की सं०मा०भा० संख्या		प्रदेश के शेष सं०मा०भा जिलों की सं०मा०भा० संख्या	
		वर्ष	वर्ष	वर्ष	वर्ष	वर्ष	वर्ष
		१९८१	१९९१	१९८१	१९९१	१९८१	१९९१
१	हरियाणा	१४८	५७५	८७	७८	६१	४९७
२	हिमाचल	७१	१६७	३०	२६	५१	१४१
३	केरल	७	३१	७	२	०	२९
४	राजस्थान	८५	४३३	३३	२१	५२	४१२

(ख) अधोलिखित तीन प्रदेशों में वहाँ प्रत्येक की कुल सं०मातृभाषी संख्या व चारों गणना वर्षो में रहे जिलों की कुल सं०मातृभाषी संख्या, १९८१ की अपेक्षा १९९१ में घटी है, किन्तु बिहार व तमिलनाडु के इतर शेष जिलों में सं०मातृभाषी संख्या बढ़ी है,

जबकि पंजाब में तीनों स्तरों पर (पूरे प्रदेश में, चारों गणना में रहे जिलों में व इतर शेष जिलों में) संख्या घटी है ।

क्रं०	प्रदेश	प्रदेश की सं०मा०भा० संख्या		देश के ३६ जिलों की श्रेणी के जिलों की इन प्रदेशों में सं०मा०भा संख्या		प्रदेश के शेष जिलों के सं०मा०भा० संख्या	
		वर्ष		वर्ष		वर्ष	
		१६८१	१६६१	१६८१	१६६१	१६८१	१६६१
१	बिहार	११७४	८०२	११२४	३०४	५०	४६८
२	तमिलनाडु	२४४	१६६	२००	११७	४४	५२
३	पंजाब	६१	२६	२३	१६	३८	१०

(ग) उनतालिस जिलों की श्रेणी के उत्तर–प्रदेश के जिलों में सं०मातृभाषी संख्या में दस गुना वृद्धि हुई है जब कि यहाँ के इतर शेष जिलों में उससे कहीं अधिक वृद्धि हुई है ।

८ इन उनतालिस जिलों से सम्बधित प्रदेशों के बारे में यह भी उल्लेखनीय है कि :

(क) इन उनतालिस जिलों में से उत्तर-प्रदेश के सम्बन्धित जिलों में १६८१ व १६६१ दोनों जनगणना वर्षो में ग्रामीण क्षेत्र में सं०मातृभाषी नहीं है ।

(ख) इन उनतालिस जिलों की श्रेणी के आन्ध, केरल व पंजाब के जिलों में १६८१ में ग्रामीण क्षेत्र में सं०मातृभाषी नहीं थे ।

जनगणना वर्ष वार ३६ जिलों में सं०मातृभाषी संख्या–समीक्षा

१६६१–१६७१:

उनतालिस जिलों के १६६१ के ५४८ सं०मातृभाषी बढ़कर १६७१ में ८५८ (१५६.५६%) हो गये। इनमें से २४ जिलों के २३५ सं०मातृभाषी १६७१ में बढ़कर ७४७ (५१२ की वृद्धि २१८.२६%) तथा १३ जिलों के ३०७ सं०मातृभाषी घटकर १०३ रह गये। अर्थात् २०२ की घटोत्तरी (६५.७८%) के फलस्वरूप शुद्ध (५१२–२०२) ३१० की वृद्धि हुई। दो जिलों शिमोगा व त्रिवेन्द्रम में दोनों वर्षों में क्रमशः दो व चार ही सं०मातृभाषी रहे।

घटोत्तरी के १३ जिले :

१ चार जिलों – हिसार में १६६१ के २२ सं०मातृभाषी घटकर १६७१ में मात्र एक, चम्पारण में ३५ के दो, सहारनपुर के ३५ के ६ और नरसिंहपुर में ६० के १३ रह गये, अर्थात् कुल १८२ सं०मातृभाषी घटकर २२ रह गये।

२ पाँच जिलों में से उज्जैन व गोदावरी–पूर्व में दो व तीन से एक–एक तथा सिंहभूमि में १२ से २, चिकमंगलूर में १० से ३, सलेम में १३ से ६ अर्थात् १६६१ के कुल ४० से घटकर १६७१ में १३ सं०मातृभाषी रह गये।

३ जनगणना वर्ष १६६१ की अपेक्षा १६७१ में चार जिलों – शिमला में २७ से १८, मद्रास में ३१ से २८, हैदराबाद में १८ से १६ तथा राजगढ़ में ६ से ८ सं०मातृभाषी रह गये। अर्थात् ८५ घटकर ७० सं०मातृभाषी रह गये।

बढ़ोतरी के २४ जिले :

१ केवल एक–एक सं०मातृभाषी के १६६१ के सात जिलों में से करनाल व नासिक में ६–६, उस्मानाबाद में ११, बीकानेर में १६,

उत्तरी–अकार्ट में २७, सारण में २६ व गया में ८५ (कुल १८०) सं०मातृभाषी १६७१ में अंकित हुए। अर्थात् १६६१ के ७ स्थान पर १८० सं०मातृभाषी अंकित हुए।

२ दो–दो सं०मातृभाषी के १६६१ में तीन जिले – दरभंगा, हसन व अजमेर थे। वहाँ १६७१ में क्रमशः ८,५, व ३ अंकित हुए। अर्थात् छः सं०मातृभाषियों के स्थान पर १६ अंकित हैं।

३ जनगणना वर्ष १६६१ में वाराणसी में तीन सं०मातृभाषी थे, वहां १६७१ में १८ अंकित हुए।

४ जनगणना वर्ष १६६१ में चार–चार सं०मातृभाषी वाले पांच जिलों में १६७१ में अमृतसर में ५२, बंगलौर में ४४, अम्बाला में २६, टुमकुर में १६, तथा होशियारपुर में ७ अंकित हुए। अर्थात् कुल २० सं०मातृभाषियों के स्थान पर १४८ अंकित हुए।

५ शेष आठ जिलों में सं०मातृभाषी संख्या अधोलिखित रही –

	जनगणना वर्ष				जनगणना वर्ष		
क्रमांक	जिले	१६६१	१६७१	क्रमांक	जिले	१६६१	१६७१
१	दिल्ली	६४	६४	५	कांगड़ा	१८	२४
२	धनबाद	२८	६८	६	त्रिचुरापल्ली	१८	३२
३	बम्बई	२५	४४	७	थन्जवुर	१७	५१
४	कोयम्बटूर	२१	२६	८	शोलापुर	८	१३
					योग	१६६	३८५

इस प्रकार इन चौबीस जिलों में १६६१ की अपेक्षा १६७१ की संस्कृत मातृभाषा संख्या में (७४७–२३५) ५१२ की शुद्ध वृद्धि हुई है।

१९७१--८१ :

इन उनतालीस जिलों में १९७१ के ८५८ सं०मातृभाषी, १९८१ में २०५७ (ढाई गुना वृद्धि) हो गये। इनमें से २२ जिलों के २२७ सं०मातृभाषी बढ़कर १७९६ तथा पन्द्रह जिलों के ६१४ घट कर २७१ हो गये, जो १९६१ के ३२२ से भी कम है। इन उनतालीस जिलों में ३४३ की घटोत्तरी (५६.८६%) व १५४२ की बढ़ोत्तरी (४१४.९८%) होने से, शुद्ध ११९६ सं०मातृभाषियों की बढ़ोत्तरी हुई। दो जिलों, उज्जैन व बीकानेर में कोई अन्तर न हुआ जो क्रमशः १ व १६ बने रहे।

घटोत्तरी के पन्द्रह जिले :

१ सर्वाधिक घटोत्तरी, धनबाद (६८ से २) में तथा न्यूनतम घटोत्तरी दिल्ली (६४ से ६३) में हुई।

२ उत्तरी–अर्काट, हैदराबाद तथा बम्बई जहाँ १९७१ में क्रमशः २७, १६, व ४४ सं०मातृभाषी थे, वहाँ १९८१ में क्रमशः ३, ४ व ७ रह गये।

३ नरसिंहपुर, टुमकुर व शिमला में १९७१ में क्रमशः १३, १६, व १८ सं०मातृभाषी थे किन्तु १९८१ में प्रत्येक में ८–८ अंकित हुए।

४ वाराणसी, थञ्जवुर, कोयम्बटूर व अमृतसर में १९७१ में क्रमशः १८, ५१, २६, ५२ सं०मातृभाषी थे जहां १९८१ में क्रमशः ११, १२, १३ व १४ ही रह गये।

५ सारण व कांगड़ा जहाँ १९७१ में क्रमशः २६ व २८ सं०मातृभाषी थे, वहाँ १९८१ में २२–२२ रह गये।

६ गया में '७१ की जनगणना के ८५ के स्थान पर ४४ सं०मातृभाषी '८१ में रह गये।

इस प्रकार इन १५ जिलों के १९७१ के ६१४ सं०मातृभाषी १९८१ में घटकर २७१ रह गये। इन जिलों में १९६१ में ३२२ सं०मातृभाषी थे।

बढ़ोत्तरी के बाइस जिले :

१ जनगणना १९७१ की अपेक्षा १९८१ में सर्वाधिक सं०मातृभाषी–संख्या वृद्धि चम्पारण (२ से ६६४), सहारनपुर (६ से ७६), दरभंगा (८ से ५३), मद्रास (२८ से १११) व बंगलौर (४४ से २०५) में हुई।

शेष जिलों में :

२ गोदावरी व हिसार में १ से ७,

३ शिमोगा व सिंहभूमि में २–२ से क्रमशः ४७ व ६,

४ चिकमंगलूर व अजमेर में ३–३ से ७–७,

५ त्रिवेन्द्रम, हसन व करनाल में क्रमशः ४, ५ व ६ से ७, ८ व ९,

६ सलेम व नासिक में ६–६ से क्रमशः १७ व २३,

७ होशियारपुर में ७ से ९,

८ राजगढ़ में ८ से ११,

९ उस्मानाबाद में ११ से १८ व शोलापुर में १३ से १९,

१० अम्बाला में २९ से ७१ व त्रिचुरापल्ली में ३२ से ४४ सं०मातृभाषी हो गये।

इस प्रकार इन २२ जिलों में सं०मातृभाषी २२७ से बढ़कर १७६६ हो गये। बढ़ोत्तरी के इन २२ जिलों में १९६१ में २२३ सं०मातृभाषी थे। अर्थात् १९७१ में इनमें मात्र चार सं०मातृभाषियों की वृद्धि हुई थी, जबकि १९८१ में विशेष वृद्धि १७६६ (१५४६ की) हुई।

१९८१–९१

१ समान मातृभाषी संख्या के जिले

जिला	सं.मातृभाषी संख्या जणगणना वर्षवार			
	१९६१	१९७१	१९८१	१९९१
शिमला	२७	१८	८	८
होशियारपुर	४	७	९	९

दो जिलों, शिमला व होशियारपुर में दोनों वर्षों (१६८१ व १६६१) में क्रमशः ८–८ व ६–६ सं० मातृभाषी यथावत रहे । यद्यपि शिमला में १६६१ व १६७१ की अपेक्षा आगे के वर्षों में कम रहे किन्तु होशियारपुर में १६६१ (४) व १६७१ (७) की अपेक्षा अधिक रहे ।

२. घटोत्तरी के १६ जिले :

(क) क्रं०	जिला	संस्कृत मातृ भाषी संख्या वर्ष १६८१–१६६१	क्रं०	जिला	संस्कृत मातृ भाषी संख्या वर्ष १६८१–१६६१
१	चम्पारण	६६४ से १८६	२	बंगलौर	२०५ से १००
३	मद्रास	१११ से ४०	४	सहारनपुर	७६ से ३३
५	अम्बाला	७१ से २२	६	त्रिचुरापल्ली	४४ से १४
७	गया	४४ से २८	८	नासिक	२३ से ११
६	सारण	२२ से ३	१०	सलेम	१७ से १२
११	बीकानेर	१६ से २	१२	अमृतसर	१४ से ७
१३	कोयम्बटूर	१३ से १२	१४	सिंहभूमि	६ से १
१५	चिकमंगलूर	७ से ४	१६	त्रिवेन्द्रम	७ से २

(ख) जनगणना–वर्ष १६६१ में १६८१ से कम होने के साथ ही १६६१ की संख्या के बराबर संस्कृत–मातृभाषी

क्रमांक		जनगणना वर्षवार सं०मातृभाषी (संख्या)			
		१६६१	१६७१	१६८१	१६६१
१७	कांगड़ा	१८	२४	२२	१८
१८	हसन	२	५	८	२
१६	उस्मानाबाद	१	११	१८	१

इस प्रकार शिमला को मिलाकर इन २० जिलों के वर्ष १९८१ के १७२६ सं०मातृभाषी, वर्ष १९९१ में घटकर ५०६ रह गये ।

३. बढ़ोत्तरी के १६ जिले :

जनगणना १९८१ की अपेक्षा १९९१ में इन ३६ जिलों में से १६ में सं०मातृभाषी ३०८ से बढ़कर १७६० हो गये ।

(क). निम्नलिखित पाँच जिलों में नियमित वृद्धि हुई :

क्रमांक	जिला	जनगणना वर्ष			
		१९६१	१९७१	१९८१	१९९१
		संस्कृत-मातृभाषियों की संख्या			
१	करनाल	१	६	६	४०
२	अजमेर	२	३	१७	१६
३	दरभंगा	२	८	५३	६८
४	शिमोगा	२	२	४७	३८२
५	शोलापुर	८	१३	१६	४२

इनमें से शिमोगा में १९६१व १९७१ के दो–दो सं०मातृभाषी के स्थान पर १९८१ व १९९१ में क्रमशः ४७ व ३८२ की एकाएक वृद्धि हुई है ।

(ख) निम्नलिखित ७ स्थानों पर चारों गणना वर्षों में सर्वाधिक वृद्धि १९९१ में है यद्यपि बीच के वर्षों में संख्या घटी भी है ।

क्रमांक	जिला	जनगणना वर्ष			
		१९६१	१९७१	१९८१	१९९१
		संस्कृत मातृभाषियों की संख्या			
१	उज्जैन	२	१	१	५१
२	गोदावरी	३	१	७	२८

३	वाराणसी	३	१८	११	३५३
४	टुमकुर	४	१६	८	३१
५	राजगढ	६	८	११	२६
६	हैदराबाद	१८	१६	४	२७
७	दिल्ली	६४	६४	६३	५८७

सर्वाधिक अचानक वृद्धि उज्जैन, वाराणसी व दिल्ली में हैं ।

(ग) शेष सात जिलों में से :

निम्नलिखित (१) व (२) के छः जिलों के १६८१ के ३६ सं०मातृभाषी १६६१ में बढ़कर ११७ हो गये, किन्तु पूर्व वर्षों की अपेक्षा कम रहे :–

(१) चार जिलों में '७१ व '८१ के विपरीत १६६१ में सं०मातृभाषी संख्या

जनगणना वर्ष	धनबाद	बम्बई	थञ्जवुर	उत्तरी अर्काट
१६७१	६८	४४	५१	२७
१६६१	१५	३५	३१	८
१६८१	२	७	१२	३

(२)दो जिलों, हिसार व नरसिंहपुर में १६६१ में क्रमशः २२ व ६० सं० मातृभाषी के स्थान पर १६ व १२ ही १६६१ में है ।

जिला	जनगणना वर्ष			
	१६६१	१६७१	१६८१	१६६१
हिसार	२२	१	७	१६
नरसिंहपुर	६०	१३	८	१२

(३) होशियारपुर में १६८१ व १६६१ में बराबर–बराबर (६--६) संस्कृत मातृभाषी हैं, किन्तु पूर्व वर्ष से अधिक होने की कारण वृद्धि की सूची में रखा गया है।

जनगणना वर्ष १६८१ की अपेक्षा १६६१ में उनतालिस जिलों में

संस्कृत–मातृभाषी–संख्या में हुई घटोत्तरी व बढ़ोत्तरी को देखते हुए २८२ की शुद्ध बढ़ोत्तरी हुई है।

इस प्रकार तीन जनगणना वर्षो १९७१, १९८१, १९९१ में संस्कृत–मातृभाषी संख्या में शुद्ध वृद्धि क्रमशः ३१०, ११९९ तथा २८२ हुई। पूर्व जनगणना वर्ष की अपेक्षा वर्ष १९७१ में २४ जिलों में, १९८१ में २२ जिलों में तथा १९९१ में १९ जिलों में संस्कृत–मातृभाषी–संख्या में वृद्धि हुई है किन्तु गणना–वर्ष–वार ऐसे जिलों की संख्या कम होती गयी है। यह भी स्मरणीय है कि गणना–वर्ष १९८१ में ११९९ की शुद्ध वृद्धि, चम्पारण में २ से ६६४, सहारनपुर में ६ से ७६, दरभंगा में ८ से ५३, मद्रास में २८ से १११, तथा बंगलौर में ४४ से २०५ की वृद्धि के फलस्वरूप है।

चारों जनगणना–वर्षो के इन उनतालीस जिलों के वर्षवार विश्लेषण को समग्र रूप से देखने से संस्कृत–मातृभाषी संख्या में तेरह जिलों में बढ़ोत्तरी व छब्बीस जिलों में घटोत्तरी की प्रवृति प्रतीत होती है।

समग्र रूप से बढ़ोत्तरी के जिले :

१ जैसा पूर्व में अंकित किया जा चुका है, करनाल, दरभंगा, अजमेर व शोलापुर, चार जिलों में संस्कृत–मातृभाषी–संख्या में अपेक्षाकृत सहज सामान्य वृद्धि प्रतीत होती है।

२ शिमोगा में (२–३–४७–३८२) औचक ही वृद्धि है।

३ सात जिलों दिल्ली, वाराणसी, उज्जैन, टुमकुर, पू० गोदावरी, हैदराबाद व राजगढ़ (म०प्र०) में १९९१ में यद्यपि वृद्धि है किन्तु बीच के किसी वर्ष में घटोत्तरी भी है।

४ होशियारपुर में यद्यपि १९९१ में कोई वृद्धि नहीं हुई है अपितु १९८१ के बराबर (६–६ ही) संस्कृत मातृभाषी हैं किन्तु १९६१ व १९७१ में क्रमशः ४ व ७ संस्कृत–मातृभाषी होने के कारण यहाँ वृद्धि स्वरूप मान रहे हैं।

इस प्रकार ३६ जिलों में से केवल तिहाई (१३) जिलों में सं०मातृभाषी संख्या में वृद्धि हुई है।

समग्र रूप में घटोत्तरी के जिलेः

उनतालीस जिलों में से शेष, दो तिहाई (२६) जिलों में संस्कृत–मातृभाषियों की संख्या, पूर्व के तीन गणना वर्षो में से, एक–दो या तीनों वर्षो की अपेक्षा १९९१ में कम रही है। इनका विवरण नीचे दिया जा रहा है :–

१ हसन, उस्मानाबाद और कांगड़ा की १९९१ की संस्कृत–मातृभाषी–संख्या १९६१ के बराबर है जबकि बीच के जनगणना वर्षो में कहीं अधिक थी।

२ ग्यारह जिलों–नरसिंहपुर (६०–१२), सहारनपुर (३५–३३), धनबाद (२८–१५), शिमला (२७–८), हिसार (२२–१६), कोयम्बटूर (२१–१२), त्रिचुरापल्ली (१८–१४), सलेम(१३–१२), सिंहभूम (१२–१), त्रिवेन्द्रम (४–२), चिकमंगलूर (१०–४) में १९९१ में संस्कृत–मातृभाषी–संख्या १९६१ से भी कम है, जब कि इन जिलों में १९८१ से १९९१ में ही जनसंख्या वृद्धि क्रमशः २०.७६, २६.७६, २६.४६, २०.८४, २३.८४, १४.६५, १४.५५, १३.२१, २०.५८ व ११.५७ प्रतिशत हुई है ।

३. सात जिलों – गया (८५–२८), सारण (२६–३), बम्बई (४४–३५), अमृतसर (५२–७), बीकानेर (१६–२) थञ्जवुर (५१–३१), उत्तरी–अकार्ट (२७–८) में १९९१ में संस्कृत–मातृभाषी–संख्या, १९७१ से कम है जब कि इन जिलों में १९८१ से १९९१ में ही जनसंख्या–वृद्धि क्रमशः २३.६२, २२.४४, २०.४१, १४.४४, १४.७०, ११.५१, १५.१४ प्रतिशत हुई है ।

४. पाँच जिलों – मद्रास (१११–४४), अम्बाला (७१–२२) नासिक (२३–११),

चम्पारन (६६४–१८६), बंगलौर (२०५–१००), में १६६१ में संस्कृत मातृभाषी–संख्या १६८१ से कम है, जब कि यहाँ इसी अवधि में जनसंख्या वृद्धि क्रमशः ३०.४३, २८.७३, १८.३०, ३८.४६ व १७.२४ प्रतिशत हुई है ।

जनगणना–वर्ष १६८१ की अपेक्षा १६६१ में कम संस्कृत–मातृभाषी के कुल १६ जिले इन्हीं में सम्मिलित हैं ।

जनगणना वर्षवार उनातालीस जिलों की संस्कृत–मातृभाषी–संख्या के इस सब विश्लेषण से ज्ञात होता है कि :–

१. जनगणना–वर्षवार संस्कृत–मातृभाषी–संख्या में घटोत्तरी के जिलों की संख्या में वृद्धि (१३,१५ व १६)तथा बढ़ोत्तरी के जिलों की संख्या में कमी (२४, २२ व १६), होती गई है ।

२. पूर्व के तीन जनगणना वर्षों की अपेक्षा १६६१ में १३ जिलों में संस्कृत मातृभाषियों की संख्या में बढ़ोत्तरी तथा २६ में घटोत्तरी हुई है । देश के इन ३६ जिलों की चारों गणना वर्षों की संस्कृत–मातृभाषी–संख्या (५४८, ८५८, २०५७, २२८६) में १६६१ में न्यूनतम (२३२) वृद्धि, इन २६ जिलों में संस्कृत–मातृभाषी–संख्या में हुई कमी के कारण ही है।

३. चार जिलों (करनाल, अजमेर, दरभंगा, शोलापुर) में नियमित वृद्धि, चार जिलों (शिमोगा, वाराणसी, उज्जैन व दिल्ली) में औचक वृद्धि तथा चार अन्य जिलों (पूर्वी–गोदावरी, टुंकुर, राजगढ़ व हैदराबाद) में अटक–अटक कर वृद्धि एवं होशियारपुर को इसी श्रेणी में ही मान लेने से, कुल १३ जिलों (३३ प्रतिशत जिलों) में वृद्धि हुई है ।

४. जनगणना–वर्ष १६६१ में १६६१ से कम संस्कृत–मातृभाषी–संख्या के ग्यारह जिले और १६७१ व १६८१ से कम संख्या के क्रमशः सात व पाँच जिले, कुल मिलाकर २३ जिलों के साथ ही १६६१ व १६६१ में बराबर संख्या वाले तीन जिलों सहित छब्बीस (जिसमें १६८१ की अपेक्षा १६६१ में कम सं०मातृभाषी के १६ जिले भी सम्मिलित है) जिलों (६६ प्रतिशत) में संस्कृत–मातृभाषी–संख्या में कमी हुई है ।

५. देश के इन उनतालीस जिलों की स०मातृभाषी संख्या में पूर्व जनगणना वर्ष की अपेक्षा अगले वर्ष में शुद्ध वृद्धि १६७१ में ३१०, व १६८१ में ११६६ को देखते हुए १६६१ में मात्र २३२ की वृद्धि भी यही कमी इंगित करती है ।

इन उनतालीस जिलों में जनगणना वर्ष १६६१ में हुई जनसंख्या की वृद्धि की दर से १६८१ की सं०मातृभाषी संख्या के आधार पर अपेक्षित वृद्धि का आगणन करने से ज्ञात होता है कि :–

१. जनगणना–वर्ष १६६१ में इन उनतालीस जिलो में हुई जिलोंवार जनसंख्या–वृद्धि की दर से, १६८१ के २०५७ सं०मातृभाषी, १६६१ में २५४१ हो जाने चाहिए, जो २२८६ ही है, अर्थात् ३५२ (१.५ प्रतिशत) की कमी हुई है ।

२. जिलों में हुई जनसंख्या–वृद्धि के विपरीत सत्रह जिलों में संस्कृत –मातृभाषी चार गुना (३६५.६६–१७५२) अधिक बढ़े हैं किन्तु बाइस जिलों में घटकर चौथाई (२१३५.२७–५३७) रह गये है ।

३. दरभंगा (६६.५०–६८) तथा अजमेर (२०.५०–१६) में १६६१ की संस्कृत– मातृभाषी–संख्या, वहाँ की जनसंख्या वृद्धि के बहुत कुछ अनुरूप है ।

४. सर्वाधिक संस्कृत–मातृभाषी–संख्या वृद्धि तो दिल्ली, शिमोगा और वाराणसी में हुई है किन्तु जनसंख्या वृद्धि की दर की अपेक्षा अधिक वृद्धि में सर्वाधिक प्रतिशत वृद्धि उज्जैन (४०१२.६०%), वाराणसी (२३४४%) तथा शिमोगा (६०४.७६%) में अंकित हुई है

५. संस्कृत–मातृभाषी–संख्या के अनुसार यद्यपि सर्वाधिक कमी चम्पारन, बंगलौर व मद्रास में हैं, किन्तु प्रतिशत के अनुसार सर्वाधिक कमी उस्मानाबाद (६५.५०%), बीकानेर (६१–२२%), तथा सिंहभूमि में (६०.४७%) है ।

इस प्रकार १६८१–१६६१ के दस वर्षो में जनसख्या वृद्धि की दर से देखने पर देश के इन उनतालीस जिलों में इस अवधि में सं०–मातृभाषी संख्या में वस्तुतः कमी ही हुई है ।

विहंगम दृष्टि से उनतालीस जिलों में पृथक्–पृथक् जनगणना वर्षो में गत पचास वर्षो में यद्यपि प्रत्यक्षतः बढ़ोत्तरी प्रतीत होती है, किन्तु आकड़ों के विश्लेषण से वहाँ सं०मातृभाषियों की समग्र स्थिति व इस अवधि में वहीं हुई जनसंख्या वृद्धि को देखते हुए, वस्तुतः घटोत्तरी ही स्पष्ट होती है ।

संस्कृत–मातृभाषी–विहीन जिले

देश के ४४८ जिलों में से ३२८ में सं०मातृभाषी विगत चार जनगणना में से कम से कम एक बार अवश्य अंकित हैं । शेष १२० जिलों में सं०मातृभाषी किसी भी जनगणना में अंकित नहीं है । इस प्रकार देश के २६.७० प्रतिशत जिले सं०मातृभाषी–विहीन हैं ।

प्रदेशवार जिलों की कुल संख्या में से संस्कृत–मातृभाषी–विहीन जिलों की संख्या व प्रतिशत का विवरण, सं०मातृभाषियों के क्षेत्रीय आच्छादन का अनुमान देता है । चार जनगणना वर्षो में से एक वर्ष में भी सं०मा०भा० युक्त ३२८ जिलों के प्रदेशों को सं०मातृभाषी आच्छादन के आधार पर तीन वर्गो में बांटा जा सकता है :–

१. पंजाब व हिमांचल प्रदेश का प्रत्येक जिला कम से कम एक जनगणना में सं०मातृभाषी युक्त रहा है किन्तु १६६१ की जनगणना में पंजाब के कुल बारह जिलों में से छः जिले – लुधियाना, पटियाला, गुरदासपुर, फरीदकोट, संगरूर और कपूरथला; तथा हिमांचल–प्रदेश के कुल १२ जिलों में से तीन जिले – सोलन, लाहुलस्पिति और महासू सं०मातृभाषी विहीन हो गये हैं ।

२. हरियाणा के १६ जिलों तथा कर्नाटक के २० जिलों में से केवल एक–एक जिला, क्रमशः पानीपत और बीदर, चारों गणना वर्षों में सं०मातृभाषी विहीन रहे हैं। इन दो प्रदेशो में संस्कृत मातृभाषी विहीन जिलों का प्रतिशत क्रमशः ६.२० तथा ५.०० देश में सबसे कम है ।

३. शेष प्रदेशों के कुल जिलों में से संस्कृत मातृभाषी विहीन जिलों का प्रतिशत :

क– १० से १५ प्रतिशत के बीच के चार प्रदेश हैं । महाराष्ट्र (३–३०) १० प्रतिशत, मध्य–प्रदेश और राजस्थान (५–४५,३–२७) ११.१ प्रतिशत और उत्तर प्रदेश (६–६३) १४.२ प्रतिशत ।

ख– २० से ३० प्रतिशत के बीच पाँच प्रदेश हैं । आन्ध्र व गुजरात में (५–२३, ४–१६) २१.७ प्रतिशत व २१ प्रतिशत, उड़ीसा में (३–१३) २३.३ प्रतिशत, तमिलनाडु में (६–२२), २८.२ प्रतिशत, बिहार में (१३–४४) २६.५ प्रतिशत

ग– ४० प्रतिशत से ४५ प्रतिशत के बीच–केरल में (६–१४) ४२.०८ प्रतिशत व बंगाल में (७–१७) ४१.१ प्रतिशत है ।

घ– ७८ प्रतिशत से ८७ प्रतिशत के बीच–आसाम (२०–२३) ८६.६ प्रतिशत, अरूणाचल प्रदेश (६–११) ८१.८६ प्रतिशत, मेघालय (४–५) ८० प्रतिशत व जम्मू कश्मीर में (३–१४) ७८.५ प्रतिशत।

(दिल्ली, चण्डीगढ़ और गोवा लगभग एक ही इकाई होने के कारण उसी रूप में शत–प्रतिशत है) ।

प्रदेशवार कुल जिलों में से सं०मातृभाषी जिलों की संख्या के आधार पर आच्छादन के ऊपर के वर्गीकरण से स्पष्ट है कि :–

१ संस्कृत मातृभाषी जिलों के अपेक्षाकृत धनीभूत – आच्छादित–भौगोलिक–क्षेत्र के प्रदेश – हिमांचल, हरियाणा, पंजाब व कर्नाटक हैं ।

२. महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, राज्यस्थान व उत्तर–प्रदेश, मध्यम श्रेणी के घनत्व के क्षेत्र है ।

३. न्यूनतम आच्छादित प्रदेशों में केरल व बंगाल के साथ ही बिहार, तमिलनाडु, उड़ीसा, आन्ध्र व गुजरात भी हैं ।

४. देश के सीमान्त क्षेत्र – पूर्वोत्तर में आसाम, मेघालय व अरूणाचल –प्रदेश तथा पश्चिमोत्तर में जम्मू–कश्मीर –में सर्वाधिक स०मातृभाषी विहीन जिले हैं । (८६.६ प्रतिशत से ७८.५ प्रतिशत तक)

संस्कृत–मातृभाषा को समाप्त होने से बचाने का प्रयास अपेक्षित :

१. इन सं०मातृभाषी–विहीन जिलों में संस्कृत–भाषियों को ढूँढने, जागृत करने, आश्वस्त करने का वातावरण तैयार किया जाना विशेष रूप से अपेक्षित है ।

२. संस्कृत के मातृभाषी स्वरूप व उसके भाषियों को समाप्त होने से बचाने के लिए भौगोलिक इकाई स्वरूप हिमांचल, हरियाणा, पंजाब तथा जम्मू–कश्मीर, जो एक समय संस्कृत का विशेष क्षेत्र था और अब जहाँ संस्कृत और उसके पोषक व प्रशंसक परिस्थितिवश अंतिम सांसें गिन रहे हैं, के पारस्परिक नैकट्य के कारण भी यहाँ प्रथमतः संरक्षण का प्रयास किया जा सकता है ।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि पंजाब व हिमाचल–प्रदेश में अरबी–मातृभाषी क्रमशः ६३ और ४८६ तथा संस्कृत–मातृभाषी क्रमशः २६ और १६७ हैं, किन्तु हरियाणा में ५७५ संस्कृत–मातृभाषी तथा ४६ अरबी मातृभाषी हैं ।

यह आंकड़े स०मातृभाषियों में परिस्थितिजन्य आत्म–संरक्षण की प्राकृतिक–स्वाभाविक चित्तवृत्ति का जागृत होना इंगित करते हैं ।

जिले जहाँ संस्कृत—मातृभाषी नहीं रहे

देश के १५ प्रदेशों के १२१ जिलों में २५४४ सं०मातृभाषी १६६१ की जनगणना में थे। इन १२१ जिलों मे से १२ जिलों के ६२ सं०मातृभाषी, इसके बाद की जनगणना में अंकित नहीं हैं । इन ६२ में से ४३ तो केवल उत्तर प्रदेश के पाँच जिलों के हैं। उत्तर-प्रदेश के पाँच जिलों में से तीन जिलों हमीरपुर (२०), जौनपुर और बलिया के (१०-१०) ही ४० सं०मातृभाषी हैं। क्रमानुसार शेष जिलों लाहुलस्पिति (८), श्रीनगर (३), मोरैना, बुलन्दशहर, वीरभूमि व दार्जिलिंग (प्रत्येक २-२), वर्धा, चित्तौड़गढ़ व सुल्तानपुर (प्रत्येक एक-एक) के सं०मातृभाषी अगली किसी जनगणना में नहीं हैं।

जनगणना वर्ष १६७१ के ११ प्रदेशों के बीस जिलों के २६२ सं०मातृभाषी बाद के गणना-वर्षो में अंकित नहीं हैं जिनमें से सर्वाधिक संख्या पश्चिम-बंगाल के दीनाजपुर (१४६) की और न्यूनतम वर्द्धवान (१) जिलों की है। बिहार प्रदेश तथा वहाँ का सहरसा जिला, जो दोनों ही १६७१ में देश में दूसरे स्थान पर थे, में क्रमशः ४२ व ३२ सं०मातृभाषी थे। बिहार के इस वर्ग के दो अन्य जिले सन्थाल परगना (२) और शाहाबाद (६) हैं। सं०मातृभाषी विहीन हुए इन २० जिलों में से गुजरात के चार जिलों महेशना (२), बलसाढ़, सुरेन्द्र नगर, गाँधी नगर (प्रत्येक एक-एक) की संख्या सर्वाधिक है किन्तु इनके सं०मातृभाषियों की कुल संख्या उड़ीसा के एक मात्र ऐसे जिले कालाहांडी (७) से कम ही है। आन्ध्र (के दो जिलों वारंगल व पश्चिम-गोदावरी क्रमशः ६ व ५) व उत्तर-प्रदेश के दो जिलों (चमोली व आगरा के एक-एक) में सं०मातृभाषी आगे की जनगणना वर्षो में नहीं रहे। कर्नाटक (कुर्ग-१), केरल (क्विलोन-२), राजस्थान (भरतपुर-२) , तमिलनाडु (रामनाथपुरम्-३), हिमांचल-प्रदेश (महासू-४), उड़ीसा (कालाहांडी-७) का एक-एक जिला १६७१ की बाद की गणना में नहीं है।

देश के ११ प्रदेशों के १५ जिलों में १९८१ की जनगणना में ११८ सं०मातृभाषी थे जहाँ १९९१ की जनगणना में नहीं हैं। इनमें से दो जिलों बुलडाना (महाराष्ट्र) तथा बीजापुर (कर्नाटक) में सर्वाधिक (क्रमशः २२ व २१) सं०मातृभाषी थे। इन पन्द्रह जिलों में से सर्वाधिक जिले (३) महाराष्ट्र के हैं। महाराष्ट्र के शेष दो जिलों, वीड और रायगढ़ में क्रमशः १३ व ७ सं०मातृभाषी थे। दो प्रदेशों कर्नाटक (बीजापुर-२१, रायचूर-३) तथा जम्मू-कश्मीर (ऊधमपुर-४, पुंछ-१) के दो-दो जिले और पश्चिमी बंगाल (हुगली-१२), उडीसा (गंजाम-१२), पंजाब (फरीदकोट-१०), आन्ध्र (निल्लोर-४), राजस्थान (सवाई माधवपुर-४), हरियाणा (महेन्द्रगढ़-३), बिहार (पालूम-१) व हिमांचल-प्रदेश (सोलन-१) का एक-एक जिला १९९१ की जनगणना में नहीं हैं।

पाँच प्रदेशों के ग्यारह जिले जहाँ १९७१ व १९६१ दोनों जनगणना में सं०मातृभाषी थे, वहाँ १९८१ व १९९१ में नहीं हैं। इन ग्यारह में से चार जिले, आजमगढ़-मऊ, अल्मोड़ा, इटावा और झाँसी (सभी उत्तर प्रदेश के) जहाँ क्रमशः १९६१ में ७, २, १६ व १२ (कुल ३७) तथा १९७१ में १,३,२ व ४ (कुल १०) सं०मातृभाषी थे उसके बाद की गणना में अंकित नहीं हैं। पाण्डिचेरी का एक जिला कारिकल (६-३) बाद के वर्षो में सं०मातृभाषी युक्त नहीं हैं। मध्य-प्रदेश (रायगढ़ १२०-१, जबलपुर ३-७), बिहार (भागलपुर २२-२, पूर्णिया १-२) तथा पंजाब (संगरुर ७-१ व कपूरथला ३-१३) प्रत्येक के दो-दो जिले १९८१ व १९९१ की गणना में नहीं है। इन ग्यारह जिलों में दो गणना-वर्षो में क्रमशः कुल १९६-३६ सं०मातृभाषी थे। मध्य-प्रदेश का पन्ना व पंजाब का गुरदासपुर जिला जहाँ १९६१ व १९८१ में क्रमशः १-८ व ३-७ सं०मातृभाषी थे, वहाँ १९७१ व १९९१ में नहीं हैं।

विशेष रूप से उल्लेखनीय वह पाँच जिले हैं जहाँ १९६१, १९७१ व १९८१ की जनगणना में सं०मातृभाषी रहे हैं किन्तु १९९१ की गणना में नही

हैं। इनमें से पंजाब के दो जिले लुधियाना और पटियाला क्रमशः तीन गणना वर्षों में १३-२-१ व ३-२-५ सं०मातृभाषी संख्या की घटती व वक्रीय गति इंगित करते हैं। तमिलनाडु के तीन जिले नीलगिरि (१-२-४), मदुरई (४-१८-१५) व तिरूनलवेली (६-८-६) १९६१ में अचानक सं०मातृभाषी विहीन हो गये है। इन पाँचों जिलों में १९६१ १९७१ व १९८१ में क्रमशः कुल ३०, २८, ३१ सं०मातृभाषी थे।

इस प्रकार केवल एक जनगणना वर्ष में अंकित ४७ जिलों (वर्ष १९६१ के १२, १९७१ के २० तथा १९८१ के १५) के (६२, २६२, ११८) ४४२ सं०मातृभाषी, तथा किन्हीं दो गणना वर्षों में रहे १३ (११+२) जिलों के (१९६१-१९७१ में १९६-३६ तथा १९६१-१९८१ में ४-१५) कुल २५७ सं०मातृभाषी तथा पाँच जिले जहाँ तीन जनगणना में (३०-२८-३१) ८९ सं०मातृभाषी थे, के कुल ६५ जिलों के कुल ७८८ सं०मातृभाषी १९९१ की गणना में नहीं है जिन्हें ढूँढने व बचाने के प्रयास किये जा सकते हैं।

संस्कृत–मातृभाषियों में स्त्री–पुरूष

मातृभाषा शब्द ही माता–स्त्री–शक्ति के इसके नैकट्य का बोध कराता है। सं०मातृभाषियों की संख्या में स्त्रियों का अनुपात समुदाय के भाषाई स्वास्थ्य को इंगित करता है। देश में सं०मातृभाषियों में महिलाओं का प्रतिशत १६६१ की जनगणनाा में २७.३२, १६७१ में ३२.६५, १६८१ में ४४.६१ तथा १६६१ में ४४.७६ रहा। जनगणना वर्षवार सं०मातृभाषी महिलाओं का क्रमिक बढ़ता हुआ प्रतिशत अंश, समाज का स्वस्थ सकारात्मक भाषाई दृष्टिकोण इंगित करता है। प्रदेशवार स्थिति इस प्रकार है :–

क्रसं	राज्य	जनगणना वर्ष							
		१६६१		१६७१		१६८१		१६६१	
		पु०	स्त्री	पु०	स्त्री	पु०	स्त्री	पु०	स्त्री
१	आन्ध्र–प्रदेश	१३	१२	३२	१३	१५	११	११६	८०
२	बिहार	१०३	२६	२५६	६१	६३४	५४०	४४८	३५६
३	गुजरात	०६	६०	३४	०४	११	०५	५३	२८
४	हरियाणा	२३	०७	२७	१३	८८	६०	४७३	१०२
५	हिमांचल–प्रदेश	३६	१४	५७	२७	४१	४०	६६	६८
६	कर्नाटक	७६	४६	७२	३६	२६१	२४८	३८८	३०७
७	केरल	०४	०३	०४	०२	०३	०४	१७	१४
८	मध्य–प्रदेश	३७१	०३	७०	२१	४३	२७	३६४	३५६
६	महाराष्ट्र	४६	३६	१०३	५२	१५२	१२६	१५७	१२०
१०	राजस्थान	१८	१३	१०३	१२	५१	३४	३०२	१३१
११	तामिलनाडु	६२	५५	१५२	१०२	१३०	११४	६४	७५
१२	उत्तर–प्रदेश	६६४	३४८	२६१	२१७	६२	१५	२४८७५	१६६७२
१३	पश्चिमी–बंगाल	३	००	६२	७६	१५	७	२१	२
१४	पंजाब	२७	१४	७७	००	३२	२६	१५	११
१५	दिल्ली	४८	१६	५७	३७	५१	४२	४०४	१७८

इन आंकड़ों के उल्लेखनीय बिन्दु अधोलिखित हैं :–

१. पश्चिमी बंगाल में १९६१ मे तथा पंजाब में १९७१ में क्रमशः ३ व ७७ केवल पुरुष सं०मातृभाषी थे, कोई स्त्री नहीं थी । किन्तु १९९१ में पं० बंगाल में २१ पुरुष और २ स्त्री हैं । पंजाब में यद्यपि कुल सं०मा०भा० संख्या १९९१ में घट गई है किन्तु स्त्री–पुरुष अनुपात में (१५ पु० ११ स्त्री) सुधार हुआ है ।

२. गुजरात में १९६१ में स्त्री सं०मा०भा० अधिक (६–६०) थीं यद्यपि १९९१ में उनकी संख्या घट गई है, किन्तु स्त्री–पुरुष अनुपात में बहुत सुधार हुआ है ।

३. हिमाचल प्रदेश में १९८१ में (४१–४०) तथा आन्ध्र प्रदेश में १९६१ में (१३–१२) स्त्री–पुरुष सं०मा०भा० संख्या में अन्तर न्यूनतम था किन्तु १९९१ में दोनों प्रदेशों की (हिमाचल ९६–६८, आन्ध्र ११९–८०) सं०मा०भा० संख्या तथा उनमें स्त्री-पुरुष पारस्परिक अन्तर बढ़ गया है ।

केवल पुरूष सं०मातृभाषी के जिले :

१ देश के ३२६ सं०मातृभाषी जिलों में से कुल छाँछठ जिलों में वर्ष १९६१, '७१, '८१ व '९१ में क्रमशः १९६, ८२, ६ और १९३ केवल पुरूष संस्कृत–मातृभाषी ही अंकित हैं।

२ देश के सात जिलों–पूर्णिया (बिहार), दतिया, धार (मध्य प्रदेश), वर्धा, उस्मानाबाद (महाराष्ट्र), बूंदी (राजस्थान) तथा सुलतानपुर (उत्तर प्रदेश) में एक–एक, तथा चार जिलों–मुरैना (मध्य–प्रदेश), बुलन्दशहर (उत्तर-प्रदेश), बीरभूमि व दार्जिलिंग (पश्चिमी–बंगाल) में दो–दो, एवम् दो जिलों–जबलपुर (म०प्र०) व पाली (राजस्थान) में तीन–तीन, और दो जिलों–लाहुलस्पिति

(हिमांचल--प्रदेश) व होशंगाबाद (मध्य--प्रदेश) में आठ--आठ, तथा हमीरपुर (उत्तर--प्रदेश), भागलपुर (बिहार) व रायगढ़ (मध्यप्रदेश) में क्रमशः २२, २० व १२० केवल पुरूष संस्कृत--मातृभाषी ही १९६१ की जनगणना में अंकित थे। इन सब १८ जिलों में १९६१ की गणना में १९६ केवल पुरूष संस्कृतभाषी थे।

३ जनगणना वर्ष १९७१ के बारह जिलों--विशाखापत्तनम (आन्ध्र), सन्थाल परगना (बिहार), सूरत, सुरेन्द्र नगर व गांधी नगर (तीनों गुजरात), कुर्ग (कर्नाटक), शाजापुर, होशंगाबाद, रायगढ़ (तीनों मध्य--प्रदेश), चमोली व आगरा (दोनों उत्तर--प्रदेश) तथा वर्धमान (पश्चिमी--बंगाल) -- में प्रत्येक में एक--एक तथा पाँच जिलों-- भागलपुर व पूर्णिया (दोनों बिहार), महेशना (गुजरात), क्विलोन (केरल) व भरतपुर (राजस्थान) प्रत्येक में दो--दो केवल पुरूष संस्कृत--मातृभाषी थे। इसके अतिरिक्त रामनाथपुरम् (तमिलनाडु), पाली (राजस्थान), पश्चिमी गोदावरी (आन्ध्र) में क्रमशः तीन, चार व पांच तथा जबलपुर (म०प्र०), शाहाबाद व सहरसा (दोनों बिहार) में क्रमशः ७, ६व ३२ केवल पुरूष संस्कृत--मातृभाषी थे। इस प्रकार २३ जिलों में कुल मिलाकर ८२ केवल पुरूष संस्कृत--मातृभाषी थे।

४ देश में जनगणना वर्ष १९८१ में केवल पुरूष सं०मातृभाषी वाले सात जिलों--रायचूर (कर्नाटक) में तीन तथा शेष छः जिलों--पलामू, सूरत, सोलन, धार, उज्जैन व पुँछ में केवल एक--एक पुरूष सं०मातृभाषी ही था।

५ जनगणना वर्ष १९९१ में देश के ३५ जिलों में १९३ केवल पुरूष सं०मातृभाषी हैं। इन ३५ जिलों में से १९ जिलों--जालौर, जैसलमेर, बूँदी, बालाघाट, दतिया, सीढ़ी, कामरूप, तिनसुखिया,

डुमका, पूर्वी--चम्पारण, पलक्कड़, इडुक्की, तिरप, सूरत गदचितरौली, उस्मानाबाद, कोहिमा, उत्तरी--त्रिपुरा व पिथौरागढ़ में केवल एक--एक पुरूष सं०मातृभाषी है। रायसेन, होशंगाबाद व धार (सभी मध्य--प्रदेश), देवगढ़ व सिंहभूमि--पश्चिम (बिहार), विशाखापत्तनम (आन्ध्र), सिरसा (हरियाणा), फुलबनी (उड़ीसा) तथा झालवाड़ (राजस्थान) कुल नौ जिलों में प्रत्येक में दो--दो केवल पुरूष सं०मातृभाषी हैं। शाजापुर व झबुआ (मध्य-प्रदेश), यवतमल (महाराष्ट्र) तथा पाली (राजस्थान) इन चार जिलों में प्रत्येक में तीन--तीन केवल पुरूष सं०मातृभाषी हैं। शेष तीन जिले साबरकांठा (गुजराज), सिरोह व चुरू (राजस्थान) में क्रमशः ६, ४ व १०३ केवल पुरूष सं०मातृभाषी हैं।

केवल स्त्री संस्कृत भाषी के जिले :--

जनगणना वर्ष १९६१ में श्रीनगर (जम्मू--काश्मीर) में केवल स्त्री (३) सं०मा०भा० थीं । चित्तौड़गढ़ में केवल एक स्त्री ही थी । जालन्धर (पंजाब) में १९६१ में केवल दो तथा १९६१ में केवल एक स्त्री सं०मातृभाषी है । गुजरात के वालसाड़ में १९७१ में केवल एक स्त्री ही सं०मातृभाषी थी ।

चारों जनगणना वर्षो में सं०मातृभाषी युक्त रहे देश के उनतालिस जिलों में स्त्रियों से अधिक पुरूष का विवरण निम्नलिखित है :--

क्र०	जिला	जनगणना वर्ष							
		१९६१		१९७१		१९८१		१९९१	
		स्त्री	पु०	स्त्री	पु०	स्त्री	पु०	स्त्री	पु०
१	हैदराबाद	-	-	०७	०६	०१	०३	१०	१७
२	पूर्वी गोदावरी	००	०३	००	०१	०३	०४	-	-
३	पश्चिमी चम्पारन	१३	२२	००	०२	४५५	५३६	८१	१०८
४	पूर्वी सिंहभूम	-	-	००	०२	०३	०६	००	०१
५	सारन	००	०१	०७	२२	१०	१२		

६	धनबाद	०१	२७	३३	६५	—	—	०६	०६
७	गया	००	०१	३७	४८	—	—	१२	१६
८	दरभंगा	००	०२	०१	०७	—	—	३०	३८
६	करनाल	००	०१	—	—	०३	०६	१३	२७
१०	अम्बाला	००	०४	१०	१६	३२	३६	१०	१२
११	हिसार	०७	१४	१६	१५	—	—	०८	१०
१२	कांगरा	०४	१७	००	१८	—	—	०३	०५
१३	शिमला	१०	१७	००	१८	—	—	०३	०५
१४	बंगलौर	००	०४	१७	२७	६६	१०६	४८	५२
१५	शिमोगा	००	०२	—	—	२२	२५	१८६	१६३
१६	टुमकुर	—	—	०२	१४	०२	०६	०२	२६
१७	चिकमंगलूर	—	—	—	—	०१	०६	—	—
१८	रायगढ़	००	०६	—	—	०४	०७	०८	१८
१६	उज्जैन	००	०२	००	०१	००	०१	१५	३६
२०	नरसिंहपुर	००	६०	—	—	—	—	०४	०७
२१	मुम्बई	०६	१६	०६	३५	०२	१५	१३	२२
२२	नासिक	००	०१	—	—	०६	१४	—	—
२३	शोलापुर	००	०३	—	—	०८	११	—	—
२४	उस्मानाबाद	००	०१	—	—	—	—	००	०१
२५	होशियारपुर	००	०४	००	०७	०४	०५	०४	०५
२६	अमृतसर	०१	०३	००	५२	—	—	०२	०५
२७	अजमेर	००	०२	००	०३	०६	११	०६	१०
३०	त्रिचुरापल्ली	०५	१३	१५	१७	१४	३०	०६	०८
३१	सलेम	—	—	—	—	०७	१०	०४	०८
३२	थञ्वुर	०२	१५	२३	२८	०३	०६	१३	१८
३३	मद्रास	—	—	१२	१६	—	—	१५	२५
३४	सहारनपुर	००	३५	००	०६	०३	७३	०४	२६
३५	वाराणसी	०१	०२	०२	१६	—	—	१२५	२२८
३६	दिल्ली	१६	४८	३७	५७	४२	५१	१७८	४०२
३७	हसन	—	—	०२	०३	—	—	—	—
३८	त्रिवेन्द्रम्	०१	०३	—	—	—	—	—	
३६	कोयम्बटूर	०७	१४	१२	१७	—	—	—	—
	कुल	७७	३८१	२४८	५३८	७३१	६८४	८१८	१३५

इस विवरण से स्पष्ट है कि इन सभी जिलों में पुरुष सं०मातृभाषी चारों जनगणना वर्षो में तो नहीं किन्तु कम से कम एक जनगणना में स्त्रियों की अपेक्षा अधिक संख्या में रहे हैं।

किन्तु यह उल्लेखनीय है कि इन ३६ जिलों में से अधोलिखित में पुरूषों की अपेक्षा स्त्री सं०मातृभाषी उनके सम्मुख अंकित जनगणना वर्षों में अधिक रहीं। अधिक स्त्री सं० मातृभाषी के जिले अधोलिखित है :–

क्र०	जिला	जनगणना वर्ष वार संयुक्त मातृभाषी स्त्री पुरुष							
		१६६१		१६७१		१६८१		१६६१	
		स्त्री	पु०	स्त्री	पु०	स्त्री	पु०	स्त्री	पु०
१	हैदाराबाद	१२	०६	–	–	–	–	–	–
२	सिंहभूमि	०८	०४	–	–	–	–	–	–
३	चिकमंगलूर	०७	०३	०२	०१	–	–	–	–
४	सलेम	०६	०४	–	–	–	–	–	–
५	मद्रास	२४	०७	–	–	५६	५२	–	–
६	राजगढ़	–	–	०५	०३	–	–	–	–
७	नरसिंहपुर	–	–	१०	०३	–	–	–	–
१०	नासिक	–	–	०४	०२	–	–	०६	०५
११	दरभंगा	–	–	–	–	२७	२६	–	–
१२	हिसार	–	–	–	–	०४	०३	–	–
१३	शिमला	–	–	–	–	०५	०३	–	–
१४	त्रिवेन्द्रम	–	–	–	–	०४	०३	–	–
१५	कोयम्बटूर	–	–	–	–	०७	०३	–	–
१६	वाराणसी	–	–	–	–	०६	०५	–	–
१७	पूर्वी गोदावरी	–	–	–	–	–	–	१६	१२
१८	सारन	–	–	–	–	–	–	०२	०१
१६	उ० अर्काट	–	–	–	–	–	–	०५	०३
	कुल	६०	२४	३५	१६	११२	६८	२६	२१

इन १६ जिलों के आंकड़ों से विदित होता है कि :—

१ इन जिलों की कुल स्त्री सं०मातृभाषी संख्या पुरूषों की अपेक्षा १६६१ में ढाई गुना (६०—२४), १६७१ में लगभग दो गुना (३५—१६), १६८१ में ११/७ गुना (११२—६८) तथा १६६१ में ११/३ गुना (२६—२१) अधिक है।

२ चिकमंगलूर (१६६१—१६७१), नासिक (१६७१—१६६१) तथा मद्रास (१६६१—१६८१) को छोड़कर, शेष १६ जिलों में स्त्री संस्कृत-मातृभाषी केवल एक वर्ष में ही अधिक हैं।

३ पाँच—पाँच जिले १६६१ व १६७१ में, छः जिले १६८१ में एवं अन्य तीन जिले १६६१ में अधिक स्त्री सं०मातृभाषी वाले हैं।

४ विभिन्न जनगणना वर्षो में अधिक स्त्री सं०मातृभाषी वाले जिलों के भिन्न—भिन्न हो जाने का कारण कदाचित् महिलाओं के सं०मातृभाषी होने से अगली गणना तक पुरूष सं०मातृभाषी संख्या में वृद्धि हो जाना है। महिलाओं की शिक्षा भी इसका कारण हो सकती है।

नगरीय स्त्री—पुरूष संस्कृत मातृभाषी :

उनतालिस जिलों में से वर्ष १६८१ की जनगणना के अधोलिखित इक्कीस जिलों तथा १६६१ के २३ जिलो में कुल मिला कर ३१ जिलों में पुरूषों की अपेक्षा नगरीय स्त्री सं०मातृभाषी कम थीं ।

क्र०	जिला	जनगणना वर्ष			
		१६८१ नगरीय		१६६१ नगरीय	
		पु	स्त्री	पु	स्त्री
१	सहारपुर	७३	०३	२६	०४
२	बंगलौर	१०७	६२	५२	४८
३	दिल्ली	४६	४१	३२३	१३४

४	अम्बाला	२०	२५		
५	शिमोगा	१७	१६	२१	१८
६	सारन	१२	१०		
७	हैदराबाद	०३	०१	१७	१०
८	पूर्वी गोदावरी	०४	०३		
६	प० चम्पारन	०६	०५	७१	५४
१०	सिंहभूम	०६	०३		
११	करनाल	०६	०३	०३	०१
१२	चिकमंगलूर	०६	०१		
१३	थञ्जवुर	०३	०१	१७	१३
१४	होशियारपुर	०५	०४	०५	०४
१५	मुम्बई	०५	०२	२२	१३
१६	नासिक	०६	०४		
१७	राजगढ़	०७	०४	०६	०२
१८	अजमेर	११	०७	०५	०३
१६	शोलापुर	११	०८		
२०	सलेम	१०	०७		
२१	टुमकुर	०२	००	०४	०२
२२	गया	—	—	१६	१२
२३	धनबाद	—	—	७	४
२४	शिमला	—	—	०२	००
२५	बीकानेर	—	—	०२	००
२६	नरसिंहपुर	—	—	०७	०५
२७	उज्जैन	—	—	३५	१४
२८	अमृतसर	—	—	०५	०२
२६	कोयम्बटूर	—	—	०५	०२
३०	मद्रास	—	—	२५	१५
३१	वाराणसी	—	—	२२८	१२५

इनमें से तेरह जिलों–सहारपुर, बंगलोर, दिल्ली, शिमोगा, हैदराबाद, चम्पारन, करनाल, थञ्जवुर, होशियारपुर, बम्बई, राजगढ़, शोलापुर और टुंकुर में नगरीय पुरूष सं०मातृभाषी १९८१ व १९८१ दोनों वर्षों में अधिक थे। अन्य आठ जिलों में १९८१ में तथा अन्य इस जिलों में १९९१ में नगरों में पुरूष सं०मातृभाषी अधिक थे।

स्पष्ट है कि पूरे देश और लगभग सभी जिलों, विशेषकर उनतालीस जिलों में भी, सं०मातृभाषी स्त्री–पुरूष की संख्या में अन्तर शनैः–शनैः प्रत्येक गणना वर्ष में कम होता जा रहा है।

ग्रामीण–नगर क्षेत्रीय संस्कृत–मातृभाषी

पर्याप्त जल के अभाव में न तो तैरा जा सकता है, न तैरना सीखा या सिखाया जा सकता है । भाषा की भी यही गति है । परिवार–इकाईयों का सरोवर–स्वरूप–समुदाय, दैनिक–कार्य–व्यापार व पारस्परिक विचार–विनिमय का आधार बनता है । मातृभाषा का बोलना–सीखना माँ और परिवार इकाई से प्रारम्भ होता है । जहाँ स्थानीय समुदाय एक मातृभाषाई होता है वहाँ लोगों में भाषाई विकास सहज होता है । बड़े नगरों में केवल एक भाषाई सामुदायिक परिवेश के अभाव व शिक्षा का आधार मातृभाषा से भिन्न होने, तथा विभिन्न भाषा–भाषियों के पारस्परिक संसर्ग–प्रभाव से वहाँ भाषा की एक मिश्रित सी स्थिति बन जाती है । इसके विपरीत ग्रामीण क्षेत्र में स्थानीय सामुदायिक इकाई और पारस्परिक नित्य–व्यवहार से उन सबकी मातृभाषा शुद्ध, जीवंत और प्रवाह युक्त बनी रहती है । इस दृष्टिकोण से संस्कृत– मातृभाषियों की ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों में स्थिति को जनगणना के आँकड़ों के आधार पर जानना आवश्यक है । अतः पूरे देश, विभिन्न प्रदेशों, चारों जनगणना वर्षो में संस्कृत–मातृभाषी–युक्त रहे उनतालीस जिलों व प्रदेश–वार शेष जिलों में संस्कृत–मातृ–भाषियों की ग्रामीण व नगरीय संख्या का पारस्परिक विश्लेषण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है ।

इन आंकड़ों के आधार पर देश में नगरीय–ग्रामीण सं०मातृभाषी प्रदेशों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है ।

देश में जनगणना वर्षवार ग्रामीण–नगरीय संस्कृत–मातृभाषी–संख्या

१९६१		१९७१		१९८१		१९९१	
ग्रा०	न०	ग्रा०	न०	ग्रा०	न०	ग्रा०	न०
५५५८	१९८६	८०४	१४०८	१५५१	१३६५	४२८३३	६६०३

स्पष्ट है कि देश में नगरीय क्षेत्र में सं०मातृभाषी संख्या १९६१ की

अपेक्षा १६७१ व १६८१ में (१६८६–१४०८–१३६५) क्रमशः घटती रही है । यद्यपि १६६१ में देश की नगरीय सं०मातृभाषी (६६०३) संख्या १६८१ की (१३१५) अपेक्षा अधिक दिखायी देती है, किन्तु (पूर्व वर्षो की अपेक्षा) कुल सं०मातृभाषी संख्या में नगरीय का प्रतिशत, ग्रामीण क्षेत्र की अपेक्षा और भी कम हो गया है, जैसा कि नीचे अंकित आंकड़ों से स्पष्ट है :–

जनगणना	संस्कृतमातृभाषी संख्या का प्रतिशत	
वर्ष	ग्रामीण–क्षेत्र	नगरीय क्षेत्र
१६६१	२१.५४	७८.४६
१६७१	३६.५२	६३.४८
१६८१	५२.५४	४७.३६
१६६१	६०.६६	६.०१

इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि देश में जनगणना वर्षवार कुल सं० मातृभाषियों की संख्या में से ग्रामीण क्षेत्र का प्रतिशत बढ़ता और नगरीय का तदनुसार घटता गया है ।

प्रदेशवार चार जनगणना में नगरीय–ग्रामीण मातृभाषी संख्या अधोलिखित रहीः–

क्र०	प्रदेश	१६६१		१६७१		१६८१		१६६१	
		ग्रा०	नग०	ग्रा०	नग०	ग्रा०	नग०	ग्रा०	नग०
१.	आन्ध्र–प्रदेश	०४	२१	०८	३७	०५	२१	६५	१३४
२.	बिहार	७७	५२	२६३	८७	११२३	५१	४८४	३१८
३	गुजरात	०५	६४	१४	२४	०४	१२	२२	५६
४	कर्नाटक	२१	१०४	५६	५५	१०३	४०६	४२४	२७१
५	केरल	००	०७	०२	०४	००	०७	०७	२४
६	मध्य–प्रदेश	२६६	११५	२८	६३	१५	५५	८१	५६६
७	महाराष्ट्र	१४	६८	०६	१४६	३२	२४६	६०	२१७

८	राजस्थान	०६	२२	१८	६७	३४	५१	२२१	२१२
६	तमिलनाडु	३२	८५	१२५	१२६	६३	१५१	६५	१०४
१०	उत्तर–प्रदेश	६३	१२६६	२३	४८५	०२	१०५	४०८०७	४०४०
११	प० बंगाल	०३	०१	१५३	१८	०४	१८	२२	१६

देश के नगरीय–ग्रामीण सं०मातृभाषी इन आंकड़ों के आधार पर प्रदेशों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है ।–

ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक सं०मातृभाषी–प्रदेशः–

क चारों जनगणना वर्षो में ग्रामीण क्षेत्र में अधिक सं०मातृभाषी का केवल एक प्रदेश–बिहार है, किन्तु यहाँ १६८१ की अपेक्षा १६६१ में ग्रामीण क्षेत्रीय सं०मातृभाषी घटकर आधे से भी कम हो गये और नगरीय में छः गुना वृद्धि हुई है ।

ख दो या तीन जनगणना वर्षो में अधिक ग्रा० सं०मातृभाषी प्रदेश –

१ पश्चिमी–बंगाल में तीन जनगणना वर्षों (१६६१–१६७१ व १६६१) में ग्रामीण क्षेत्र में सं०मातृभाषी अधिक रहे । केवल १६८१ में नगरीय सं०मातृभाषी, ग्रामीण से साढ़े चार गुना (४.१८) अधिक थे । जनगणना वर्ष १६६१ में नगरीय क्षेत्र की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्र में (४ से २२) साढ़े चार गुना की वृद्धि के कारण ग्रामीण सं०मातृभाषी अधिक हैं ।

२ उत्तर–प्रदेश में १६६१ व १६७१ में नगरीय सं०मातृभाषी–संख्या, ग्रामीण की अपेक्षा लगभग २०–२० गुना अधिक थी किन्तु १६६१ में नगरीय सं०मातृभाषी दो प्रतिशत से भी कम हैं । जनगणना–१६६१ में ग्रामीण क्षेत्र में सं०मातृभाषी, नगरीय से दस गुना अधिक हैं, अर्थात् १६६१ में वृद्धि मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्र में ही हुई ।

३ कर्नाटक में वर्ष १९६१ व १९८१में नगरीय क्षेत्र में सं०मातृभाषी –संख्या, ग्रामीण से क्रमशः पाँच व चार गुना अधिक थी । जनगणना वर्ष १९७१ में ग्रामीण–क्षेत्र में ५६ व नगरीय–क्षेत्र में ५५ सं०मातृभाषी थे । जनगणना वर्ष १९९१ में (२७१–४७४) ग्रामीण क्षेत्र में सं०मातृभाषी अधिक हैं ।

४ हरियाणा में १९८१ में ग्रामीण क्षेत्र में (३३) सं०मातृभाषी, नगरीय (११५) से कम थे किन्तु १९९१ में ग्रामीण (३४६) क्षेत्र में नगरीय (२२६) से अधिक हैं ।

नगरीय क्षेत्र में अधिक सं०मातृभाषी–प्रदेश

क– चारों जनगणना वर्षो में अधिक नगरीय सं०मातृभाषी–प्रदेश

१ आन्ध्र–प्रदेश में यद्यपि चारों गणना वर्षो में नगर में सं०मातृभाषी संख्या अधिक रही (४–२१, ८–३७, ५,२१ व ६५–६३४) किन्तु १९९१ में नगरीय क्षेत्र की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिशत वृद्धि अधिक है ।

२ गुजरात में नगरीय सं०मातृभाषी चारो जनगणना वर्षो में अधिक रहे । यहां नगरीय सं०मातृभाषी १९६१ में (५–९४) उन्नीस गुना, १९७१ में (१४–२४) पौने दो गुना, १९८१ में (४–१२) तीन गुना थे जो १९९१ में ढ़ाई गुना (२२–५६) अधिक हैं । इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि यद्यपि नगरीय क्षेत्र में सं०मातृभाषी, ग्रामीण क्षेत्र की अपेक्षा अधिक है किन्तु यहाँ कुल सं०मातृभाषी संख्या में आई कमी को देखते हुए '९१ में ग्रामीण क्षेत्र में वृद्धि ही है । यहाँ जनगणना–वर्षवार नगरीय सं०मातृभाषी क्रमशः (९४–२४–१२) घटकर पुनः १९९१ में ५६ है ।

३ महाराष्ट्र में चारो जनगणना–वर्षो में ग्रामीण की अपेक्षा नगरीय सं०मातृभाषी क्रमशः पाँच, सोलह, साढ़े सात (७.७) व साढ़े

तीन गुना अधिक रहे । किन्तु '६१ में नगरीय में कमी आई है जब कि ग्रामीण क्षेत्र में दूने हो गये हैं ।

४ तमिलनाडु में १९६१ में ग्रामीण की अपेक्षा नगरीय क्षेत्र में सं०मातृभाषी (३२–८५) ढ़ाई गुना अधिक थे । यहाँ जनगणना वर्ष १९७१ में ग्रामीण–क्षेत्र में १९६१ की अपेक्षा चार गुना (३२ से १२५) तथा नगरीय क्षेत्र में (८५–१२६) लगभग ड्योढ़ी सं०मातृभाषी संख्या वृद्धि होने पर भी नगरीय क्षेत्र में (१२५–१२६) सं०मातृभाषी अधिक रहे । जनगणना वर्ष १९८१ (९६–१५१) व १९९१ (६५–१०४) में नगरीय सं०मातृभाषी संख्या, ग्रामीण से ड्योढ़ी अधिक है, यद्यपि १९८१ की अपेक्षा १९९१ में कुल सं०मातृभाषी संख्या, नगरीय–ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में घट गई है।

५ केरल में १९६१ व १९८१ में ग्रामीण क्षेत्र में सं०मातृभाषी नहीं थे, केवल नगरीय क्षेत्र में ७–७ थे, किन्तु १९७१ में नगरीय सं०मातृभाषी घटने तथा ग्रामीण क्षेत्र में भी अंकित होने पर नगरीय क्षेत्र में ही (२–४) सं०मातृभाषी अधिक रहे और १९९१ में नगरीय (७–२४) सं०मातृभाषी ग्रामीण क्षेत्र से साढ़े तीन गुना अधिक हैं ।

ख तीन गणना वर्षो में नगर क्षेत्र में किन्तु १९६१ में ग्रामीण–क्षेत्र में अधिक सं०मातृभाषीः

मध्य–प्रदेश में १९६१ में नगरीय सं०मातृभाषी, ग्रामीण के लगभग तिहाई (११५–३८४) थे । किन्तु, ग्रामीण क्षेत्र में अपेक्षाकृत अत्यधिक कमी होने से १९७१ में नगरीय (२८–६३) लगभग ढ़ाई गुना, १९८१ में (१५–५५) साढ़े तीन गुना व १९९१ में सात गुना (८१–५९६) हैं ।

ग तीन गणना वर्षों में नगर क्षेत्र में किन्तु १९९१ में ग्रामीण क्षेत्र में अधिक सं०मातृभाषी :

राजस्थान में ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा नगरीय क्षेत्रों में सं०मातृभाषी १९६१ में ढ़ाई गुना (९–२२), १९७१ में साढ़े पाँच गुना (१८–९७) और १९८१ में ग्रामीण लगभग दूने बढ़ने और नगरीय आधे (३४–५१) रह जाने पर भी नगरीय सं०मातृभाषी, ग्रामीण से १/३ गुना अधिक ही रहे । पूर्व जनगणना वर्ष की अपेक्षा १९९१ में, ग्रामीण क्षेत्र में छः गुना (३४–२२१) और नगरीय क्षेत्र में चार गुना (५१ से २१२) वृद्धि के फलस्वरूप नगरीय–ग्रामीण सं०मातृभाषी लगभग (२२१–२१२) बराबर रहे । नगरीय सं०मातृभाषी संख्या वृद्धि के १९९१ के इस झुकाव के विपरीत, १९७१ में ग्रामीण में दूने (९ से १८) की बढ़ोत्तरी किन्तु नगरीय (९७ से ५१) में आधे की घटोत्तरी हो गयी थी । नगरीय सं०मातृभाषी की कम वृद्धि की १९८१ की गति १९९१ में भी बने रहने के कारण ही, १९९१ में ग्रामीण सं०मातृभाषी की वृद्धि अधिक भासित है ।

घ अन्य प्रदेश :

१ हिमाचल–प्रदेश में १९८१ में ग्रामीण क्षेत्र में सं०मातृभाषी (५९), नगरीय (२२) से अधिक थे, किन्तु १९९१ में ग्रामीण (७३), नगरीय (९४) से कम हैं ।

२ पंजाब में १९८१ में नगरीय (४०) सं०मातृभाषी, ग्रामीण (२१) से दूने थे किन्तु १९९१ में ग्रामीण (७), नगरीय (१९) से कम हैं।

३ उडी़सा में १९८१ में केवल नगरीय (२०) सं०मातृभाषी ही थे किन्तु १९८१ में नगर में केवल एक ही सं०मातृभाषी है और

ग्रामीण क्षेत्र में १२ अंकित हुये हैं। अब पुन १९९१ में ग्रामीण क्षेत्र में सं०मातृभाषी घट कर तीन रह गये और नगर में बढ़कर ७८ हो गये हैं।

४ मेघालय में १९७१ व १९८१ में केवल ग्रामीण सं०मातृभाषी थे, किन्तु १९९१ में केवल नगर क्षेत्र में आठ सं०मातृभाषी हैं।

५ जम्मू–कश्मीर में १९८१ में केवल पाँच सं०मातृभाषी, ग्रामीण क्षेत्र में ही बचे।

इस प्रकार, संक्षेप में, बिहार में चारों जनगणना वर्षो में तथा बंगाल, उत्तर–प्रदेश और हरियाणा में दो या तीन गणना वर्षो में ग्रामीण क्षेत्र में सं०मातृभाषी अधिक रहे है। पाँच प्रदेशों – आन्ध्र, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु व केरल में चारों जनगणना वर्षो में और दो प्रदेशों – मध्यप्रदेश व राजस्थान में तीन जनगणना वर्षों में नगरीय मातृभाषियों की संख्या अधिक रही है। चार प्रदेशों – हिमाचलप्रदेश, उड़ीसा, पंजाब व मेघालय में भी नगरीय अधिक की स्थिति रही है।

चारो जनगणना में सं०मातृभाषी युक्त उनतालीस जिलों में (केवल १९८१ व १९९१ के आंकड़े) से :

(क) केवल नगरीय सं०मातृभाषियों के जिले :

देश के उनतालीस जिलों, जहाँ चारों जनगणना वर्षो में सं०मातृभाषी थे, में से पाँच जिले बम्बई, मद्रास, बंगलौर, हैदराबाद, व त्रिवेन्द्रम जो केवल नगरीय क्षेत्र ही हैं, में केवल नगरीय मातृभाषी थे। सारण, होशियापुर, चिकमंगलूर, सहारनपुर, वाराणसी व अमृतसर (छः जिले), जहाँ पर ग्रामीण जनसंख्या ९०.८९ प्रतिशत से ९४.९१ प्रतिशत के बीच है, में भी चारों गणना– वर्षो में केवल नगर क्षेत्र में ही सं०मातृभाषी हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि इन छः जिलों में से वाराणसी को छोड़कर, पाँच जिलों में १९९१ की

जनगणना में सं०मातृभाषी संख्या घटी है। इस प्रकार ३६ जिलों में से ग्यारह जिलों में सं०मातृभाषी केवल नगर क्षेत्रों तक सीमित हैं।

(ख) अधिक संख्या में नगरीय सं०मातृभाषी के जिलेः

तीन जिलों पूर्वी–गोदावरी, अजमेर व धनबाद जहाँ ग्रामीण–जनसंख्या क्रमशः ८६.२०%, ५६.३१% व ४८.७८% है तथा जहाँ १६८१ में केवल नगरीय क्षेत्र में क्रमशः ७, १७, व २ सं०मातृभाषी थे, वहाँ १६६१ में ग्रामीण–क्षेत्र में भी (क्रमशः २२–६, १२–१, ११–४) सं०मातृभाषी अंकित हुए हैं और साथ ही नगरीय क्षेत्र में सं०मातृभाषी संख्या वृद्धि भी हुई है। धनबाद में १६८१ में केवल दो नगरीय सं०मातृभाषी थे जो १६६१ में ग्यारह हो गये है, यद्यपि ग्रामीण में चार हो गये हैं। इन जिलों की कुल सं०मातृभाषी संख्या में क्रमशः २१.४१%, ५.२६% व २६.६६% ग्रामीण क्षेत्र के हैं। इस प्रकार न केवल इन जिलों की अधिक ग्रामीण जनसंख्या के विपरीत, अपितु इन की सं०मातृभाषी कुल संख्या में भी नगरीय सं०मातृभाषी का ही प्रतिशत अधिक है।

तीन जिले – गया, नरसिंहपुर व बीकानेर जहाँ ग्रामीण जनसंख्या क्रमशः ८६.६४%, ८५.१३% व ६०.२६% है तथा जहाँ १६८१ में केवल ग्रामीण क्षेत्र में क्रमशः ४४, ८ व १६ सं०मातृभाषी थे, वहां १६६१ की गणना में ग्रामीण क्षेत्र में सं०मातृभाषी नहीं है और केवल नगरीय क्षेत्र में क्रमशः २८, १२ व २ सं०मातृभाषी अंकित हैं।

नासिक जिले में ग्रामीण क्षेत्र की जनंसख्या ६४.४३% है। यहां १६८१ में ग्रामीण सं०मातृभाषी अधिक (१०–१३) थे, किन्तु १६६१ की जनगणना के कुल ११ सं०मातृभाषी केवल नगरीय क्षेत्र तक सीमित हैं। ग्रामीण क्षेत्र सं०मातृभाषी शून्य हो गया है यद्यपि नगर में एक सं०मातृभाषी की वृद्धि हुई है।

उज्जैन व अर्काट जहाँ ग्रामीण जनसंख्या ६०.४७% व ६८.२६% है व जहाँ १६८१ में सं०मातृभाषी क्रमाशः १ व ३ केवल ग्रामीण क्षेत्र तक ही

सीमित थे, वहाँ १६६१ में सं०मातृभाषी क्रमशः २–२, ग्रामीण क्षेत्रों में तथा ४६ व ६ नगरीय क्षेत्रों में हो गये हैं।

चम्पारन तथा थञ्जवुर, जहाँ ग्रामीण–क्षेत्र की जनसंख्या ८६.६१% व ७७.०६% है तथा जहाँ १६८१ में (१४–६८० व ४–८) ग्रामीण–क्षेत्र में सं०मातृभाषी अधिक थे, वहां १६६१ में नगरीय–क्षेत्र में (१२५–६४ व ३०–१) अधिक हो गये हैं। थञ्जवुर में तो नगरीय सं०मातृभाषी न केवल सात गुना बढ़े अपितु ग्रामीण क्षेत्रीय घट कर मात्र एक रह गया है।

दिल्ली व अम्बाला में १६८१ व १६६१ के दोनों गणना – वर्षो में नगरीय क्षेत्र में सं०मातृभाषी अधिक रहे हैं। उल्लेखनीय यह है कि यद्यपि दिल्ली की जनसंख्या का १०.७०% ग्रामीण था, किन्तु १६८१ में दिल्ली की कुल सं०मातृभाषी संख्या का ३.२२% ग्रामीण क्षेत्र का था जो १६६१ में बढ़कर २२.१२% हो गया है। अर्थात् १६६१ में दिल्ली में सं०मातृभाषी संख्या में विशेष–वृद्धि ग्रामीण–क्षेत्र में हुई है। किन्तु इसके विपरीत अम्बाला में ग्रामीण–क्षेत्र के सं०मातृभाषी का प्रतिशत ३६.६३ से घटकर ६.०६ रह गया है। वस्तुतः यहाँ के १६८१ के ७१ (४५–२६) सं०मातृभाषी, १६६१ में घटकर (२०–२) बाइस रह गये हैं।

हिसार जहाँ ग्रामीण जनसंख्या ७८.८०% है तथा जहाँ १६८१ में केवल ग्रामीण (सात) सं०मातृभाषी थे, वहाँ १६६१ में ग्रामीण व नगरीय दोनों क्षेत्रों में ८–८ हैं, अर्थात वृद्धि, मुख्यतः नगरीय क्षेत्र में ही है।

अधिक नगरीय संस्कृत–मातृभाषी के १६८१ व १६६१ – दोनों जनगणना वर्षो के दो जिले – दिल्ली व अम्बाला; १६८१ के केवल नगरीय संस्कृत मातृभाषी के तीन जिले – पूर्वी–गोदावरी, अजमेर व धनबाद–जहां १६६१ में संस्कृत–मातृभाषी ग्रामीण क्षेत्र में अंकित होने के साथ ही नगरीय क्षेत्र में भी बढ़े हैं; एवं १६८१ के केवल ग्रामीण क्षेत्रीय संस्कृत–मातृभाषी का जिला हिसार और अधिक ग्राम–क्षेत्रीय सं०मातृभाषी जिले–चम्पारन व थञ्जवुर, जहां १६६१ में अधिक नगरीय संस्कृत मातृभाषी हो गये हैं; तथा

१९८१ के दो जिले – उज्जैन व अर्काट – जो केवल ग्रामीण से १९९१ में नगरीय संस्कृत–मातृभाषी युक्त हो गये हैं; १९८१ के केवल ग्रामीण क्षेत्रीय से केवल नगरीय सं०मातृभाषी तक ही १९९१ में सीमित रह गये तीन जिले – गया, नरसिंहपुर, बीकानेर व १९८१ के अधिक ग्रामीण क्षेत्रीय से केवल नगरीय–क्षेत्र तक १९९१ में सिमटा नासिक; व १९८१ में केवल ग्रामीण क्षेत्रीय संस्कृत मातृभाषी युक्त जिला हिसार – जहाँ १९९१ में नगरीय भी हो गये, कुल मिलाकर चौदह जिले, अधिक नगरीय संस्कृत मातृभाषी क्षेत्र हो गये हैं।

इन पच्चीस (११ केवल नगरीय क्षेत्रीय के + १४ अधिक नगर क्षेत्रीय) संस्कृत मातृभाषाी जिलों में से केवल नगरीय क्षेत्र के पाँच जिलों तथा दिल्ली व धनबाद जहां ग्रामीण जनसंख्या क्रमशः १०.०६ व ४८.७४ प्रतिशत है, को छोड़कर १८ जिलों में ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत ५१. ३१% से ६०.८६% के बीच है। इन १८ जिलों में ग्रामीण क्षेत्र की संस्कृत मातृभाषी संख्या का प्रतिशत नगर की अपेक्षा कम होना विचारणीय है।

(ग) ग्रामीण क्षेत्रीय अधिक संस्कृत–मातृभाषी जिले :

उनतालिस जिलों में से पच्चीस मुख्यतः नगरीय श्रेणी के सं०मातृभाषी जिलों का विवरण ऊपर दिया जा चुका है। शेष १४ जिलों में ग्रामीण क्षेत्र में संस्कृत–मातृभाषी अधिक हैं। देश में दोनों गणना–वर्षो में केवल ग्रामीण क्षेत्रीय संस्कृत–मातृभाषी एक मात्र जिला कांगड़ा है। देश में १९८१ में दस जिलों में केवल ग्रामीण क्षेत्र में संस्कृत मातृभाषी थे तथा पाँच जिलों में नगरीय क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्र में संख्या में अधिक थे। इन मुख्यतः ग्रामीण – क्षेत्रीय संस्कृत मातृभाषी पन्द्रह जिलों में से, १९९१ में पाँच जिलों में केवल ग्रामीण – क्षेत्र में तथा आठ जिलों में ग्रामीण क्षेत्र में अधिक संस्कृत मातृभाषी हैं । हिसार व कोयम्बटूर दोनों जिलों में दोनों वर्षो में संस्कृत– मातृभाषी–संख्या समान रही है। हिसार नगरीय सूची में ऊपर वर्णित है। इन सभी जिलों का विवरण अधोलिखित है :

१ कांगड़ा, जहाँ ग्रामीण जनसंख्या ६४.६५ प्रतिशत है,में दोनों गणना वर्षों – १६८१ व १६६१–में केवल ग्रामीण संस्कृत–मातृभाषी ही हैं, जो स्वाभाविक भी है । किन्तु यहाँ की १६८१ की संस्कृत–मातृभाषी संख्या (२२) का १६६१ में १८ रह जाना, घटोत्तरी उन्मुख है ।

२ दरभंगा, शिमला व त्रिचुरापल्ली, जहाँ ग्रामीण जनसंख्या क्रमशः ६१.३०%, ७६.५% व ७३.४०% है तथा जहां १६८१ में क्रमशः ५३, ८ व ४४ ग्रामीण संस्कृत मातृभाषी थे वहाँ १६६१ में वह घटकर क्रमशः ३५, ६ व १२ रह गये, किन्तु वहीं इन स्थानों में क्रमशः ३३,२ व २ नगरीय संस्कृत–मातृभाषी भी अंकित हुए हैं । इस प्रकार यद्यपि १६६१ में इन तीन जिलों में ग्रामीण संस्कृत–मातृभाषी संख्या घटी है, फिर भी नगरीय संख्या से अधिक ही है । अर्थात् ग्रामीण संस्कृत–मातृभाषी घटकर, नगर उन्मुख प्रतीत होते है ।

३ उस्मानाबाद, सलेमपुर व सिंहभूमि, जहाँ ग्रामीण जनसंख्या क्रमशः ८४.८१% ७०.८४% व ४७.३१% हैं, में १६८१ में केवल नगरीय संस्कृत–मातृभाषी क्रमशः १८, १७, ६ तथा १६६१ में केवल ग्रामीण क्षेत्र में क्रमशः १, १२, १ अंकित हुए हैं । अर्थात् यहाँ नगरीय मातृभाषी समाप्त होने के साथ–साथ ग्रामीण–क्षेत्र में भी सं०मातृभाषी अपेक्षाकृत बहुत कम हो गये हैं ।

४ हसन व टुमकुर, जहां ग्रामीण–जनसंख्या ८२.६३% व ८३.४७% हैं, में दोनों स्थानों पर दो–दो नगरीय व छः–छः ग्रामीण सं०मातृभाषी १६८१ में थे । इनमें से हसन में १६६१ में नगरीय समाप्त हैं और ग्रामीण में भी छः से घटकर दो रह गये हैं । टुमकुर के १६८१ के छः ग्रामीण व दो नगरीय बढ़कर १६६१ में २५ ग्रामीण एवं छः नगरीय हो गये हैं।

५ करनाल, राजगढ़ शोलापुर जहाँ ग्रामीण जनसंख्या क्रमशः ७२.८४%, ८३.१६% व ७१.२३% है, में १६८१ में क्रमशः ८,११ व १६

केवल नगरीय सं०मातृभाषी थे जो १९९१ में घटकर क्रमश ३, ८ व ८ रह गये किन्तु साथ ही इन स्थानों पर ग्रामीण क्षेत्रों में क्रमशः ३६, १८ व ३४ सं०मातृभाषी अंकित भी हुए हैं, जो नगरीय की अपेक्षा अधिक हैं ।

६ कोयम्बटूर में १९८१ में ग्रामीण व नगरीय क्रमशः ४ व ६ सं०मातृभाषी थे, किन्तु १९९१ में दोनों क्षेत्रों में ६–६ हैं, अर्थात् यद्यपि १९८१ की कुल सं०मातृभाषी संख्या की अपेक्षा १९९१ में एक कम है, किन्तु ग्रामीण क्षेत्र में वृद्धि और नगरीय में कमी हुई है ।

७ शिमोगा में १९८१ में ३३ नगरीय व १४ ग्रामीण–क्षेत्रों में सं०मातृभाषी थे जो १९९१ में बढ़कर क्रमशः ३६ तथा ३४३ हो गये । अर्थात् वृद्धि मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्र में है । जनगणना वर्ष १९९१ में कुल संमातृभाषी का ८९.८२% ग्रामीण क्षेत्र में हैं जबकि जिले में ग्रामीण जनसंख्या ७३.४६% है ।

संक्षेप में इन चौदह जिलों में से –

(१) पाँच जिलों में ग्रामीण क्षेत्रीय संस्कृत–मातृभाषी संख्या में कमी हुई है :

१ त्रिचुरापल्ली, शिमला व दरभंगा में ग्रामीण क्षेत्रों में सं०मातृभाषी संकुचन–घटोत्तरी के साथ नगरोन्मुखता है ।

२ सलेम में भी ग्रामीण क्षेत्र में सं०मातृभाषी संख्या में घटोत्तरी हुई है।

३ कांगड़ा जहां दोनों जनगणना वर्षो में केवल ग्रामीण सं०मातृभाषी ही हैं, में १९९१ में उनकी संख्या में कमी ही हुई है ।

इस प्रकार इन पाँच जिलों में से तीन में ग्रामीण–क्षेत्र में कम हो कर नगरोन्मुखता है, तथा शेष दो में भी ग्रामीण सं०मातृभाषी संकुचन की स्थिति है ।

(२) नौ जिलों में ग्रामीण सं०मातृभाषी संख्या में वृद्धिः

१ टुमकुर व शिमोगा में नगरीय–ग्रामीण दोनों सं०मातृभाषी बढ़े हैं परन्तु ग्रामीण अधिक बढ़े हैं ।

२ करनाल, राजगढ़ व शोलापुर जहाँ केवल नगरीय सं०मातृभाषी थे, वहां उनकी संख्या घटी है किन्तु उससे कहीं अधिक ग्रामीण क्षेत्र में बढ़ी है ।

३ कोयम्बटूर में भी नगरीय में कमी व ग्रामीण सं०मातृभाषी में वृद्धि हुई है ।

४ उरमानाबाद, सिंहभूमि व हसन जहाँ १६६१ में नगरीय सं०मातृभाषी समाप्त हो गये हैं और ग्रामीण क्षेत्र में क्रमशः एक, एक व दो अंकित भी हुए हैं, में अस्तित्व संकट की छटपटाहट प्रतीत होती है ।

इस प्रकार इन उनतालीस जिलों में से पच्चीस जिले तो केवल नगरीय अथवा अधिक नगरीय सं०मातृभाषी वाले हैं । शेष चौदह जिलों में से पाँच जिलों में यद्यपि ग्रामीण सं०मातृभाषी थे किन्तु अब वह नगरोन्मुख प्रतीत होते हैं और नौ जिलों में ग्रामीण सं०मातृभाषी संख्या में वृद्धि हुयी है।

इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि :–

१ जनगणना वर्ष १६८१ में केवल नगरीय क्षेत्र में १६ जिलों में, तथा केवल ग्रामीण क्षेत्र में दस जिलों में सं०मातृभाषी थे, किन्तु पाँच जिलों में नगरीय और अन्य पाँच जिलों में ग्रामीण क्षेत्र में अधिक थे । केवल नगरीय व केवल ग्रामीण क्षेत्र के सं०मातृभाषी जिले, १६६१ की जनगणना में घटकर क्रमशः १५ व ५ तथा अधिक ग्रामीण व अधिक नगरीय क्षेत्र (एक बराबर भी) के जिले बढ़कर क्रमशः ८ व ११ हो गये ।

२ केवल नगरीय व केवल ग्रामीण सं०मातृभाषी के १६८१ के तीन–तीन जिले १६६१ में क्रमशः अधिक नगरीय व केवल

नगरीय हो गये । अधिक ग्रामीण सं०मातृभाषी का १९८१ का एक जिला, १९९१ केवल नगरीय सं०मातृभाषी हो गया । अधिक ग्रामीण सं०मातृभाषी के १९८१ के दो जिले, १९९१ में अधिक नगरीय के हो गये ।

चारों जनगणना वर्षो में सं०मातृभाषी युक्त रहे देश के उनतालीस जिलों में से सत्रह जिले तो बिहार, तमिलनाडु तथा कर्नाटक के (क्रमशः ६. ६ व ५) हैं । इन प्रदेशों के चारों गणना वर्षो में सं०मातृभाषी युक्त जिलों व इन्हीं प्रदेशों के शेष सं०मातृभाषी जिलों की सं०मातृभाषी संख्या, तथा दोनों के योग की संख्या के पारस्परिक सम्बन्ध में ग्रामीण व नगर क्षेत्रीय संख्या का विवेचन अब किया जा रहा है । यतः ग्रामीण सं०मातृभाषी संख्या के बारे में ऊपर उनतालिस जिलों के विश्लेषण में १९८१ व १९९१ पर ही विचार किया गया है अतः यहाँ भी मुख्यतः इन्हीं दो जनगणना वर्षो को ही आधार माना गया है । केवल दो वर्षो के इन आंकड़ों के विश्लेषण को निर्णायक नहीं कहा जा सकता किन्तु दिशा इंगित करता तो कहा ही जा सकता है।

बिहार

१. बिहार में १९८१ में पूरे प्रदेश में नगरीय सं०मातृभाषी संख्या (५१), ग्रामीण की (११२३) अपेक्षा बहुत कम थी, किन्तु १९९१ में नगरीय में छः गुना वृद्धि (५१ से ३१८) तथा ग्रामीण (११२३ से ४८४) में दो तिहाई की कमी हो जाने से नगरीय–ग्रामीण सं०मातृभाषी का पारस्परिक अन्तर कम हो गया है । फिर भी प्रदेश में ग्रामीण (४८४) सं०मातृभाषी नगरीय (३१८) से अधिक ही है ।

   वस्तुतःयह अन्तर १९८१ में चम्पारण में ग्रामीण क्षेत्र में ६८० सं०मातृभाषी अंकित होने के कारण है । यद्यपि बिहार प्रदेश में चारों जनगणना वर्षो में ग्रामीण सं०मातृभाषी ही अधिक हैं, किन्तु १९९१ में यहाँ के चारों जनगणना वर्षो में सं०मातृभाषी

युक्त छः जिलों तथा शेष सं०मातृभाषी युक्त जिलों में भी नगर क्षेत्र में सं०–मातृभाषी–संख्या वृद्धि हुयी है ।

२ प्रदेश की चारों जनगणना में सं०मातृभाषी युक्त यहाँ के सभी छः जिलों में १९८१ में नगरीय कम (४७) और ग्रामीण (१०७७) अधिक थे, किन्तु १९९१ में इन जिलों में ग्रामीण क्षेत्र में अत्यधिक कमी (१०७७ से १०४) हुई है ।

३ इन छः जिलों को छोड़कर प्रदेश के अन्य सं०मातृभाषी जिलों में १९९१ में सं०मातृभाषी संख्या में नगरीय क्षेत्र में साढ़े उन्तीस गुना तथा ग्रामीण में साढ़े आठ गुना वृद्धि हुयी है । अर्थात् नगरीय क्षेत्र में अपेक्षाकृत वृद्धि अधिक हुई हैं ।

इस प्रकार तीन स्तरों (प्रदेश, ३६ जिलों की श्रेणी के जिलों व शेष जिलों) के आधार पर बिहार में नगरीय सं० मातृभाषियों की ही वृद्धि हुई है, यद्यपि अभी तक, जैसा पूर्व में कहा जा चुका है, चारों गणना वर्षों में ग्रामीण क्षेत्र में सं० मातृभाषी अधिक हैं ।

तमिलनाडु

१ तमिलनाडु में पूरे प्रदेश में १९८१ में ग्रामीण की अपेक्षा नगर–क्षेत्रीय सं०मातृभाषी (१५१–६३) डेढ़ गुना थे, जहाँ दोनों क्षेत्रों में १९९१ में संख्या घटने पर (क्रमशः १०४–६५) भी उनका पारस्परिक अनुपात लगभग वही रहा ।

२ प्रदेश के चारों गणना वर्षों में सं०मातृभाषी युक्त यहाँ के छः जिलों में १९८१ में नगर क्षेत्रीय सं०मातृभाषी, ग्रामीण से लगभग ढ़ाई (१४१–५६) गुना अधिक थे । अर्थात् पूरे प्रदेश की अपेक्षा, इन छः जिलों के नगरीय क्षेत्र में ही सं०मातृभाषी केन्द्रित थे । प्रदेश में १९९१ में सं०मातृभाषी संख्या घटने पर

भी इन छः, नगरीय क्षेत्र में अधिक की (८४–३३) स्थिति है, और पारस्परिक अनुपात भी लगभग वही बना रहा है ।

३. प्रदेश के इन छः जिलों को छोड़कर प्रदेश के अन्य सं०मातृभाषी जिलों में १६८१ में नगरीय सं०मातृभाषी, ग्रामीण के एक तिहाई (१०–३४) से भी कम थे किन्तु १६६१ में (२०–३२) दो तिहाई हैं। यद्यपि नगरीय बढ़कर दूने (१०–२०) हो गये हैं और ग्रामीण में दो की कमी हुई है फिर भी नगरीय, ग्रामीण के २/३ हैं ।

अर्थात् १६६१ में पूरे तमिलनाडु प्रदेश में तथा वहाँ के छः जिलों में तो नगरीय सं०मातृभाषी अधिक हैं किन्तु इसके विपरीत प्रदेश के शेष सं०मातृभाषी जिलों में नगरीय कम और ग्रामीण (२०–३२) अधिक हैं, यद्यपि ग्रामीण क्षेत्र में वृद्धि न होकर घटोत्तरी ही है ।

प्रकारान्तर से यह कह सकते हैं कि तमिलनाडु के इन छः जिलों को छोड़कर शेष सं०मातृभाषी जिलों में १६८१ में नगरीय से ग्रामीण क्षेत्र में सं०मातृभाषी लगभग साढ़े तीन गुना (१०–३४) अधिक थे किन्तु १६६१ में नगरीय बढ़ (१०–२०) गये और ग्रामीण ३४ से घटकर ३२ रह गये। अर्थात् तमिलनाडु में सं०मातृभाषी मुख्यतः इन्हीं छः जिलों के नगरीय क्षेत्र में केन्द्रित है ।

वस्तुतः तमिलनाडु में सं०मातृभाषी संख्या में मुख्य अन्तर निम्नलिखित तीन जिलों में औचक बढ़ोत्तरी–घटोत्तरी के कारण हैं :

१ मद्रास में १११ नगरीय सं०मातृभाषी १६८१ में थे, जो १६६१ में ४० है ।

२ त्रिचुरापल्ली के १६८१ के ४४ ग्रामीण क्षेत्रीय सं०मातृभाषी घटकर १६६१ में १२ रह गये हैं ।

३ सलेम में १६८१ में १७ सं०मातृभाषी नगर क्षेत्र में थे जहां १६६१ में एक भी नहीं हैं किन्तु ग्रामीण में १२ अंकित हुए हैं ।

स्पष्ट है कि तीनों मानको के आधार पर, तमिलनाडु में नगरीय सं०मातृभाषी ही अधिक है । यद्यपि छः जिलों को छोड़कर, शेष जिलों में ग्रामीण सं०मातृभाषी–संख्या अधिक है किन्तु १६८१ की अपेक्षा १६६१ में नगरीय में दो गुना वृद्धि और ग्रामीण में नाम मात्र की वृद्धि, नगरीय क्षेत्र में सं०मातृभाषी के केन्द्रित होने की प्रवत्ति इंगित करते हैं ।

कर्नाटक

१ कर्नाटक प्रदेश में नगरीय व ग्रामीण सं०मातृभाषी के बारे में मुख्य तथ्य यह है कि १६६१ में नगरीय पाँच गुना (१०३–२१), १६७१ में दोनों लगभग बराबर (५५–५६) और १६८१ में नगरीय चार गुना (४०६–१०३) थे किन्तु १६६१ में ग्रामीण अधिक (२७१–४२४) हैं ।

२ प्रदेश में १६८१ में नगरीय क्षेत्र में अधिक (४०६–१०३) तथा ग्रामीण में कम सं०मातृभाषी थे, किन्तु १६६१ में ग्रामीण क्षेत्र (२७१–४२५) में अधिक हैं । प्रदेश में १६८१ की अपेक्षा १६६१ में कुल सं०मातृभाषी संख्या बढ़ी है किन्तु नगरीय घटे तथा ग्रामीण बढ़े हैं ।

३ चारों गणना वर्षो में रहे प्रदेश के पाँचो जिलों में भी १६६१ में नगरीय घटे और ग्रामीण सं०मातृभाषी बढ़े हैं ।

४ प्रदेश के इन पाँच जिलों को छोड़कर शेष सं०मातृभाषी जिलों में १६६१ में नगरीय–ग्रामीण दोनों सं०मातृभाषी घटे हैं । नगरीय १६३ से घटकर १२२ (२४.१% घटोत्तरी) तथा ग्रामीण ७१ से घटकर ५५ (२२.६% घटोत्तरी) अर्थात कुल २३४ से घटकर १७७ रह गये हैं ।

इस प्रकार तीनों स्तर पर कर्नाटक में :

१ नगरीय सं०मातृभाषियों में घटोत्तरी तथा ग्रामीण क्षेत्र में बढ़ोत्तरी, मुख्यतः पाँच जिलों, जहाँ चारों जनगणना में सं०मातृभाषी रहे हैं, के कारण हैं ।

२ इन पाँच जिलों में भी बढ़ोत्तरी–घटोत्तरी मुख्यतः बंगलूर और शिमोगा के कारण हैं ।

(क) बंगलूर के १६८१ के १६६ नगरीय सं०मातृभाषी १६६१ में घटकर १०० तथा ग्रामीण क्षेत्र में ६ के स्थान पर एक भी नहीं रह गया ।किन्तु चारों गणना वर्षों में सं०मातृभाषी युक्त कर्नाटक के शेष चार (बंगलूर को छोड़कर) जिलों में १६८१ की नगरीय सं०मातृभाषी संख्या ४४ से बढ़कर १६६१ में ३७० तथा ग्रामीण में २६ से ४६ हो गई हैं । स्पष्ट है कि यद्यपि १६६१ में बंगलूर में नगरीय ६६ सं०मातृभाषी कम हुए, किन्तु शेष चार जिलों में (३७०–४४) ३२६ नगरीय (सात गुना) अधिक अंकित हुए हैं ।

(ख) शिमोगा में १६८१ की अपेक्षा १६६१ में नगरीय सं०मातृभाषी ३३ से ३६ हो गये है (१८.१८% की वृद्धि) जो सामान्य जनसंख्या वृद्धि की दर से कम ही है, किन्तु ग्रामीण इसी अवधि में १४ से (साढ़े चौबीस गुना) बढ़कर ३४३ हो गये, जो अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि इंगित करता है ।

शिमोगा को छोड़कर शेष ४ जिलों में इसी अवधि में नगरीय १२० से घटकर २७ (१/७) रह गये किन्तु ग्रामीण १८ से बढ़कर (लगभग आठ गुना) १४३ हो गये हैं । अर्थात् इस अवधि में जहाँ शिमोगा में नगरीय में बहुत कम वृद्धि हुई, वहाँ

ग्रामीण क्षेत्र में इन चार शेष जिलों में हुई आठ गुना वृद्धि की अपेक्षा अधिक (साढ़े चौबीस गुना) वृद्धि हुई है ।

३ शिमोगा और बंगलूर दोनों को छोड़कर शेष तीन जिलों (टुमकुर हसन, चिकमंगलूर) में कुल मिलाकर १९८१ में ११ नगरीय व १२ ग्रामीण सं०मातृभाषी थे जहाँ १९९१ में नगरीय एक कम होकर १० रह गये किन्तु ग्रामीण बढ़कर सवा दो गुना (१२ से २७) हो गये ।

स्पष्ट है कि कर्नाटक में मुख्यतः नगरीय सं०मातृभाषी संख्या घटी किन्तु ग्रामीण क्षेत्रीय बढ़ी है ।

निष्कर्षतः

जहाँ एक ओर देश में विगत तीन जनगणना वर्षों में नगरीय सं०मातृभाषी–संख्या में व चारों–गणना–वर्षों में प्रतिशत में लगातार आई कमी और इसके विपरीत वहीं दूसरी ओर अधिकतर प्रदेशों में '८१ की अपेक्षा '९१ में नगर क्षेत्र में सं०मातृभाषियों की संख्या–वृद्धि; चारों गणना–वर्षों में सं०मातृभाषी युक्त ३९ जिलों में से २५ जिलों में नगरीय सं०मातृभाषियों का आधिक्य एवं इन्हीं उनतालिस जिलों वाले तेरह प्रदेशों में से तीन प्रदेशों के १७ जिलों में नगरीय क्षेत्र में ही बाहुल्य, दो विपरीत दिशाएँ एवं अन्तर्द्वन्द्व इंगित करते हैं । साथ ही यद्यपि केवल नगरीय और केवल ग्रामीण क्षेत्रीय सं०मातृभाषी कुल जिलों की संख्या में कमी होना एकांगी स्थिति के निवारण का आभास देता है किन्तु, नगरीय क्षेत्र में वृद्धि के समक्ष, ग्रामीण क्षेत्र में सं०मातृभाषी संख्या की कमी या समाप्ति तथा नये अन्य जिलों में उनका अंकन, संस्कृत मातृभाषियों के अस्तित्व–संरक्षण का प्रयास सा प्रतीत होता है ।

उत्तर–प्रदेश में संस्कृत–मातृभाषी व संस्कृत–पाठशालायें

भारत सरकार द्वारा नियुक्त संस्कृत–आयोग ने १९५७ में अपनी आख्या में लिखा था कि "कुछ वर्ष पहले बंगाल में१३२० पाठशालायें थीं और अभी भी ६५२ पाठशालायें अच्छी स्थिति में हैं", किन्तु (अप्रैल, १९६६ में) उत्तर–प्रदेश के उच्चशिक्षा मंत्री ने बड़े गर्व से कहा है कि देश में १२०० संस्कृत विद्यालयों में से ११३८ केवल उत्तर–प्रदेश में है । उत्तर–प्रदेश की जिलेवार संस्कृत पाठशालाओं की संख्या व चार जनगणना वर्षों में उन जिलों में अंकित स०मातृभाषियों की संख्या का विवरण संस्कृत–शिक्षण–संस्थाओं और सं०मातृभाषियों में संख्यात्मक सम्बन्ध पर प्रकाश डाल सकता है । सम्पूर्णानन्द–संस्कृत–विश्वविद्यालय से सम्बद्ध व मान्यता–प्राप्त इन शिक्षण–संस्थाओं से कहीं अधिक संस्थायें बिना सरकारी मान्यता व आर्थिक सहायता के अभी भी अपना कार्य कर रही हैं किन्तु यहाँ मान्यता प्राप्त संस्थाओं के आधार पर ही विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

प्रदेश के पाँच जिलों – फतेहपुर, शाहजहाँपुर, जालौन, फर्रुखाबाद तथा उत्तरकाशी जहाँ क्रमशः १७, ६, ७, ७ व ४ (कुल योग–४४) संस्कृत–विद्यालय या महाविद्यालय हैं, में १९६१ की गणना में कोई सं०मातृभाषी नहीं है और न इसके पूर्व की तीन जनगणना वर्ष में रहे हैं । इन पाँच जिलों के अतिरिक्त, १७३ संस्कृत–शिक्षण–संस्था युक्त निम्नलिखित १० जिले (आजमगढ़ मिलाकर ११) ऐसे भी है जहां १९६१ व (या) १९७१ में सं० मातृ–भाषी थे किन्तु १९९१ की जनगणना में नहीं हैं ।

क्रं०	जिलों के नाम	पाठशालाओं की संख्या	संस्कृत–मातृभाषी–संख्या वर्ष १९६१	संस्कृत–मातृभाषी–संख्या वर्ष १९७१
१	जौनपुर	५४	१०	–
२	बलिया	२६	१०	–
३	सुलतानपुर	१६	०१	–
४	बुलन्दशहर	१७	०२	–

५	चमोली	१६	–	०१
६	हमीरपुर	१३	२०	–
७	झांसी	११	१२	०४
८	इटावा	०६	१६	०२
६	आगरा	०६	–	०१
१०	अलमोड़ा	०२	०२	०३
	योग	१७३	८३	१२

इस प्रकार (४४+१७३=)२१७ संस्कृत–शिक्षण–संस्थाओं वाले ऊपर बताये गये (५+१०=)१५ जिलों में सं० मातृभाषी नहीं हैं । यह उल्लेखनीय है कि पाँच जिले जौनपुर, बलिया, सुल्तानपुर बुलन्दशहर, हमीरपुर जहाँ क्रमशः ५४,२६,१६,१७ व १३ संस्कृत–शिक्षण–संस्थायें हैं, तथा १६६१ की जनगणना में जहाँ क्रमशः १०, १०, १, २ व २० संस्कृत–मातृभाषी थे, उसके पश्चात् की शेष तीन गणनाओं में संस्कृत मातृभाषी नहीं हैं ।

जनगणना–वर्ष १६७१ में उत्तर–प्रदेश के केवल १८ जिलों में सं०मातृभाषी अंकित थे और शेष जिले, जहाँ ५६५ संस्कृत विद्यालय या महाविद्यालय हैं, संस्कृतभाषी नहीं थे । जनगणना वर्ष १६७१ के इन १८ जिलों के चारों जनगणना वर्षों में अंकित सं०मातृभाषियों व वहाँ की संस्कृत –शिक्षण–संस्थाओं की संख्या तथा जनगणना वर्षवार प्रति–संस्था सं०मातृभाषियों की संख्या का विवरण इस प्रकार है :–

क्र सं०	जिला	संस्कृत–मातृभाषी संख्या				संस्कृत–शिक्षण–संस्थाओं की संख्या	औसत संस्कृत–मातृभाषी प्रतिसंस्था		
		वर्ष १६६१	वर्ष १६७१	वर्ष १६८१	वर्ष १६६१		वर्ष १६७१	वर्ष १६८१	वर्ष १६६१
१	मथुरा	००	४२६	०५	२६	२६	१६.४	०.१६	१.००
२	वाराणसी	०३	१८	११	३५३	१२१	०.१४	०.०६	२.८६
३	देहरादून	०४	१५	००	२३	१३	१.१५	०.००	१.७७

४	कानपुर नगर	००	१०	००	०५	०६	–	–	१.६६
५	कानपुर देहात	०१	–	०३	८०४	१२	–		६७.००
६	मुरादाबाद	१६६	०८	००	११	१०	०.८०	–	१.१०
७.	सहारनपुर	३५	०६	७६	३३	२१	०.२८	३.६०	१.६०
८	बरेली	०३	०५	००	१०७	०८	०.६२	–	१३.४०
६	झांसी	१२	०४	००	००	११	०.३६	–	–
१०	बदायूँ	०६	०४	००	११	१७	०.२३	–	०.६५
११	अलमोड़ा	०२	०३	००	००	०२	१.५०	–	–
१२	इटावा	१६	०२	००	००	०६	०.२२	–	–
१३	चमोली	००	०१	००	००	१६	०.०६	–	–
१४	आगरा	००	०१	००	००	०६	०.१६	–	–
१५	बांदा	००	०१	००	०४	३३	०.०३	–	०.१२
१६	सीतापुर	०२	०१	००	४०११६	१५	०.०६	–	२६७४.००
१७	बस्ती	००	०१	००	०६	४४	०.०२		०.१४
१८.	देवरिया	१	०१	००	७२	५२	०.०२	–	१.३८
१६	आजमगढ़	०७	०१	००	४३	४४	०.०२	–	०.६७
	योग	२६०	५०८	६२	४०८५३	४५१			

इन १८ (कानपुर के दो होने से उन्नीस) जिलों के आंकड़ों से स्पष्ट हे कि :–

१ झाँसी, अल्मोड़ा, इटावा, चमोली और आगरा, पाँच जिले, जहाँ १६७१ की जनगणना में क्रमशः ४, ३, २, १ और १ मातृभाषी तथा ११, २, ६, १६ व ६ संस्कृत–विद्यालय/महाविद्यालय थे, वहाँ १६६१ की जनगणना में कोई संस्कृत–मातृभाषी नहीं हैं ।

२. शेष १३ जिलों (हरिद्वार सहित १४) में १६६१ की जनगणनानुसार प्रति–विद्यालय संस्कृत–मातृभाषी की औसत संख्या क्रमानुसार इस प्रकार है :–

क्रं०	जिले	संस्कृत–मातृभाषियों का प्रति संस्था औसत (१६६१)	क्रं०	जिले	संस्कृत–मातृभाषियों का प्रति संस्था औसत (१६६१)
१	सीतापुर	२६७४.४०	२	बरेली	१३.४०
३	वाराणसी	२.८६	४	रामपुर	२.६६
५	देहरादून	१.७७	६	सहारनपुर	१.६०
७	हरिद्वार	——	८	देवरिया	१.३८
६	मुरादाबाद	१.१०	१०	मथुरा	१.००
११	आजमगढ़	०.६७	१२	बदायूँ	०.६५
१३	बस्ती	०.१४	१४	बांदा	०.१२

उत्तर प्रदेश में १६८१ में संस्कृत–मातृभाषी केवल ६ जिलों (जिले बढ़ने से ७) में अंकित हुए थे । वहाँ की शिक्षण–संस्थाओं तथा १६८१ व १६६१ में संस्कृत मातृभाषियों की संख्या इस प्रकार है :–

क्रम सं०	जिला	सं०मातृभाषी (संख्या) वर्ष १६८१	वर्ष १६६१	विद्यालय (संख्या)
१	हरिद्वार	७६	६	२१
२	वाराणसी	११	३३५	१२१
३	मेरठ गाजियाबाद सहित	६	(८+१५)२३	१४
४	मथुरा	५	२६	२६
५	पौड़ी	२	६	७
६	इलाहाबाद	१	४१	४२
७	सहारनपुर	–	३३	–

स्पष्ट है कि हरिद्वार को छोड़कर (चाहे उसमें सहारनपुर भी सम्मिलित कर लें) शेष जिलों में १६८१ की अपेक्षा १६६१ में सं० मातृभाषी संख्या बढ़ी है ।

उत्तर–प्रदेश के जिलेवार संस्कृत–विद्यालयों तथा १६६१ में उन जिलों की सं० मातृभाषी संख्या को अधोलिखित चार वर्ग में रख जा सकता है ।

क– प्रति संस्कृत विद्यालय/महाविद्यालय, औसतन एक सं०मातृभाषी वाले चार जिले (३६–३६)

क्र० स०	जिले	संस्थाओं की संख्या	सं०मातृभाषियों की संख्या (१६६१)	सं०मातृभाषियों का प्रति संख्या औसत
१	बिजनौर	२	२	१
२	पीलीभीत	५	५	१
३	बाराबंकी	६	६	१
४	मथुरा	२६	२६	१
	योग	**३६**	**३६**	**४**

ख– प्रति संस्कृत विद्यालय/महाविद्यालय औसतन एक से कम सं० मातृभाषी वाले १२ जिले (३२७ – १४३)

क्र० स०	जिले	संस्थाओं की संख्या	सं०मातृभाषियों की संख्या (१६६१)	सं०मातृभाषियों का प्रति संस्था औसत
१	मऊ–आजमगढ़	४४	४३	०.६७
२	बस्ती	४४	६	०.२२
३	इलाहाबाद	४२	४१	०.६७
४	पौड़ी	७	६	०.८५
५	नैनीताल	४	२	०.५०
६	फैजाबाद	५१	१३	०.२५

७	गोरखपुर	४८	१२	०.२५
८	पिथौरागढ़	४	१	०.२५
६	गाजीपुर	१६	१	०.०५
१०	मिरजापुर	१४	३	०.२१
११	बदायूँ	१७	११	०.६५
१२.	बाँदा	३३	४	०.१२
	योग	**३२७**	**१४३**	

ग प्रति संस्कृत विद्यालय/महाविद्यालय, औसतन एक से अधिक किन्तु ४ से कम सं०मातृभाषी वाले १४ जिले (२६०–६१५)

क्र० स०	जिले	संस्थाओं की संख्या	सं०मातृभाषियों की संख्या (१६६१)	सं०मातृभाषियों का प्रति संस्था औसत
१	एटा	११	४३	३.६०
२.	मुजफ्फर–नगर	४	१४	३.५०
३.	वाराणसी	१२१	३५३	२.८६
४	अलीगढ़	१५	४३	२.८०
५.	हरदोई	६	१७	१.८८
६	गाजियाबाद व मेरठ (६+२)	११	८	१.८८
७	देहरादून	१३	२३	१.७७
८	कानपुर–नगर	६	१५	१.६६
६	सहारनपुर	२१	३३	१.६०
१०	मैनपुरी	४	६	१.५०
११	देवरिया	५२	७२	१.३८
१२	रायबरेली	१४	५५	१.२५
१३	मुरादाबाद	१०	११	१.१०
	योग	२६०	६६५	

घ– प्रति संस्कृत–विद्यालय/महाविद्यालय, औसतन ११ से अधिक सं०मातृभाषी वाले १० जिले (१२०–३८००+४०११०)

क्र० स०	जिले	संस्थाओं की संख्या	सं०मातृभाषियों की संख्या (१९९१)	सं०मातृभाषियों का प्रति संस्था औसत
१	सीतापुर	१५	४०११६	२६७४.००
२	लखीमपुर	४	४२४	१०६.००
३	कानपुर–देहात	१२	८०४	६७.००
४	गौण्डा	१९	८३८	४४.१०
५	उन्नाव	८	२८३	३५.३७
६	प्रतापगढ़	३२	६४६	२६.५६
७	लखनऊ	६	१७७	२६.५०
८	बहराइच	८	१२६	१५.७५
९	बरेली	८	१०७	१३.४०
१०	टिहरी	१२०	६५	११.८७
	योग	१२०	३८००+४०११६	

ऊपर अंकित चारों वर्गों के विवरण से स्पष्ट है कि यद्यपि १९९१ की जनगणना में संस्कृत–मातृभाषी–संख्या में विशेष वृद्धि है किन्तु संस्कृत विद्यालयों की संख्या तथा उस जिले की सं०मातृभाषी संख्या में कोई सीधा पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है । इन संस्कृत–शिक्षण–संस्थाओं के शिक्षक–शिक्षणोत्तर कर्मचारी तथा विद्यार्थी जो सम्पूर्णानन्द–संस्कृत–विश्वविद्यालय की परीक्षा प्रति वर्ष देते हैं, कदाचित् संस्कृत–मातृभाषी नहीं हैं ।

संस्कृत–मातृभाषी बनाम अन्य मातृभाषी

पूर्व पृष्ठों में इंगित किया जा चुका है कि १९९१ की जनगणना में संविधान की आठवीं सूची की भाषाओं में से सर्वाधिक संख्या–वृद्धि (५२.९२ प्रतिशत) नेपाली मातृभाषियों में हुई है । भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची से इतर भाषाओं में से अंग्रेजी विगत दो सौ वर्षों के ऐतिहासिक प्रभाव के फलस्वरूप एक वर्ग विशेष की मातृभाषा, देश के शिक्षित वर्गों के बीच सर्वाधिक लोकप्रिय भाषा, तथा संविधान के अनुसार केन्द्र–सरकार व सर्वोच्च–न्यायालय की भाषा, तथा देश के कुछ भागों में राज्यभाषा के रूप में स्थापित है । इस संदर्भ में संविधान की आठवीं अनुसूची की भाषा संस्कृत तथा उस सूची से इतर भाषा अरबी के वर्ष १९६१ – १९९१ के आँकड़े देश में संस्कृत–मातृभाषियों की स्थिति इंगित करने में सहायक हो सकते हैं । वर्ष १९८१ की जनगणना में संस्कृत–मातृभाषियों की बहुत कम संख्या होने के कारण यहाँ केवल तीन जनगणना के आकड़ों के अनुसार विचार किया जा रहा है । इन जनगणना–वर्षो में देश में संस्कृत व अरबी मातृभाषियों की संख्या अधोलिखित थी :–

जनगणना वर्ष	मातृभाषी संख्या	
	संस्कृत	अरबी
१९६१	२५४४	१७८४०
१९७१	२२१२	२३३१८
१९९१	४९७३६	२१९००

स्पष्ट है कि देश में वर्ष १९६१ व १९७१ में अरबी–मातृभाषी, संस्कृत मातृभाषियों की अपेक्षा क्रमशः सात व साढ़ेदस गुना अधिक थे । यह अन्तर १९८१ में और भी बढ़ गया था । १९९१ में संस्कृत मातृभाषियों की संख्या (४९७३६), अरबी (२१९००) की अपेक्षा प्रथम दृष्ट्या दूने से भी अधिक है । किन्तु उत्तर–प्रदेश के संस्कृत–मातृभाषियों और अरबी–मातृभाषियों की संख्या को छोड़कर, देश के शेष भाग में अरबी–मातृभाषियों की संख्या

(२१६००–४६२६=)१६६७४, संस्कृत मातृभाषियों की संख्या (४६७३६–४४८४७=)४८८६ से लगभग चार गुना अधिक है। जनगणना वर्ष १६६१ में देश में संस्कृत मातृभाषियों की संख्या में से यदि उत्तर–प्रदेश के केवल एक जिले सीतापुर की संस्कृत–मातृभाषियों की संख्या को घटा दिया जाय तो देश के शेष भाग में ६६२० संस्कृत–मातृभाषी ही हैं जो अरबी भाषी के आधे से भी कम है।

देश में १६६१ की जनगणना में संस्कृत व अरबी, दोनों मातृभाषी युक्त जिलों की संख्या १६२ है। देश के १०२ जिलों में अरबी–मातृभाषी तो हैं किन्तु वहाँ संस्कृत–मातृभाषी एक भी नहीं है। इस प्रकार देश में कुल मिलाकर २६४ जिलों में अरबी भाषी हैं जबकि संस्कृत भाषी २७४ जिलों में ही हैं। देश के १६२ जिलों जहाँ संस्कृत–मातृभाषी के साथ ही अरबी–मातृभाषी भी हैं, में से १३३ जिलों में अरबी–मातृभाषियों की संख्या, संस्कृत–मातृभाषियों से अधिक है। देश की १६६१ की जनगणना के अनुसार अरबी–मातृभाषियों की संख्या से अधिक सं०मातृभाषियों की संख्या वाले पांच प्रदेश व केन्द्र शासित क्षेत्रों के आकड़े नीचे अंकित हैं।

अरबी से अधिक संस्कृत–मातृभाषी–संख्या के प्रदेश व जिले (१६६१ की जनगणना)

क्रं०	राज्य	राज्य में कुल जिले	सं.मा.भा. रहित अ.मा.भा. जिले (संख्या)	सं.मा.भा. सहित अ.मा.भा. जिले (संख्या)	अ.मा.भा. कुल जिले (संख्या)	अधिक अ.मा.भाषी संख्या के जिले (संख्या)	अधिक स.मा.भाषी संख्या के जिले (संख्या)	अरबी मातृ भाषी (संख्या)	संस्कृत मातृ भाषी (संख्या)
१	२	३	४	५	६	७	८	६	१०
१	हरियाणा	१६	२	४	६	२	१४	४६	५७५
२	मेघालय	५	–	१	१	–	१	१	८
३	चण्ड़ीगढ़	१	–	१	–	–	१	१०	४५
४	दिल्ली	१	–	१	–	–	१	४६२	५८७
५	उ०प्रदेश	६४	१०	३४	४४	२१	४३	४६२६	४४८४७

इन आंकड़ों में यद्यपि उत्तर–प्रदेश में सं०मातृभाषियों की संख्या अधिक प्रतीत होती है किन्तु वस्तुतः केवल एक सीतापुर जिले की सं० मातृभाषियों की संख्या ४०११६ के बिना शेष उत्तर–प्रदेश के ४७३१ सं०मातृभाषी और अरबी–मातृभाषियों की संख्या (४७३१–४६२६=१०५) लगभग बराबर ही है ।

दिल्ली की लगभग ६० लाख की जनसंख्या में अरबी–भाषियों से संस्कृत–मातृभाषियों की संख्या केवल ६५ अधिक है ।

देश के शेष प्रदेशों में अरबी–मातृभाषी, संस्कृत–मातृभाषियों से संख्या में अधिक हैं, जैसा कि अधोलिखित आंकड़ों से स्पष्ट है :–

संस्कृत–मातृभाषी से अधिक अरबी–मातृभाषी संख्या के प्रदेश तथा जिलों की संख्या (१६६१)

क्र० सं०	प्रदेश	अ.मा.भा. (संख्या)	स.मा.भा. (संख्या)	प्रदेश में कुल जिले (संख्या)	अ.मा. भाषी युत जिले (संख्या)	सं.मा. भा. युत जिले (संख्या)	सं० मातृ भाषी रहित अ.मा.भा. जिले (संख्या)	संमा.मा. संख्या से अधिक अ.मा.भा. वाले जिले–संख्या
१	बिहार	३६०७	८०२	४२	३५	२५	१२	१६
२	कर्नाटक	२८७५	६६५	२०	१७	१६	२	६
३	महाराष्ट्र	२३०१	२७७	३०	२६	२३	६	१६
४	मध्यप्रदेश	१८५८	६५०	४५	३२	३६	५	२१
५	बंगाल	१७१३	४१	१७	१७	५	१३	४
६	तमिलनाडू	१०५६	१६६	२१	१६	११	६	८
७	राजस्थान	६८७	४३३	२७	२०	२४	६	८
८	आसाम	४६७	७	२३	२४	३	१२	१
६	हिमांचल प्र०	४८६	१६७	१२	५	११	१	३
१०	आन्ध्रप्रदेश	२६५	१६६	२३	१६	१६	७	५
११	उड़ीसा	२६७	७८	१३	८	१०	४	४
१२	केरल	२४३	३१	१४	१२	७	६	४
१३	गुजरात	१२६	८१	१६	३	११	१	२
१४	पंजाब	६३	२६	१२	५	६	२	३
१५	गोवा	२८	८	२	१	१	–	१

१६	पाण्डिचेरी	१७	२	–	२	२	–	१
१७	त्रिपुरा	६	१	३	२	१	१	१
१८	नागालैण्ड	६	१	७	१	१	–	१
१६	अरूणाचलप्रदेश	१	६	११	१	२	१	–
२०	अण्डमान	६	–	–	१	–	१	–
२१	दादर	२	–	–	१	–	१	–

इस क्रम में उल्लेखनीय है कि 'हरिप्रिया' भाषा के प्रदेश मणिपुर में यद्यपि १६७१ में २८ अरबी भाषी अंकित थे किन्तु संस्कृत–मातृभाषी नहीं थे। यहाँ १६६१ में भी वहाँ संस्कृत मातृभाषी नहीं है । त्रिपुरा, अरूणाचल प्रदेश, नागालैण्ड और अण्डमान निकोबार में १६७१ में यद्यपि अरबी भाषी थे किन्तु संस्कृत–मातृभाषी नहीं थे । अरूणाचल, त्रिपुरा, नागालैण्ड में १६६१ की जनगणना में सं०मातृभाषी अंकित हैं किन्तु अण्डमान निकोबार में नहीं।

अधोलिखित आठ प्रदेशों में १६७१ की अपेक्षा १६६१ की जनगणना में संस्कृत व अरबी दोनों के मातृभाषियों की संख्या में वृद्धि अंकित हुयी है:–

क्र० सं०	प्रदेश	वर्ष					
		१६७१		१६६१		प्रतिशत वृद्धि	
		सं.मा.भा.	अ.मा.भा.	सं.मा.भा.	अ.मा.भा.	सं.मा.भा.	अ.मा.भा.
१	बिहार	३५०	३३६३	८०२	३६०७	२२६.१०	११५.१०
२	हरियाणा	४०	३०	५७५	४६	१४३७.६०	१५३.३३
३	हि०प्रदेश	८४	८६	१६७	४८६	१६८.८०	५४६.५०
४	म० प्रदेश	६१	८६०	६५०	१८५८	७१४.३०	२०८.७६
५	महाराष्ट्र	१५५	१५६०	२७७	२३०१	१७८.७०	१४४.७०
६.	उ०प्रदेश	५०८	१६५७	४४८४७	४६२६	८८२८.१०	२३६.४०
७	चण्डीगढ़	३	१	४५	१०	१५००.००	१०००.००
८	दिल्ली	६४	४३	५८७	४६२	६२४.५०	११४४.१८

यद्यपि इन आठ प्रदेशों में संस्कृत और अरबी दोनों के मातृभाषियों की संख्या में वृद्धि हुई है किन्तु केवल चण्डीगढ़, हरियाणा और उत्तर–प्रदेश

में अरबी की अपेक्षा संस्कृत–भाषियों की संख्या अधिक है । उल्लेखनीय है कि उत्तर–प्रदेश के बारे में गत पृष्ठों में दिये गये विश्लेषण से स्पष्ट है कि वहाँ वृद्धि वस्तुतः उतनी नहीं हैं जैसी कि प्रथम दृष्ट्या प्रतीत होती है ।

शेष पाँच प्रदेशों में अपेक्षाकृत अरबी भाषियों की ही संख्या में वृद्धि हुई है जैसा नीचे अंकित विवरण से स्पष्ट है :–

१ बिहार में सं० मातृभाषी में ३५० से ८०२ (२२६.१०%) और अरबी मातृभाषी में ३३६३ से ३६०७ (११५.१०%) की वृद्धि होने पर भी अरबी–मातृभाषी–संख्या, संस्कृत–मातृभाषी संख्या की लगभग पांच गुना (४८७%) है ।

२ हिमांचल–प्रदेश में १६७१ में दोनों मातृभाषियों की संख्या (८४–८६) लगभग बराबर थी किन्तु १६६१ सं०मातृभाषियों की लगभग दो गुना (६७.८०%) और अरबी मातृभाषियों की लगभग साढ़े चार गुना (४४०.५०%) वृद्धि के फलस्वरूप अरबी मातृभाषी (४८६), सं० मातृभाषियों से पौने तीन गुना अधिक है।

३ मध्य–प्रदेश में सं०मातृभाषियों की संख्या में (६१ से ६५०) सात गुना किन्तु अरबी–भाषियों में (८६०–१८५८) दो गुना ही वृद्धि होने पर भी, अरबी–भाषी पौने तीन गुना अधिक है।

४ महाराष्ट्र में सं०मातृभाषियों की अपेक्षा अरबी–भाषी १६७१ में दस गुना (१५५–१५६०) अधिक थे। यहाँ सं०मातृभाषियों में ७६% व अरबी मातृभाषियों में ४५% (लगभग दूनी) वृद्धि होने पर भी, अरबी–भाषी आठ गुना अधिक हैं।

५ दिल्ली जहाँ अरबी–मातृभाषी–संख्या, सं०मातृभाषी–संख्या से लगभग (६४–४३) आधी थी वहाँ १६६१ में सं०मातृभाषियों में

५२५% (लगभग सवा पांच गुना) किन्तु अरबी मातृभाषियों में १०४५% (लगभग ग्यारह गुना) वृद्धि हो जाने के फलस्वरूप अब संख्या क्रमशः ५८७–४६२ हो गई है। अर्थात् अरबी–मातृभाषियों की संख्या में अपेक्षाकृत अधिक–वृद्धि के फलस्वरूप अन्तर बहुत घट गया है।

अधोलिखित तीन–तीन प्रदेशों के दो वर्गो में से एक में वर्ष १६६१ में संस्कृत व अरबी दोनों के मातृभाषियों की संख्या १६७१ की अपेक्षा घटी और दूसरे में संस्कृत–मातृभाषी घटे और अरबी–मातृभाषी बढ़े हैं :–

(क) दोनों मातृभाषी घटे

क्र०	प्रदेश	वर्ष					
सं०		१६७१		१६६१		प्रतिशत कमी	
		सं.मा.भा.	अ.मा.भा.	सं.मा.भा.	अ.मा.भा.	सं.मा.भा.	अ.मा.भा.
१	तमिलनाडु	२५४	१२२८	१६६	१०५६	–३३.४६	–१४.००
२	प० बंगाल	१७१	२४५३	४१	१७१३	–७६.०२	–३०.१६
३	मेघालय	२०	१४२	८	१	–६०.००	–६६.३०

(ख) सं०मातृभाषी घटे हैं किन्तु अरबी मातृभाषी बढ़े हैं।

क्र०	प्रदेश	वर्ष					
सं०		१६७१		१६६१		प्रतिशत कमी	
		सं.मा.भा.	अ.मा.भा.	सं.मा.भा.	अ.मा.भा.	सं.मा.भा.	अ.मा.भा.
१	पंजाब	७७	३१	२६	६३	–६६.२३	२०३.२०
२	गोवा	२०	६	८	२८	–६०.००	३११.१०
३	पाण्डिचेरी	२०	१३	०२	१६	–६०.००	४६.१५

तीन–तीन प्रदेशों के ऊपर के दो वर्गो के आँकड़ों से स्पष्ट है कि –

१ तमिलनाडु, बंगाल और मेघालय में सं०मातृभाषी क्रमशः २५४, १७१ व २० से घटकर १६६, ४१ व ८ तथा अ०मातृभाषी १२२८, २४५३ व १४२ से घटकर १०५६, १७१३ और १ रह गये हैं। स्पष्टतः यहां अरबी–मातृभाषी–संख्या, सं०मातृभाषी संख्या, से कई गुना अधिक है। तमिलनाडु व प० बंगाल में सं०मातृभाषी संख्या में कमी का प्रतिशत भी अपेक्षाकृत अधिक हैं। केवल मेघालय में अरबी भाषी में संस्कृत मातृभाषी की अपेक्षा विशेष कमी आई है।

२ पंजाब में अरबी मातृभाषी बढ़ कर दूने हो गये हैं और सं०मातृभाषी घटकर तिहाई रह गये हैं।

३ गोवा में सं०मातृभाषी ४० प्रतिशत घटे हैं किन्तु अ०मातृभाषी ३११ प्रतिशत बढ़े हैं।

४ पाण्डिचेरी में सं०मातृभाषी १० प्रतिशत रह गये हैं किन्तु अ०मातृभाषी १३० प्रतिशत बढ़ गये हैं।

त्रिपुरा और नागालैण्ड में १६७१ में सं०मातृभाषी नहीं अंकित थे वहां १६६१ में अरबी–मातृभाषी संख्या ६–६ हो गयी है।

निम्नलिखित छः प्रदेशों में सं०मातृभाषियों संख्या में वृद्धि किन्तु अरबी भाषियों की संख्या में कमी हुई है।

क्र०	प्रदेश	वर्ष				प्रतिशत	
सं०		१६७१		१६६१		वृद्धि	कमी
		संमाभा	अमाभा	संमाभा	अमाभा	संमाभा	अमाभा
१	कर्नाटक	१११	६६०२	६६५	२८७४	६३६.१०	७०.६०
२	उड़ीसा	१०	५४२	७८	२६७	७८०.००	५०.७०
३	गुजरात	३८	८०३	८१	१२६	२१३.१५	८४.३०
४	आंध्र–प्रदेश	४५	४३७	१६६	२६५	४४२.२०	३२.४६

५	राजस्थान	११५	३३५	४४३	१८७	३८५.२०	४४.१७
६	केरल	६	१५२०	३१	२४३	५१६.६०	८४.०१
	योग	३२५	१३५२६	१५२७	३६६३		

इन छः प्रदेशों के आँकड़े इंगित करते हैं कि जनगणना वर्ष १६७१ की अपेक्षा १६६१ में :–

१ इन छः प्रदेशों में १६७१ में कुल ३२५ सं०मातृभाषी और १३५२६ अरबी मातृभाषी थे जो १६६१ में क्रमशः १५२७ व ३६६३ हो गये है। अर्थात् सं०मातृभाषी की संख्या में पांच गुना वृद्धि हुई है और अरबी–मातृभाषी घटकर तिहाई के लगभग रह गये है। परन्तु वर्तमान में अरबी–मातृभाषी (३६६३) सं०मातृभाषियों (१५२७) से ढाई गुना अधिक हैं।

२ राजस्थान को छोड़कर शेष पाँच प्रदेशों में १६७१ व १६६१ के दोनों गणना वर्षो में अरबी–मातृभाषी, सं०मातृभाषियों से अधिक है।

३ इन प्रदेशों में से १६७१ की गणना में सर्वाधिक सं०मातृभाषी और न्यूनतम अरबी मातृभाषी (क्रमशः ११५ व ३३४) राजस्थान में थे, जहाँ १६६१ में सं०मातृभाषी लगभग चार गुना बढ़े (११५ से ४४३) किन्तु अरबी मातृभाषी घटकर (३३५ से १८७) लगभग आधे हो गये। केवल राजस्थान में १६६१ में अरबी–मातृभाषी, संस्कृत–मातृभाषी से कम हैं। शेष प्रदेशों मे अरबी–मातृभाषी दोनों वर्षो में अधिक है।

४ कर्नाटक में दोनों गणना वर्षो में सर्वाधिक अरबी मातृभाषी रहे जहाँ १६७१ के ६६०२ अ०मातृभाषी ७० प्रतिशत घटकर १६६१ में २८७५ हैं, किन्तु सं०मातृभाषी १११ से सवा छः गुना (६२६.१० प्रतिशत) बढ़कर ६६५ हो गये। अ०मातृभाषी संख्या में इतनी घटोत्तरी व सं०मातृभाषी संख्या में बढ़ोतरी होने पर भी अ०मातृभाषी, सं०मातृभाषी से चार गुना (६६५–२८७५) अधिक हैं।

५ आन्ध्र में सं०मातृभाषी–संख्या में चार गुना वृद्धि होने (४५–१६६) और अरबी–मातृभाषी संख्या दो तिहाई रह जाने (४३७–२६५) पर भी अरबी–मातृभाषी–संख्या, सं०मातृभाषी–संख्या (१६६–२६५) से ड्योढ़ी है।

६ शेष तीन प्रदेशों केरल, उड़ीसा, गुजरात में १६७१ में सं०मातृभाषी– संख्या छः, दस व अड़तीस थी जो १६६१ में बढ़कर क्रमशः ३१, ७८ व ८१ हो गई। इसी अवधि में इन्हीं प्रदेशों में १६७१ की अरबी–मातृभाषी–संख्या क्रमशः १५२०, ५४२ व ८०३ के स्थान पर घटकर १६६१ में २४३, २६७ व १२६ हो गई। अर्थात् संस्कृत–मातृभाषी–संख्या बढ़ने व अरबी–मातृभाषी घटने पर भी संस्कृत–मातृभाषी कम हैं।

किसी प्रदेश में किसी मातृभाषी वर्ग की संख्या, उसमें बढ़ोत्तरी–घटोत्तरी या उनका प्रतिशत एक स्थिति इंगित करता है किन्तु प्रति दस लाख जनसंख्या पर विभिन्न भाषा–भाषियों की प्रदेशवार संख्या, स्थिति को और अधिक स्पष्ट करती है। संस्कृत व अरबी दोनों मातृभाषियों की १६६१ की जनगणना में प्रतिदस लाख जनसंख्या के अनुसार निम्नलिखित पांच प्रदेशों में संस्कृत भाषी अधिक हैं।

वर्ष १६६१ की जनगणना के आधार पर प्रति दस लाख की जनसंख्या पर मातृभाषियों की स्थिति

क्र०सं०	प्रदेश	संस्कृत–मातृभाषी	अरबी–मातृभाषी
१	उत्तर–प्रदेश	३२२.३७	३३.२५ (१० गुना)
२	हरियाणा	३५.६७	२.७० (१३ गुना)
३	चण्डीगढ़	७०.००	१५.५० (४.५ गुना)
४	अरूणाचल प्रदेश	६.६०	१.१० (७ गुना)
५	मेघालय	४.५०	०.५० (१० गुना)

ऊपर दिये गये विवरण से स्पष्ट है कि अरबी भाषियों की अपेक्षा सं०मातृभाषी हरियाणा में तेरह गुना, उत्तर–प्रदेश व मेघालय में दस गुना, अरूणाचल में सात गुना तथा चण्डीगढ़ में साढ़े चार गुना अधिक हैं।

प्रति दस लाख जनसंख्या पर संस्कृत–मातृभाषियों की अपेक्षा अधिक अ०मातृभाषियों की संख्या वाले १८ प्रदेशों का अवरोही–क्रम–विवरण इस प्रकार है :–

		प्रति दस लाख जनसंख्या पर स्थिति		
क्र० सं०	प्रदेश	अरबी– मातृभाषी	संस्कृत– मातृभाषी	संस्कृत की अपेक्षा अरबीमातृभाषी अधिक
१	हिमांचल–प्रदेश	६३.६०	३२.२०	३ गुना
२	कर्नाटक	६३.६०	१५.४०	४ गुना
३	बिहार	४५.२०	६.२०	५ गुना
४	गोवा	४२.२०	१२.००	साढ़े तीन गुना
५	महाराष्ट्र	२६.१०	३.५०	आठ गुना
६	मध्य–प्रदेश	२८.००	६.८०	ढ़ाई गुना
७	पश्चिमी–बंगाल	२५.१०	०.६०	४० गुना
८	आसाम	२२.१०	१.२	१६ गुना
६	पाण्डिचेरी	२१.००	४.६५	४ गुना
१०	तमिलनाडु	१८.६०	३.००	६ गुना
११	राजस्थान	१५.६०	६.८०	२१/४ गुना
१२	उड़ीसा	८.४०	२.५०	३१/४ गुना
१३	केरल	८.३०	१.००	८ गुना
१४	पंजाब	८.००	१.२८	७ गुना
१५	नागालैण्ड	४.६०	०.८०	६ गुना
१६	आन्ध्र–प्रदेश	४.४०	२.६०	११/२ गुना
१७	गुजरात	४.००	१.६६	२ गुना
१८	त्रिपुरा	३.२०	०.३०	१० गुना

स्पष्ट है कि सं०मातृभाषियों से अ०मातृभाषी बंगाल में ४० गुना, आसाम में १६ गुना, त्रिपुरा में १० गुना, केरल व महाराष्ट्र में ८ गुना, पंजाब में ७ गुना, नागालैण्ड व तमिलनाडु में ६ गुना, बिहार में ५ गुना, कर्नाटक में ४ गुना, गोवा में साढ़े तीन गुना, हिमांचल–प्रदेश व उड़ीसा में ३ गुना, मध्य–प्रदेश में ढ़ाई गुना, राजस्थान में सवा दो गुना, और आन्ध्र में डेढ़ गुना अधिक हैं। अरबी भाषियों का सर्वाधिक घनत्व हिमांचल–प्रदेश, कर्नाटक, बिहार, गोवा तथा महाराष्ट्र में है।

पुनरावृत्ति होने पर भी यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि यद्यपि उत्तर–प्रदेश में प्रति दस लाख जनसंख्या के हिसाब से भी संस्कृत मातृभाषियों की संख्या (३२२.३७) अधिक प्रतीत होती है किन्तु उत्तर–प्रदेश के केवल एक जिले सीतापुर की सं०मातृभाषी संख्या घटाकर देखने से प्रदेश में संस्कृत और अरबी भाषियों की संख्या में पर (४६२० अ०मातृभाषी–४८८६ सं०मा०भाषी) केवल २६६ का ही अन्तर है।

वर्ष १६७१ व १६६१ की प्रदेशवार संस्कृत व अरबी मातृभाषियों और उनके जिलों की संख्या तथा वहीं की प्रति दस लाख जनसंख्या पर दोनों भाषियों के १६६१ के आंकड़ों के विश्लेषण से यह तथ्य उभर कर सामने आते हैं कि –

(१) आठ प्रदेशों में संस्कृत व अरबी मातृभाषी दोनों की संख्या में वृद्धि हुई :

१– उत्तर–प्रदेश व हरियाणा जहाँ सं०मातृभाषी संख्या की वृद्धि क्रमशः ८८२८.१% व १४३७.६% है, वहां अरबी–मातृभाषी–संख्या वृद्धि क्रमशः २३६.४% व १५३.३३% है । किन्तु प्रति दस लाख जनसंख्या पर १६६१ में सं० मातृभाषी–संख्या, अरबी–मातृभाषी से इन प्रदेशों में क्रमशः दस गुना व तेरह गुना अधिक है ।

२— हिमाचल—प्रदेश व मध्य—प्रदेश में सं०मातृभाषी—संख्या—वृद्धि क्रमशः १६८.८% व ७१४.३% तथा अरबी—मातृभाषी—संख्या में वृद्धि क्रमशः ५४६.५०% व २०८.७६% है किन्तु इन दोनों प्रदेशों में प्रति दस लाख जनसंख्या में अ०मातृभाषी, सं०मातृभाषी से तीन गुना व ढ़ाई गुना अधिक हैं । स्पष्ट है कि हिमाचल—प्रदेश में १६६१ में सं०मातृभाषी संख्या की प्रतिशत—वृद्धि, अरबी—मातृभाषी—संख्या की प्रतिशत वृद्धि के १/६ के लगभग है, किन्तु उसके विपरीत मध्य—प्रदेश की सं०मातृभाषी—संख्या—वृद्धि का प्रतिशत, अरबी की अपेक्षा ६ गुना अधिक है ।

३— बिहार में सं०मातृभाषियों की संख्या में २२६.१% और अरबी मातृभाषियों में ११५.१% की वृद्धि हुई है, फिर भी वहां प्रति दस लाख जनसंख्या के आधार पर सं०मातृभाषी से अरबी मातृभाषी संख्या पाँच गुना अधिक है । इसके विपरीत महाराष्ट्र जहाँ सं०मातृभाषी संख्या में १७८.७% तथा अरबी—मातृभाषी में १४४.७% वृद्धि हुई है, वहाँ प्रति दस लाख जनसंख्या पर सं०मातृभाषी से अरबी—मातृभाषी संख्या आठ गुना अधिक हैं ।

४— चण्डीगढ़ व दिल्ली में सं०मातृभाषी संख्या में क्रमशः १५००% व ६२४% की तथा अरबी में क्रमशः १०००% व ११४४% की वृद्धि हुई है, वहां प्रति दस लाख जनसंख्या पर चण्डीगढ़ में ७० सं०मातृभाषी व १५.५० अरबी—मातृभाषी तथा दिल्ली में ६२.३० सं०मातृभाषी व ५२.२० अरबी—मातृभाषी हैं ।

(२) तीन प्रदेशों में संस्कृत मातृभाषी व अरबी मातृभाषी दोनों की संख्या घटी —

१— पश्चिमी बंगाल में संस्कृत—मातृभाषी (—) ७६.०२% तथा अरबी मातृभाषी (—) ३०.१६% घटे हैं, फिर भी प्रति दस—लाख

जनसंख्या पर सं०मातृभाषी से अरबी–मातृभाषी ४० गुना अधिक है । अपेक्षाकृत यह अत्यधिक अन्तर सं०मातृभाषी संख्या में घटोतरी ढाई गुना अधिक होने के कारण है ।

२– तमिलनाडु में संस्कृत–मातृभाषी संख्या की घटोतरी (–) ३३. ४६% तथा अरबी मातृभाषी में (–) १४% है । अर्थात् संस्कृत मातृभाषी की घटोतरी, अरबी–मातृभाषी की अपेक्षा दो गुने से भी अधिक होने के कारण, दोनों भाषियों की संख्या में अन्तर बढ़ गया है । यहाँ प्रति दस–लाख जनसंख्या पर १८.६० अरबी–मातृभाषी व ३.०० सं०मातृभाषी हैं । अर्थात् सं०मातृभाषी से अरबी मातृभाषी छः गुना अधिक हैं ।

३. मेघालय में अरबी–मातृभाषी १४२ से घटकर एक तथा सं०मातृभाषी २० से आठ रह गये हैं ।

(३) तीन प्रदेशों में सं०मातृभाषी घटे परन्तु अरबी मातृभाषी बढे :

पंजाब, गोवा, पांडिचेरी में सं०मातृभाषी क्रमशः (–) ६६.०३%, (–)६०% व (–)६०% घटे तथा अरबी मातृभाषी २०३.२०%, ३११% १४६.१५% हो गये हैं । प्रति–दस–लाख –जनसंख्या पर इन तीनों प्रदेशो में सं०मातृभाषी की अपेक्षा अरबी–मातृभाषी क्रमशः सात गुना, साढ़े तीन गुना व चार गुना अधिक हैं ।

(४) छः प्रदेशों में सं०मातृभाषी बढ़े किन्तु अरबी मातृभाषी घटे :

सं०मातृभाषियों की वृद्धि उड़ीसा में ७८०%, आन्ध्र में ४४२.२%, राजस्थान में ३८५.२%, केरल ५१६.६१%, गुजरात में २१३.१५% तथा कर्नाटक में ६२६.१% हुई है किन्तु यहाँ अरबी मातृभाषी में घटोतरी क्रमशः ५०.७%, ३२.४६%. ४४.१७%, ८४%, ८४.३% तथा ७०.६% हुई है । उल्लेखनीय यह है कि प्रति–दस–लाख–जनसंख्या पर सं०मातृभाषी से अरबी–मातृभाषी आठ गुना केरल में, चार गुना

कर्नाटक में, सवा तीन गुना उड़ीसा में, सवा दो गुना राजस्थान में, दो गुना गुजरात में, डेढ गुना आन्ध्र प्रदेश में अधिक हैं ।

प्रदेशों में संस्कृत–मातृभाषियों व अरबी–मातृभाषियों की संख्या तथा प्रति दस लाख की जनसंख्या में वहाँ उनकी संख्या के सिंहावलोकन करने के पश्चात् देश के उनतालिस जिलों जहाँ चारों जनगणना वर्षों में सं०मातृभाषी रहे हैं, में अरबी व संस्कृत मातृभाषियों की संख्या के विश्लेषण पर भी विचार करना आवश्यक है । जनगणना वर्ष १६६१ में इन उनतालिस जिलों में से छः जिलों करनाल, रायगढ़, नरसिंहपुर, टुमकुर, होशियारपुर तथा अमृतसर में कोई अरबी मातृभाषी नहीं है । ग्यारह जिलों में अरबी–मातृभाषियों की अपेक्षा संस्कृत मातृभाषी अधिक हैं और इक्कीस जिलों में सं०मातृभाषियों की अपेक्षा अ०मातृभाषी अधिक हैं, व एक जिले उस्मानाबाद में एक सं०मातृभाषी व एक अ०मातृभाषी हैं, अर्थात् दोनों बराबर हैं ।

अरबी–मातृभाषी–संख्या से अधिक सं०मातृभाषी वाले ग्यारह जिलों में प्रति दस लाख जनसंख्या के आधार पर दोनों के अन्तर की सूची इस प्रकार है :–

क्रमांक	जिला	प्रति दस लाख जनसंख्या पर अरबी–मातृभाषी से अधिक सं०भामृभाषी
१	उज्जैन	२६.६८
२	चम्पारन	१५.८७
३	अम्बाला	१०.७४
४	दिल्ली	१०.१०
५	हिसार	७.०५
६	शोलापुर	५.८२
७	अजमेर	४.५४
८	शिमोगा	४.२०
६	सहारनपुर	२.६४
१०	पूर्वी–गोदावरी	२.२०
११	उ०–अर्काट	०.६६

प्रति दस लाख जनसंख्या पर अरबी मातृभाषी की अपेक्षा सं. मातृभाषी अधिक के इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि :–

१ उत्तरी–अर्काट में संस्कृत–मातृभाषी व अरबी–मातृभाषियों की संख्या लगभग बराबर है और अन्तर नाम–मात्र का है ।

२. सर्वाधिक अन्तर चार स्थानों उज्जैन, चम्पारन, अम्बाला, और दिल्ली में है जहाँ २६ से ११ तक सं०मातृभाषी अधिक है ।

३. शेष छः जिलों में यह अन्तर आठ से तीन के बीच है ।

संस्कृत–मातृभाषी से अधिक अरबी मातृभाषी संख्या के इक्कीस जिले (प्रति दस लाख जनसंख्या पर) :

क्रमांक	जिला	प्रति दस लाख जनसंख्या पर सं०मातृभाषियों से अरबीमातृभाषी अधिक
१	चिकमंगलूर	११०१.३०
२	शिमला	३७६.२६
३	हसन	१६५.७१
४	धनवाद	११६.६८
५	गया	६४.६५
६	कांगड़ा	४८.५५
७	सारण	३२.८७
८	थञजवुर	२४.४६
६	बम्बई	२२.३२
१०	मद्रास	२०.८४
११	त्रिचुरापल्ली	१८.३२
१२	हैदराबाद	१७.३२
१३	सिंहभूमि	१६.७६
१४	कोयम्बटूर	१६.५५

१५	बंगलूर	१६.५१
१६	नासिक	१४.०२
१७	वाराणसी	१०.१०
१८	बीकानेर	२.४७
१९	दरभंगा	२.१९
२०	त्रिवेन्द्रम	२.०३
२१	सलेम	०.७७

इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि :–

१ सर्वाधिक अन्तर चिकमंगलूर में है जहाँ सं०मातृभाषी से अ०मातृभाषी प्रति दस लाख जनसंख्या पर ११०१.३० अधिक है। शिमला, हसन व धनवाद में यह अन्तर तीन अंकों तक है जहां क्रमशः ३७६.२६, १६५.७१, ११६.६८ अरबी मातृभाषी अधिक है।

२ गया, कांगड़ा, सारण, थञ्जवुर, बम्बई व मद्रास में प्रति दस लाख जनसंख्या पर सं०मातृभाषी से अ०मातृभाषी २० से लेकर ६५ तक अधिक हैं।

३ त्रिचुरापल्ली, हैदराबाद, सिंहभूमि, कोयम्बटूर, बंगलूर, नासिक सारण व वाराणसी (सात जिलों) में प्रति दस लाख जनसंख्या पर सं०मातृभाषी से अ०मातृभाषी १० से १९ के बीच अधिक है ।

४ बीकानेर, दरभंगा, त्रिवेन्द्रम व सलेम में प्रति दस लाख जनसंख्या पर सं०मातृभाषी से अ०मातृभाषी ०.७७ से २.४७ तक अधिक है ।

इन उनतालिस जिलों के आँकड़ों के समग्र विश्लेषण से ज्ञात होता है कि–

१ अरबी–मातृभाषी अधिक घनत्व के जिलों की संख्या, संस्कृत मातृभाषियों के अधिक धनत्व के जिलों की संख्या से लगभग (२१–११) दूनी है ।

२ अधिक सं०मातृभाषी घनत्व के ११ जिलों में अ०मातृभाषी की अपेक्षा सं०मातृभाषी का सर्वाधिक अन्तर उज्जैन (२५.६८) व चम्पारन (१५.८७) में तथा न्यूनतम अन्तर उत्तरी–अर्काट (०.६६) व शिमोगा (०.४२) में है ।

३ अधिक अरबी सं०मातृभाषी के घनत्व के २२ जिलों में से छः जिलों में सर्वाधिक अन्तर ११०१.३० से ४८.५५ तक है, जो ऊपर के बिन्दु दो के सं०मातृभाषी के अन्तर की अपेक्षा बहुत अधिक है ।

४ अरबी–मातृभाषी की अपेक्षा अधिक सं०मातृभाषी घनत्व के सर्वाधिक अन्तर के जिलों में (ऊपर के बिन्दु दो में उल्लिखित) उज्जैन (२५.६८) तथा चम्पारन (१५.८७) के बीच की संख्या में सात अ०मातृभाषी जिले थञ्जवुर, बम्बई, मद्रास, त्रिचुरापल्ली, हैदराबाद, कोयम्बटूर व बंगलूर (२४.४६ से १६.५१) हैं ।

५ प्रति दस लाख जनसंख्या पर सं०मातृभाषी का घनत्व अरबी–मातृभाषी से दिल्ली में १०.१० तथा अम्बाला में १०.७४ अधिक हैं ।

६ नासिक व सारण में प्रति दस लाख जनसंख्या पर सं०मातृभाषी से अ०मातृभाषी क्रमशः १४.०२ तथा १३.८३ अधिक हैं । हिसार, शोलापुर, अजमेर में अ०मातृभाषी क्रमशः ७.०५, ५.४८ व ४.५४ अधिक हैं ।

७ सहारनपुर व पूर्वी–गोदावरी में सं०मातृभाषी क्रमशः २.६४ व २.०० अधिक है । बीकानेर, दरभंगा व त्रिवेन्द्रम में अ०मातृभाषी क्रमशः २.४७, २.१६ व २.०३ अधिक है ।

८ उत्तरी–अर्काट, शिमोगा में दस लाख की जनसंख्या में अरबी मातृभाषी से सं०मातृभाषी क्रमशः ०.६६ व ०.४२ अधिक है अर्थात् लगभग बराबर ही है । इसके विपरीत सलेम में अ०मातृभाषी ०.७७ अधिक है अर्थात् यहाँ भी सं०मातृभाषी व अ०मातृभाषी लगभग बराबर है ।

६ उस्मानाबाद में अरबी–संस्कृत मातृभाषी बराबर हैं (१–१) ।

अतः जनगणना के आकड़ों के आधार पर संस्कृत व अरबी मातृभाषियों के बारे में संक्षेप में निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि :–

१ देश में अरबी–मातृभाषी, संस्कृत–मातृभाषियों से १६६१में सात गुना तथा १६८१ में साढ़े दस गुना अधिक थे । जनगणना १६६१ में यद्यपि प्रथम दृष्ट्या सं०मातृभाषी अधिक प्रतीत होते हैं, किन्तु वस्तुतः संस्कृत–मातृभाषी, अरबी–मातृभाषी के चौथाई ही है ।

२ विगत चार जनगणना वर्षो में कुल मिलाकर ३२८ जिलों में सं०मातृभाषी रहें हैं । इन ३२८ जिलों में से :–

(क) जनगणना वर्ष १६६१ में २६३ जिलों में सं०मातृभाषी तथा २६४ जिलों में अरबी–मातृभाषी हैं ।

(ख) एक सौ दो जिलों में अ०मातृभाषी हैं, किन्तु सं०मातृभाषी नहीं हैं ।

(ग) एक सौ बानवे जिलों जहाँ सं०मातृभाषी व अ०मातृभाषी दोनों हैं, में से १३३ जिलों में अ०मातृभाषियों की संख्या सं०मातृभाषियों से अधिक है ।

३ (क) उत्तर–प्रदेश को छोड़कर, देश के शेष भाग के सं०मातृभाषियों की कुल संख्या, देश के अ०मातृभाषियों की कुल संख्या के आधे (१६०२–२१६००) से भी कम है ।

(ख) उत्तर–प्रदेश की सं०मातृभाषी व अ०मातृभाषियों की संख्या, देश में उनकी कुल संख्या से हटा देने पर, शेष देश में सं०मातृभाषी संख्या, अ०मातृभाषियों (१६६७४–४८८६) की चौथाई है ।

(ग) सीतापुर (उत्तर–प्रदेश) की सं०मातृभाषियों संख्या, प्रदेश की सं०मातृभाषियों की संख्या से घटा देने पर, उत्तर–प्रदेश में सं०मातृभाषी की संख्या, अ०मातृभाषी संख्या से मात्र १०५ अधिक है, अर्थात् लगभग बराबर ही है ।

४ देश के ३६ जिलों, जहां चारों गणना वर्षो में सं०मातृभाषी रहे हैं, में से करनाल, राजगढ़, नरसिंहपुर, टुमकुर, होशियारपुर तथा अमृतसर में १६६१ की गणना में अ०मातृभाषी नहीं हैं । ग्यारह जिलों में सं०मातृभाषी, अ०मातृभाषियों से अधिक है, किन्तु इक्कीस (लगभग दूने) जिलों में सं०मातृभाषी कम है, और एक जिले में बराबर है । अर्थात ५३.८४% जिलों में अरबी मातृभाषी अधिक हैं ।

५ जिन ग्यारह जिलों में सं०मातृभाषी अधिक हैं, वहां प्रति दस लाख जनसंख्या पर २५.६८ तक का ही अधिकतम अन्तर है किन्तु २१ जिलों जहाँ अ०मातृभाषी अधिक है, यह अन्तर ११०१.३० तक है।

६ वाराणसी में प्रति दस लाख जनसंख्या पर, अ०मातृभाषी की संख्या सं०मातृभाषी से १०.१० अधिक है ।

७ उत्तरी–अर्काट तथा शिमोगा में अ०मातृभाषी व सं०मातृभाषी लगभग बराबर है ।

इस सब तथ्यों के आधार पर यह कहना समीचीन होगा कि संस्कृत–मातृ–भाषियों के लुप्त होने के आसन्न–संकट की वास्तविकता की ओर उसके भाषियों का ध्यान आकृष्ट हुआ तो प्रतीत होता है किन्तु अन्य भाषा–भाषियों, विशेषतः विदेशी भाषाओं–जिसमें अंग्रेजी–भाषी सर्वाधिक हैं – के संगठित प्रयास के सम्मुख, किसी नकारात्मक–द्वेषात्मक दृष्टिकोण से

नहीं, अपितु, संस्कृत–मातृभाषा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण से, अधिक प्रयास की अपेक्षा है ।

हमारे पूर्व प्रकाशन में १९८१ की जनणना के भाषाई विश्लेषण में उत्तर–प्रदेश में १९८९–९० के बजट में आयोजनेतर अनुदान में अरबी पाठशालाओं के लिए रू.४.१३ करोड़ तथा संस्कृत पाठशालाओं के लिए रूपये ९.१३ करोड़ तथा आयोजनागत अनुदान में अरबी मदरसों को रूपया दस लाख तथा संस्कृत पाठशालाओं को रूपये ५ लाख उन्नीस हजार के प्राविधान का उल्लेख था । स्पष्ट है कि संस्कृत के लिए बजट का प्राविधान आयोजनेतर में अरबी से दूना तथा आयोजनागत में आधा है । अरबी भाषा के लिए आयोजनगत अनुदान संस्कृत से दूना कदाचित संस्कृत मातृभाषियों से अरबी–मातृभाषियों की संख्या दूनी होने के कारण किया गया होगा ।

इसी क्रम में उत्तर–प्रदेश में अरबी–भाषी शिक्षा के लिए किये गये कार्यों में उदाहरणस्वरूप गाजियाबाद जिले का विवरण दिया जा रहा है । अन्य जिलों की भाँति गाजियाबाद जिले में भी अरबी–भाषा व कुरआन की शिक्षा के लिए धर्मानुयायियों द्वारा अरबी मदरसा स्थापित किये गये हैं, जहाँ से मौलवी, कारीहाफिज और मुफ्ती के प्रमाण पत्र प्रदान किये जाते हैं । उत्तर–प्रदेश के देवबंद, लखनऊ, आजमगढ़, वाराणसी, सहारनपुर तथा देश की राजधानी दिल्ली के विश्वविद्यालय स्तर के प्रसिद्ध मदरसे न केवल भारत अपितु विदेशों में मान्यता–प्राप्त हैं, जहाँ विदेशों से भी परीक्षार्थी कुरआन व हदीस् पढ़ने आते हैं ।

स्वतंत्रता के पश्चात् पाँच मदरसे गाजियाबाद में स्थापति हुए हैं । मदरसा रहमानियाँ, हापुड़, जहां वर्तमानकाल में तीन सौ बालक व डेढ़ सौ बालिकायें पढ़ रहीं हैं, लगभग साठ वर्ष पूर्व स्थापित किया गया था । मदरसा इस्लामियां अराबिया खादिमुल इस्लाम, हापुड़ यद्यपि बाद में स्थापित हुआ, किन्तु वहाँ लगभग अब एक हजार विद्यार्थी हैं जिसके साथ एक इण्टर कालेज भी है । जिन विद्यार्थियों को आवश्यकता होती है उन्हें भोजन और

वस्त्र निःशुल्क प्रदान किये जाते हैं । मदरसा तालिमुर्रहमान, गढ़मुक्तेश्वर लगभग बीस वर्षो से स्थानीय व बाहरी विद्यार्थियों की सेवा कर रहा है । इसके साथ–साथ यहाँ एक प्राइमरी स्कूल भी चल रहा है । लगभग तीस वर्ष पूर्व टाउनवेट में स्थापित मदरसा अजजुललूम में चार सौ बालक–बालिकायें हैं । मदरसा इस्लामियां तालिमुलइस्लाम, पीपलहांडा और मदरसा सिद्दीकिया तालिमुलकुरआन वारसी में लगभग एक हजार सात सौ विद्यार्थी हैं । अभी चार–पांच वर्ष पूर्व स्थापित महमूदुलमदारिस, मसूरी में लगभग चार सौ विद्यार्थी हैं । इसके साथ भी एक प्राइमरी स्कूल है ।

इन मदरसों के अतिरिक्त गाजियाबाद नगर में कस्सावन और भूड़ में पुराने मदरसे हैं । कैला भट्टा में लगभग एक हजार विद्यार्थी हैं जहाँ मान्यता प्राप्त जूनियर हाई स्कूल भी साथ–साथ चल रहा है । कैला में भी मौलाना फारुखी का मदरसा नगर के अच्छे मदरसों में है । मिर्जापुर और विजयनगर में भी मदरसे चल रहें हैं ।

इन सभी मदरसों में विद्यार्थी से कोई शुल्क नहीं लिया जाता है अपितु जरूरतमंद विद्यार्थियों के लिए भोजन वस्त्रादि की व्यवस्था की जाती है । इन संस्थाओं का व्यय धर्मावलम्बियों द्वारा प्रदत्त उपहार और ज़कात द्वारा किया जाता है । इसके अतिरिक्त अधिकतर मस्जिदों में भी अरबी शिक्षा की व्यवस्था है । उल्लेखनीय है कि अभी हाल में लखनऊ के एक ख्याति प्राप्त अरबी विद्वान् का सम्मान एक अरब देश ने उनकी सेवाओं के लिए, एक करोड़ डालर की धनराशि देकर किया है और केवल उन्हें लखनऊ से ले जाने व वापस लाने के लिए एक चाटर्ड विमान भेजा था ।

सामान्यतः निहित स्वार्थी तत्त्वों द्वारा संस्कृत के प्रसार के क्रम में मुसलमानों व ईसाइयों की प्रतिकूल प्रवृत्ति का उल्लेख किया जाता है । बहुधा राजनैतिक उपकरण स्वरूप इस भावना का प्रयोग होता है किन्तु भारत सरकार द्वारा गठित संस्कृत–आयोग ने अपने पूर्ण दायित्व–बोध के साथ अपनी रिपोर्ट के अध्याय तीन प्रस्तर १५–१६ में लखनऊ में मुसलमान

लड़कियों और दक्षिण भारत में ईसाई व गैर–ब्राह्मणों द्वारा अपनी इच्छा से स्वतः बड़े पैमाने पर संस्कृत–अध्ययन किये जाने के तथ्यों को अंकित किया है ।

संविधान-सभा में राष्ट्रभाषा विषयक चर्चा में जब श्री नसिरूद्दीन जी बोलने के लिए खड़े हुए तो उनके मत से परिचित सभा के सदस्यों ने उनका मत संस्कृत के बारे में विशेषतः प्रकट करने के लिये कहा और उन्होंने संस्कृत को ही राष्ट्रभाषा बनाने का स्पष्ट मत व्यक्त किया । हमारे राष्ट्रीय नेता मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, फकरूद्दीन अली अहमद और न्यायाधीश छागला के मत इस बारे में सर्व–विदित हैं । बम्बई के गुलाम दस्तगीर, जो कई बार उत्तर–प्रदेश संस्कृत अकादमी की कार्यकारिणी के सदस्य रहें है, तथा मलिहाबाद, लखनऊ के श्री सैयद हुसैन जैसे बहुत लोग हैं जो संस्कृत की रोजी न खाकर, अपने धर्म पर भी दृढ़ रहते हुए संस्कृत–सेवा में रत हैं । श्री सैय्यद हुसैन के अनुसार देश के बँटवारे के कुछ समय ही बाद जब करपात्री जी महाराज की संस्था में वह अपने एक मुसलमान साथी सहित शिक्षा प्राप्त कर रहे थे तो सहपाठी हास्य–व्यंग में गुरू जी से यह कहते थे कि ये तो पाकिस्तान चले जायेंगे इन्हें संस्कृत पढ़ाने से क्या लाभ ? गुरू जी महाराज कहते थे कि जहाँ भी यह रहेंगे, यह प्रकाशित होंगे । श्री सैय्यद के वह दूसरे साथी आज ईराक में हैं और अपने गुरु जी व उनकी प्रदत्त शिक्षा को आज भी बडे आदर भाव से स्मरण रखते और जीवन में उतारते हैं । माध्यमिक–शिक्षा व उच्च–शिक्षा के क्षेत्र में भी ऐसे मुसलमान संस्कृत–शिक्षकों की संख्या आज बहुत है । यह भी उल्लेखनीय हे कि गांधी जी व सरदार पटेल ने अपने जेल में रहने के समय में सातवलेकर जी से पत्रचार द्वारा संस्कृत पढ़ी थी ।

उत्तर–प्रदेश के संस्कृत–अध्यापकों के वाराणसी में राजकीय आयोजन में (१६६२) प्रदेश के शिक्षा मंत्री की उपस्थिति में केन्द्रीय विद्यापीठ के निदेशक तथा बाद में सम्पूर्णनन्द संस्कृत विद्यालय के कुलपति, ने अपने

सम्बोधन में केवल तीन व्यक्तियों द्वारा की गई संस्कृत– सेवा का तथ्यों के आधार पर उल्लेख किया था । पहला डा० सम्पूर्णानन्द, पूर्व मुख्यमंत्री उत्तर–प्रदेश, दूसरा श्री लाल बहादुर शास्त्री और तीसरा श्रीमती इन्दिरा गांधी । इस पुस्तक के लिखते समय भारतीय प्रशासकीय सेवा के एक वरिष्ट अधिकारी को जब वह तथ्य बताये गये तो उनका मत था कि श्रीमती इन्दिरा गांधी के इतने बढ़े योगदान को कोई जानता ही नहीं हैं, अतः इन तथ्यों को अंकित किया जाना इतिहास के साथ न्याय होगा अन्यथा संस्कृत सेवा के ऐसे अनछुए पहलू लोग कभी न जान पायेंगे ।

यह उल्लेखनीय है कि बैठक की अध्यक्षता भारतीय जनता पार्टी की तत्कालीन सरकार के शिक्षा मंत्री कर रहे थे, तथ्य इंगित करने वाले महानुभाव ब्राह्मण थे और उल्लिखित तीनों महानुभाव गैर–ब्राह्मण थे ।

अतः सभी ऐतिहासिक, पारिस्थितिक व सांख्यकीय तथ्यों के क्रम में अन्ततः यह कहा जा सकता है कि प्रथम अध्याय में उल्लिखित जनगणना में "दूसरी भाषा", "अनुपूरक", "सहायक अन्य भाषा" के संदर्भ में देश के १६४४३३ व्यक्तियों (प्रदेशवार विवरण संलन्गक ४) द्वारा १६६१ की गणना में अंकित कराई गई भाषा 'संस्कृत', में से वस्तुतः अधिकतर की वह मातृभाषा ही थी, जो १६६१ की संस्कृत-मातृभाषी संख्या (४६०००) से चार गुना अधिक थी, और जिसके प्रति संस्कृत मातृभाषियों का सजग होना आवश्यक है ।

अब्रह्मण्यम्

यूरोप वासियों ने भारत में सत्ता हस्तगत करने के साथ, अपने ही हित के अनुकूल, निश्चित उद्देश्य व लक्ष्य से यहाँ के लोगों की भाषा व शिक्षा की नीति निर्धारित व संचालित की । फलतः केरल (मलयालम), मणिपुर (मणिपुरी), उड़ीसा (उड़िया), मिजोरम (मिजो), और सिक्किम (भोटिया, लेप्चा और नेपाली) में वहाँ की अपनी मातृभाषओं के साथ अंग्रेजी उन प्रदेशों की आज भी राजभाषा है । जब मात्र डेढ़ सौ वर्षो में अंग्रेजी, फ्रेन्च आदि भाषाएँ यहाँ राजभाषा और लोगों की मातृभाषा बन चुकी हैं, तो यहाँ यह खतरा मंडरा रहा है कि इससे कम समय में ही यहाँ के लोगों की मातृभाषा उनसे पूरी तरह छूट जायेगीं और अन्य योरोपीय भाषा उसका स्थान ले लेंगी ।

मणिपुर, मेघालय, नागालैण्ड, अरूणाचल–प्रदेश, चण्डीगढ़, दादर–नागर हवेली, गोवा और दमन–दीव में अंग्रेजी राजभाषा है । अरूणाचल–प्रदेश, मेघालय, सिक्किम और नागालैण्ड में शिक्षा का माध्यम केवल अंग्रेजी है । इस प्रकार इन क्षेत्रों के लोगों की मातृभाषाएँ लगभग पूर्णतया समाप्त हो गयी है । उदाहरणार्थ नागालैण्ड में 'जी.बी.' शब्द के सामान्य जन में बहुधा प्रयोग सुनकर, उसका अर्थ पूछने पर ज्ञात हुआ कि 'जी०' से गाँव और 'बी०' से बूढ़ा अर्थात् ''गांव–बूढ़ा'' (जैसे ग्राम–प्रधान) पद का संक्षिप्त रूप 'जी.बी.' है । कश्मीरी और सिन्धी भाषाएं अपने अस्तित्व के लिए अलग छटपटा रहीं हैं ।

यह उदाहरण यह प्रदर्शित करने के लिए दिये गये है कि एक भाषाई अल्पसंख्यक अपने मूल–स्थान से कैसे समाप्त होता है । जब शिक्षा का माध्यम मातृभाषा से भिन्न होता है तो उसी भिन्न भाषा को ही वरीयता प्राप्त होती है, कालान्तर में पहले वह राजभाषा की सीढ़ी पर चढ़कर बाद में मातृभाषा का स्थान ग्रहण करती है । विगत तीन पीढ़ियों में जिन परिवारों

में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा हुई है तथा उनका आर्थिक-स्तर उच्चतर बना रहा है या हो गया है, वहाँ का भाषाई परिवेश उनकी मातृभाषा से भिन्न हो चुका है और अंग्रेजी इन परिवारों में मातृभाषा स्वरूप स्थापित हो गई है । जनगणना के समय एकाएक झटका अनुभव करते हुए ऐसे परिवारों के लोग यद्यपि अपनी मातृभाषा हिन्दी, तमिल, बंगला, मराठी आदि लिखा देते हैं किन्तु ऐसे भद्र लोग अपना पृथक् स्वरूप प्रदर्शित करने के लिए, बनावटी विनम्रता दर्शाते, व मन में शान का अनुभव करते हुए, यह कहते हैं कि उन्हें स्थानीय भाषा के प्रयोग में कठिनाई होती है क्यों कि वे सदैव अंग्रेजी का ही प्रयोग करते हैं ।

यह नव–धनाढ्य व नव–पाश्चात्य वर्ग अपने को आभिजात्य व भद्रलोक की भाँति प्रदिर्शित करने का प्रयास करता है । यह वह वर्ग है जो गत सदी के प्रारम्भ तक अपने पाश्चात्य स्वामियों के सुर में सुर मिलाकर वेदों को गडेरियों के गीत बताकर तदनुसार उनका बखान करता था, किन्तु जब वही पाश्चात्य वर्ग वेदों की प्रशंसा करने लगा तो उन्हीं के अनुसार ''हिज मास्टर्स वायेस'' के ग्रामोफोन स्वरूप वह उसी सुर में बोलने लगा । इस वर्ग का अपना स्वयं का कोई विचार व सुर नहीं है ।

इस वर्ग के लोग संस्कृत को केवल पुरातन पन्थी ही समझते और बताते हैं । वह कदाचित् भूल जाते हैं कि 'निरूक्त' का निर्देश है कि ''अपने मानसिक कार्य–व्यवहारों में सभी लोगों को तर्क की विधि का अनुसरण करना चाहिए'' । कालिदार की उक्ति ''पुराणमित्येव न साधु सर्वम्'' (सब पुराना ही अच्छा नहीं है) तथा आदि गुरू शंकराचार्य का मत ''नहि पूवजों मुधा आसीदिति अवरे जनेऽपि मुधेन भवतिव्यम्'' (पूर्वज अनभिज्ञ थे इससे यह नहीं समझा जा सकता कि हम भी अनभिज्ञ बने रहें) । ऐसे लोगों को अपनी समझ सुधारने के लिए ही वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ 'ताजिक नील कण्ठी' के प्रारम्भ में 'यवनराज'का संदर्भ दिया हैं । उनकी दृष्टि में यवन 'ऋषिवत्तेऽपि पूज्याः स्युः' । ज्ञान के क्षेत्र में देशी–विदेशी व पुरातन व आधुनिक में कोई भेद नहीं है ।

इस अर्थ–सजग–वर्ग द्वारा बहुधा यह प्रश्न किया जाता है कि जो बालक केवल संस्कृत के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करेंगें, वह जीवन के कठोर आर्थिक सत्य का सामना कैसे करेंगे ? इस संदर्भ में यह भी कहा जाता है कि सं०मातृभाषियों के लिए वृत्ति (नौकरी आदि) के लिए कोई अवसर या क्षेत्र नहीं है ।

स्मरणीय है कि मध्यकालीन भारत के इतिहास में संस्कृत शिक्षा के पोषक व विध्वंसक दोनों प्रकार के राजाओं, जिन्होंने अपने राज्य को 'कल्याणकारी–राज्य' कभी घोषित नहीं किया, के समय राज्य अथवा समाज, अथवा दोनों ने संस्कृत–मातृभाषियों का पोषण किया, किन्तु आज अपने को 'कल्याणकारी' घोषित करने वाला राज्य, अपने इस दायित्व से पीछे क्यों है ?

इसके अतिरिक्त यदि जापानी, चीनी, रूसी, अरबी लोग जीवन की कठोर आर्थिक वास्तविकता का सामना कर अपनी मातृभाषा के साथ जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रगति कर सकते है तो सं०मातृभाषी क्यों नहीं ? यदि इस देश में बीस हजार अरबी–मातृभाषी पोषित हो सकते है तो उनचास हजार सं०मातृभाषी क्यों नहीं? यदि जीवन के आर्थिक पक्ष का प्रश्न सं०मातृभाषियों के लिए है तो क्या वह अरबी–मातृभाषी के लिए नहीं हैं ? अरबी–मातृभाषियों को स्वय उनकी संस्थाओं ने, भाषा और आस्था के प्रति उनकी प्रतिबद्धता के कारण आत्मसम्मान के साथ भारत में पोषित किया है ।

जहॉ तक वृत्ति, नौकरी या रोजगार की बात है यह विचारणीय है कि क्या देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों के आधुनिक विज्ञान के विभिन्न विषयों के प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण डिग्री धारकों को राज्य ने समुचित वृत्ति–नौकरी अथवा जीवन–यापन के साधन उपलब्ध करा दिये हैं ? देश के सामान्य नौजवान, वृत्ति–नौकरी–रोजगार के अभाव में तो हैं ही, क्या अत्यधिक सीमा तक आरक्षण दिये जाने के पश्चात् भी आरक्षित वर्ग के सभी

लोगों को वृत्ति–नौकरी प्राप्त हो सकी ? बेरोजगारी की समस्या किसी भाषा विशेष अथवा उसके माध्यम से पढ़ने के कारण नहीं खड़ी हुई हैं । वस्तुतः बेरोजगारी का दोषारोपण किसी भाषा या विषय पर नहीं किया जा सकता है अपितु, वह तो समग्र रूप से राज्य की सम्पूर्ण अर्थ और शिक्षा नीति अथवा असंतुलित विकास पर है ।

जब देश के आधारभूत अथवा अन्य उद्योगों व व्यवसायों का पहले राष्ट्रीयकरण करके अब पुनः एकाधिकरण, बहुराष्ट्रीयकरण और निजीकरण करके "पुनः सिंहो भव" (मूषको नहीं) कर स्वत्वाधीन कर लिया गया है तब नागरिकों का आधारभूत भोजनाच्छादन (कशिपु) भी राज्य का ही दायित्व है। जब जमींदारी का उन्मूलन हो सकता है, भूमिहीन को भूमि प्रदान की जा सकती है, जब राजाओं के प्रिवी–पर्स समाप्त हो सकते है, जब बैंको का राष्ट्रीयकरण हो सकता है, जोतवन्दी की सीमा हो सकती हैं, तो अन्य सम्पत्तियों जिसमें जमीदारी और जोतबन्दी से कहीं अधिक मूल्य व आय की नगरीय सम्पत्तियां व कम्पनियों के सम्पत्ति–साम्राज्य हैं, की सीमाबन्दी करके तथा सरकारी व्यावसायिक,औद्योगिक प्रतिष्ठानों से उनमें लगाई गई पूंजी के अनुसार एक निर्धारित वार्षिक अंश लेकर, व्यवसाय–वृत्ति–नौकरी विहीन लोगों को जीवित रहने के लिये आधारभूत भोजनाच्छादन और संस्कृत मातृभाषा माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था क्यों नहीं की जा सकती है ? वह भी तब, जब कि हमारे आर्थिक साधनों, स्रोतों का राज्य द्वारा अधिग्रहण कर लिया गया है या हमारी सम्पत्ति के दुरूपयोग की ओर से राज्य ने आंखें मूंद ली हैं। वस्तुतः भोजनाच्छादन और सुरक्षा का अधिकार प्रत्येक नागरिक को जन्म से प्राप्त है। यह केवल उन लोगों के लिये ही नहीं है जिन्हें सरकार ने एक बार में ही उनके पूरे जीवन के लिये अपने यहाँ उन्हें वृत्ति-नौकरी प्रदान कर उनके आर्थिक पोषण का ठेका ले लिया है।

विज्ञान और संस्कृत सदैव सहचर रहे हैं। संस्कृत जो मूलतः और व्यवहारतः वैज्ञानिक विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है, वैज्ञानिक चिन्तन,

शिक्षण, प्रशिक्षण और शोध में बाधक कैसे हो सकती है? क्या श्री जे०सी० बोस विश्व–विख्यात वैज्ञानिक होने के साथ ही संस्कृतज्ञ नहीं थे? वनस्पति आदि में जीवन की विद्यमानता, जिसे उन्होंने सिद्ध करके दिखाया, का विचार उन्हे 'शस्य' शब्द से ही आया, जिसका का अर्थ है 'हत्या करने योग्य'। और, हत्या उसी की हो सकती है जिसमें जीव हो, उनके मन में विचार आया कि जब वनस्पति को 'शस्य' कहा गया है तो इसका अर्थ हुआ कि इसकी हत्या होती है। अतः इसमें जीव अवश्य होना चाहिए। विश्व–विख्यात भौतिक–विज्ञान वेत्ता श्री फ्रिटजाफ कैपरा के प्राच्य मिस्टसिजिम और आधुनिक भौतिकशास्त्र की समानान्तरता के विचार को एक संस्कृत–मातृभाषी अणु–वैज्ञानिक आगे बढ़ सकता है। यही बात ज्ञान की सभी शाखाओं पर भी लागू है।

महेश योगी ने योग की प्रभावोत्पादकता को वैज्ञानिक प्रयोगशाला में प्रमाणित कर विश्व में उसका मानदण्ड स्थापित कर दिया है। परन्तु, अभी बहुत कुछ करना बाकी है। संस्कृत–शोध–अकादमी, मेलकोटे ने विभिन्न वैज्ञानिक विषयों के देश के सर्वश्रेष्ठ व अग्रणी वैज्ञानिकों और संस्कृत विद्वानों को एक मंच पर लाकर निर्णायक निष्कर्ष के लिए इस क्षेत्र में अनुकरणीय कार्य किया है, जिसकी देश के अन्य भागों में पुनरावृत्ति कराना श्रेयस्कर होगा। इस प्रकार के अध्ययनों के लिए संस्कृत–मातृभाषी ही कारगर सिद्ध हो सकते हैं। केवल पाश्चात्य–भाषाविद् अथवा केवल उन्हीं की विचारधारा को अन्तिम सत्य मानने वाले भारतीय या विदेशी विद्वानों से काम न चल सकेगा। बहुधा ऐसे विद्वानों ने अर्थ का अनर्थ कर दिया है। संस्कृत –मातृभाषी अपनी भाषा के अति संवेदनशील भावों को सही रूप से समझ/ग्रहण व व्यक्त कर सकते हैं। समय आ गया है जब विश्व संस्कृति के संस्कृत–मातृभाषी–स्वरूप के अंश को सुरक्षित रखने के लिए संयुक्त–राष्ट्र शैक्षिक–वैज्ञानिक ओर सांस्कृतिक संगठन अपने स्वरूपानुरूप दायित्व का निर्वाह करे।

किं करणीयम्—क्या करें

अतः संस्कृत—मातृभाषीः

१ स्वयं, अपने परिवार व निकटस्थों में संस्कृत—मातृभाषा के बारे में पूर्व पृष्ठों में वर्णित स्थिति के प्रति जागरूकता पैदा करें और यथा—सम्भव प्रयोग करें।

२ शब्दों में स्वर—व्यंजन के स्पष्ट—शुद्ध उच्चारण पर अवश्य ध्यान दें। व्याकरण की अशुद्धि के भय से बोलने में संकोच न करें, जैसा भी बन पड़े बोलें। शनैः शनैः अभ्यास से व्याकरण—स्वरूप शुद्ध बोलना भी आ जायेगा।

३ किसी के द्वारा व्याकरण से अशुद्ध बोलने पर उसे धिक्कारें नहीं, अपितु बाद में किसी समय उसे शुद्ध बताकर प्रोत्साहित करें। शुद्ध बोलना अभ्यास से स्वतः आ जायेगा।

४ दैनिक जीवन के साधारण शब्दों का यथावत् ही प्रयोग करे। आपको बाद में ज्ञात होगा कि वह सभी शब्द शुद्ध संस्कृत के ही हैं। दैनिक प्रयोग के संस्कृत के उन सरल शब्दों के स्थान पर कठिन शब्दों के प्रयोग का प्रयास न करें।

५ संस्कृत की सूक्तियाँ, कहावतें व मुहावरे, दैनिक बोलचाल में प्रयोग करें। घरों में इनकी मुद्रित पट्टियाँ चिपकायें। बच्चों को इनके प्रयोग के लिए प्रोत्साहित व पुरस्कृत करें।

६ घर के बाहर ही लिख दें "हम संस्कृत मातृभाषी हैं"। "वयं संस्कृत—मातृभाषिणः"।

७ दूसरे की मातृभाषा की निंदा—विवाद अथवा उसके प्रति द्वेष से अपने को दूर रखें।

८ प्रारम्भिक पाठशाला में प्रवेश कराने से पूर्व बच्चों को उनके परिवेश की वस्तुओं आदि के संस्कृत नाम भी बतायें।

६ प्राथमिक व उसके पूर्व के बच्चों की शिक्षा के लिए उन्हें ऐसे अध्यापकों को सौंपें जो उच्चारण के नियम व सिद्वान्तों से परिचित हों और जिनका स्वयं का उच्चारण शुद्व हो। बच्चे अनुकरण से स्वयं ही शुद्व बोलना सीख लेंगे।

१० शिक्षा–संस्था में प्रवेश कराते समय प्रवेश–पत्र में बच्चों की मातृभाषा–संस्कृत लिखाया जाना सुनिश्चित करें।

११ यदि आपकी जानकारी में किसी सरकारी या सरकार द्वारा अनुदान प्रदत्त पूरी सामान्य शिक्षा की पाठशाला/स्कूल में चालीस अथवा किसी एक कक्षा में दस विद्यार्थी संस्कृत–मातृभाषी हैं, तो उन बच्चों को संस्कृत–माध्यम से शिक्षा दिलाये जाने पर बल दें। यदि यह न हो सके तो सरकार व समाज को संस्कृत–भाषा के साथ ही रहे भेदभाव व सौतेले व्यवहार का अनुभव करायें।

१२ अपने निकट के संस्कृत–मातृभाषी परिवारों का पता लगायें।

१३ अपने किसी उत्सव–आयोजन के निमंत्राण–पत्रों शुभ–कामना–पत्रों, व बधाई–पत्रों को यथा–सम्भव संस्कृत में भेंजे। यदि यह व्यावहारिक न हो तो अन्य किसी भाषा के साथ संस्कृत–रूपान्तरण भी भेंजे। यदि यह भी सम्भव न हो तो कुछ अंश ही संस्कृत में अवश्य लिखें।

१४ देवनागरी लिपि में "तार" भेजे जाते हैं। "तार" से संदेश संस्कृत में भेंजे।

१५ पारस्परिक पत्राचार में प्रारम्भ में "अत्र कुशलम्, तत्रास्तु" और अन्त में "लिखितम्" "इति" लिखकर संस्कृत मातृभाषी स्वरूप

का स्वयं स्मरण करते रहें तथा औरों को भी कराते रहें।

१६ सामाजिक, राजनैतिक, शासकीय, प्रशासकीय अवसरों पर प्रदत्त औपचारिक प्रमाण–पत्र, सम्मान–पत्र, संस्कृत में ही दे।

१७ संस्कृत–शिक्षण–संस्थाओं के परिसर व कक्षाओं में संस्कृत से इतर भाषा के प्रयोग को हतोत्साहित करें। संस्कृत–भाषा से सम्बद्ध संस्थाओं में शिक्षणेतर कर्मचारी भी केवल संस्कृत मातृभाषी ही नियुक्त करें जो परिसर में केवल संस्कृत ही बोले। इन संस्थाओं के परिसर में विभिन्न स्थानों पर संस्कृत–सूक्तियाँ लिखकर टाँग दें, या चिपका दें और समय–समय पर उन्हें बदलते रहें। आवासीय संस्कृत–शिक्षण–संस्थाओं में नित्य प्रातः–सायं "आकाशवाणी" के, तथा रविवार को "दूरदर्शन" के समाचार सुनना शिक्षणेतर कार्यक्रम का एक अंग बनायें।

१८ संस्कृत भाषा के दैनिक समाचार–पत्र–पत्रिकायें क्रय करें, उन्हें पढ़ें, अभ्यास से समझने का प्रयास करें, अन्य लोगों को पढ़ने को दें, व क्रय करने के लिए प्रोत्साहित करें।

१६ "आकाशवाणी" रेडियो से नित्य प्रातः–सायंकाल ६ बजे तथा "दूरदर्शन" टी.वी. पर प्रत्येक रविवार को दोपहर में आने वाले समाचारों तथा संस्कृत के अन्य कार्यक्रमों को ध्यान से देखें व सुनें। अन्य लोगों को भी एक साथ बैठकर सुनने के लिए कहें।

२० संस्कृत–मातृभाषा के अध्यापकों के लिए शिक्षण–सामग्री तथा विद्यार्थियों के लिए पठन–लेखन–सामग्री जितना भी सम्भव हो दें। केवल समय देकर इस सम्बन्ध में सर्वेक्षण, लेखन, अनुवाद, शिक्षण–सामग्री–निर्माण, प्रशिक्षण जैसे बहुत कार्य किये जा सकते हैं।

२१ मातृभाषा–माध्यम से प्राथमिक शिक्षा के संवैधानिक अधिकार को व्यावहारिक रूप में प्रभावी करना सुनिश्चित करें।

२२ अगली जनगणना वर्ष २००१ में अपने क्षेत्र की कम से कम १५ प्रतिशत जनसंख्या को संस्कृत–मातृभाषी–छत्र से अच्छादित करे।

२३ जिन जिलों, तहसीलों, ताल्लुका या विकास खण्डों में संस्कृत–मातृभाषी अल्पसंख्यकों की पर्याप्त संख्या है, उन्हें संस्कृत मातृभाषी अल्पसंख्यक क्षेत्र घोषित करने के लिये सरकार व जिला प्रशासन से पुनः–पुनः निवेदन करते रहें। अन्य भाषाई अल्पसंख्यकों को प्राप्त सभी सुविधायें लेकर अपने अधिकार का संरक्षण करें। अपने आवेदन संस्कृत में ही दें।

२४ अगली जनगणना में अपना व अपनों का संस्कृत–मातृभाषी स्वरूप अंकन होना सुनिश्चित करे। इस बारे में कृत कार्य की सूचना से 'मनोयोग' की सहायता करें।

२५ "नमोनमः" "स्वागतम्" "बहुसुन्दरम्" "आगम्यताम्" "श्रूयताम्" आदि शब्दों का प्रचुर प्रयोग करें।

२६ "संस्कृत भाषा वंदनीया" की पट्टी अपने घर के बाहर लगायें।

२७ यदि आप स्वयं बिना रटे, मातृभाषी स्वरूप संस्कृत सीखना चाहतें हैं तो "मनोयोग" से सम्पर्क करें।

संलग्नक–१

मनोयोग

(भाषाई अल्पसंख्यकों की संस्था)

सी–२४ 'क' जे रोड
महानगर विस्तार, लखनऊ
१ चैत्र १६१२, २२ मार्च १६६०

महामहिम महोदय,

अभ्यर्थी "मनोयोग", भाषाई अल्प–संख्यकों के संरक्षण और विकास हेतु संस्था है और अपनी मातृभाष संस्कृत में अपनी अभ्यर्थना महामहिम तथा सरकार को प्रस्तुत करने के अधिकार से भिज्ञ है, परंच यतः अकारण अपना अधिकार जताना हमारा उद्देश्य नहीं है, अतः जीवन की वास्तविकता–व्यवहारिकता को देखते हुए जिस स्तर पर इस अभ्यर्थना की विवेचना होनी हे, की सरलता के लिए ही यह अभ्यर्थना राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रस्तुत की जा रही है। इस तथ्य से भी अवगत होते हुए कि महामहिम के सचिवालय और केन्द्र–सरकार के सचिवालय में अंग्रेजी भाषा में कार्य करने में सुविधा होती है, यह अभ्यर्थना अंग्रेजी भाषा में हम इस कारण नहीं दे पा रहे हैं क्योंकि भावों की अभिव्यक्ति अंग्रेजी में हमारे लिए उतनी सुकर नहीं है।

२ देश में और विशेष रूप से उत्तर–प्रदेश में संस्कृत–मातृ–भाषी परिवार समाप्ति पर हैं, अतः इन भाषाई अल्प–संख्यकों के बारे में निवेदन है कि :–

(क) उत्तर–प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा को स्थानीय निकायों के अधिकार क्षेत्र से हटा कर एक पृथक् संगठन "बेसिक शिक्षा परिष्द" को सौंप दिया गया है।

(ख) प्रदेश की बेसिक शिक्षा परिषद और उसके अधीनस्थ पाठशालाओं में संस्कृत–मातृभाषियों के बालकों को उनकी मातृभाषा में

शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। बेसिक शिक्षा अधिकारी को जब संस्कृत मातृभाषी बालकों के अभिभावकों द्वारा मातृभाषा–संस्कृत के माध्यम से शिक्षा--हेतु प्रार्थना पत्र--दिये जाते हैं तो उन्हें केवल मौखिक बता दिया जाता है कि संस्कृत के लिए ऐसे कोई आदेश नहीं है। प्रार्थना--पत्र की प्राप्ति अथवा लिखित उत्तर भी प्राप्त नहीं होता।

(ग) जिला–परिषदों और नगर–पालिकाओं के नव–निर्वाचित अध्यक्षों से जब प्रारम्भिक पाठशालाओं में संस्कृत–मातृ–भाषियों के लिये संस्कृत–माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था के लिए सम्पर्क किया गया तो उनका कहना है कि यह बेसिक शिक्षा अधिकारी का कार्य है।

(घ) उत्तर--प्रदेश शासन ने भाषाई अल्प–संख्यकों को संरक्षण देने के लिए सर्वप्रथम जो शासनादेश जारी किया था, उसमें किसी भाषा विशेष के अल्प–संख्यकों का उल्लेख नहीं था। किन्तु उसी क्रम में जो शासनादेश बाद में जारी हुए उनमें शनैः शनैः केवल उर्दू का ही उल्लेख रह गया। प्रदेशसरकार का राष्ट्रीय एकीकरण विभाग अब केवल उर्दू को ही अल्प–संख्यकों की भाषा और उसी के एकीकरण को लक्ष्य करके कार्यवाही कर रहा है।

(ङ) भाषायी अल्प संख्यक–आयुक्त अपनी रिपोर्ट में हमारी मातृभाषा–संस्कृत को केवल शास्त्र की भाषा इंगित कर हमारे जीवन्त स्वरूप को परोक्ष रूप से नकारते हैं और हमारी स्थिति पर पूर्ण विवरण युक्त टिप्पणी अपनी वार्षिक रिपोर्ट में उस प्रकार प्रस्तुत नहीं करते जिस प्रकार अन्य अल्प–संख्यक भाषाओं के बारे में प्रस्तुत करते है।

(च) संविधान के अनुच्छेद ३५०ब के अन्तर्गत महामहिम राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त विशेष अधिकारी के लिए भाषायी अल्पसंख्कों की स्थिति के बारे में रिपोर्ट प्रस्तुत करने के निदेश हैं, जिसे लोकसभा व राज्यसभा के "पटल" पर प्रस्तुत किया जाता है।

आयुक्त, भाषाजात–अल्पसंख्यक, वर्ष १६८४ तक की अपनी रिपोर्ट महामहिम को प्रस्तुत कर चुके हैं। यद्यपि वर्ष १६७२ से १६८३ तक के वर्षवार प्रतिवेदन महामहिम को प्रस्तुत होने के उपरान्त संसद् के पटल पर भी प्रस्तुत कर दिये गये हैं, लोक सभा को इस रिपोर्ट पर विचार करने के लिए एक दशक की इतनी लम्बी अवधि तक समय नहीं मिल पाया। इतनी दीर्घ अवधि तक अल्प–संख्यकों के बारे में विचार–हेतु समय न निकाल सकने की भारतीय संसद् की यह स्थिति संविधान के इस प्राविधान को निरर्थक और दायित्वों के प्रति उसके व्यवहार को अप्रासंगिक इंगित करती है। उसकी दीर्घसूत्रता उसके प्रति हमारी आस्था और आदर की नींव हिला देती है।

(छ) हमारे संरक्षण के लिए जो संस्थाएँ और ट्रस्ट (न्यास) समाज ने पूर्व में स्थापित किये थे उनमें से बहुतों की सम्पत्ति का शासन द्वारा अधिग्रहण हो चुका है और इनके न्यासी, नितान्त विपन्न साधक–हीन लाभार्थियों को अपेक्षित सहायता नहीं दे पा रहे हैं।

(ज) विभिन्न राजनैतिक दल हमारी मातृभाषा को धर्म, जाति और क्षेत्र से जोड़ कर, विभिन्न परिस्थितियों में तद्नुसार अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते रहते हैं और सरकार भी अपने उसी प्रकार के भिन्न दृष्टिकोण से विचार करती है, जिससे अकारण हमारा अहित होता है।

(झ) विभिन्न अल्पसंख्यक–भाषाओं के पृथक्–पृथक् समूहों में से बहुसंख्यक का उनके विरोध, आक्रामक और मुखर स्वर और देश–प्रदेश के शासक–राजनैतिक–दल को परिवर्तित कर सकने व कर देने की उनकी भूमिका के अनुपात में उन्हें संरक्षण प्राप्त है। मात्र अनुशासन प्रिय और भाषा को राजनीति से न जोड़ने वालों के बारे में विचार ही नहीं होता है।

(ङ) हम अपने इन संवैधानिक अधिकारों के लिए न्यायालय की शरण लेना न्याय प्रक्रिया का दुरूपयोग समझते हैं।

३. अतः सलंग्नक (दो) सहित अभ्यर्थना पत्र प्रस्तुत करते हुए अनुरोध है कि:–

(अ) मातृभाषा संस्कृत–माध्यम से प्राथमिक शिक्षा–व्यवस्था के संवैधानिक प्राविधान का परिपालन सुनिश्चित कराया जाय।

(ब) उत्तर–प्रदेश में मातृभाषा–माध्यम से प्राथमिक शिक्षा हेतु भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए जो सुविधायें अन्य भाषायी अल्पसंख्यकों को प्रदान की गई हैं, वह संस्कृत–मातृभाषी अल्प–संख्यकों को भी प्रदान किया जाना सुनिश्चित कराया जाय।

(स) उत्तर–प्रदेश में संस्कृत निदेशालय की स्थापना की जाय।

(द) अल्पसंख्यक–आयुक्त को संस्कृत–मातृभाषियों के बारे में अपनी वार्षिक रिपोर्ट में हमारे बारे में पूर्ण विवरण व टिप्पणी देने और हमारे साथ हो रहे, भेद–भाव को उजागर कर भेद–भाव को दूर करने के लिए निर्देश दिये जायें।

(य) अगली जनगणना में हमारे बारे में विशेष सावधानी बरतने के लिए आयुक्त जनगणना को निर्देशित किया जाय।

आपका विश्वासपात्र

(जितेन्द्र कुमार त्रिपाठी)
सचिव

श्री आर० बेंकटरमन,
महामहिम राष्ट्रपति,
राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली।

सेवा में

संलग्नक–२

माननीय विधानसभा

उत्तर प्रदेश, विधान भवन,

लखनऊ

सादर निवेदन है कि :-

१ उत्तरप्रदेश में वर्ष १६७१ की जनगणना के अनुसार १८ जिलों में ५०८ संस्कृत मातृभाषी थे, जो १६८१ में घटकर केवल छः जिलों में १०७ रह गये। इस गति से इस शताब्दी की समाप्ति के पूर्व ही हम संस्कृत-मातृभाषी, प्रदेश से समाप्त हो जायेंगे। देश की प्रति एक लाख जनसंख्या पर संस्कृत-मातृभाषियों की संख्या के हिसाब से उत्तर-प्रदेश, देश के १६ राज्यों में १७ क्रमांक पर आता है। अर्थात् देश के संस्कृत-मातृभाषी-विहीन प्रदेशों की श्रेणी में प्रवेश करने के कलंक का भागीदार यह दूसरा प्रदेश होगा। हम संस्कृत-मातृभाषी अल्प-संख्यकों की समाप्ति के पश्चात् आवश्यकता पड़ने पर संस्कृत का विदेश से आयात करना पड़ेगा।

२ प्रदेश मे सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय-वाराणसी, उत्तर-प्रदेश संस्कृत-अकादमी, राष्ट्रीय संस्कृत-संस्थान, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ प्रयाग व लखनऊ के द्वारा जो भी कार्य हो रहा है, उससे संस्कृत के भाषायी स्वरूप का संरक्षण किसी स्तर तक किया जा सकता है, किन्तु मातृभाषी-स्वरूप का संरक्षण प्राथमिक स्तर पर संस्कृत-माध्यम से शिक्षा के बिना नहीं हो सकता।

३ संविधान के अनुच्छेद ३५० (अ) के द्वारा मातृभाषा के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा का संरक्षण हमें प्राप्त है। प्रदेश-सरकार ने, केन्द्र सरकार के निर्देश पर भाषायी अल्प-संख्यकों के सरंक्षण के लिये जो शासनादेश सर्वप्रथम जारी किया था उसमें किसी भाषा-विशेष का उल्लेख नहीं था किन्तु उसी क्रम में जो शासनादेश बाद में जारी हुए हैं, वह शनैः-शनैः एक भाषा-विशेष तक ही सिमट कर रह गये हैं, और हम संस्कृत-मातृभाषियों को संरक्षण विहीन कराने का प्रयास प्रकारान्तर

से किया गया है। प्रदेश सरकार का राष्ट्रीय एकीकरण विभाग, हमें अलग रखकर समाज के एकीकरण में लगा है। फलस्वरूप स्थानीय निकायों की प्राथमिक शिक्षा संस्थाओं तथा अन्य राजकीय या निजी शिक्षा संस्थाओं में हमारे बालकों के लिए संस्कृत-मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था पर कोई कार्यवाही नहीं हुई है। वहाँ निवेदन करने पर यह उत्तर मिलता है कि ऐसा कोई शासनादेश नहीं है। प्रदेश सरकार व उसका शिक्षा-विभाग हमें न केवल हमारे नैसर्गिक अपितु संवैधानिक अधिकार से भी वंचित कर रहा है।

४ प्रदेश के शिक्षा निदेशालयों के स्वयं के अपने कार्यभार, क्षेत्र तथा शिक्षकों व विद्यार्थियों की बड़ी संख्या के प्रशासन के सामने संस्कृत भाषा की स्थिति सदैव गौण और उपेक्षित रहती है।

५ शासन द्वारा प्रति विद्यार्थी संस्कृत के लिए किया जा रहा व्यय प्रति विद्यार्थी अरबी भाषा पर किये जा रहे व्यय से बहुत कम हैं।

६ वर्तमान युग के बदले हुए वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी और राजनैतिक-आर्थिक-सामाजिक परिवेश के अनुरूप विषयों को हमारे बालको को संस्कृत भाषा के माध्यम से पढ़ाने की कोई व्यवस्था नहीं है। नये विषयों व नई परिस्थितियों के अनुरूप जो कुछ साहित्य सृजित हुआ है उसका मुद्रण व प्रकाशन आर्थिक रूप से अलाभकारी होने के कारण, व्यवसायी यह कार्य नहीं करता। अतः आधुनिक ज्ञान सुलभ न होने से जीवनोपार्जन के क्षेत्र हमारे लिए और सिकुड़ गये हैं। संस्कृत-भाषा के विभिन्न स्तर के पाठ्यक्रमों में भी आर्थिक व सामाजिक विकास की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार परिवर्धन नहीं हो रहा है।

७ विभिन्न राजनैतिक दल हमारी मातृभाषा को धर्म, जाति और क्षेत्र विशेष से जोड़ कर, विभिन्न परिस्थितियों में तदनुसार हमारी स्थिति को अपने लिए हितकर दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते रहते हैं और सरकार भी अपने उसी प्रकार के भिन्न दृष्टिकोण से विचार करती है, जिससे अकारण हमारा अहित होता है।

८ विभिन्न अल्प-संख्यक भाषाओं के पृथक-पृथक समूहों में से बहुसंख्यक वर्ग को उने विरोधी, आक्रामक और मुखर स्वर तथा देश-प्रदेश के

शासक-राजनैतिक दल को परिवर्तित कर सकने व कर देने में उनकी भूमिका के अनुपात में उन्हें संवैधानिक संरक्षण प्राप्त है। मात्र अनुशासन प्रिय और भाषा को राजनीति से न जोड़ने वाले हम लोगों के बारे में विचार ही नहीं हो पाता है।

९ हमारे संरक्षण के लिये जो संस्थाएं और न्यास (ट्रस्ट) समाज ने पूर्व में स्थापित किये थे उनमें से बहुतों की सम्पत्ति का सरकार द्वारा अधिग्रहण हो चुका है। जिन न्यासों की सम्पत्ति का अधिग्रहण नहीं हुआ है, में अधिकतर-सभी हमारी भाषा और संस्कृति का मुखौटा लगाये या तो सब सम्पत्ति बेंच चुके हैं, बेंच रहे हैं या स्वयं ही उसकी आय का उपयोग कर रहें हैं, या न्यासेतर कार्यो में लगा रहे हैं और हमारे असहाय बच्चे जो विधानतः न्यास के लाभार्थी हैं, न्यासियों का मुख देख रहे हैं और बांट जोह रहे हैं आपके हस्तक्षेप की। जो न्यास अपनी आय का कुछ अंश इन विधिक लाभार्थियों पर व्यय भी करते हैं, वह नाम-मात्र है। कुछ न्यासी उदासीन हैं, कुछ न्यासों की सम्पत्ति पर अनधिकृत क़ब्जा है।

१० प्रदेश-शासन का धर्मार्थ-कार्य-विभाग अपने अत्यन्त सूक्ष्मरूप के कारण अपने इस दायित्व और समस्या के आकार-प्रकार से अभी तक पूर्ण रुप से अवगत ही नहीं है। हमारे संरक्षण के लिए समाज के विभिन्न व्यक्तियों, वर्गो, संगठनों द्वारा पूर्व में गठित न्यासों की सम्पत्ति, शासन ने विभिन्न अधिनियमों द्वारा अधिग्रहीत कर ली। हम भाषाई अल्प-संख्यकों की शिक्षा से सम्बन्धित सम्पत्ति के अंश का अधिग्रहण सरकार को नहीं करना चाहिए था। न्यासियों का निजी अहित न होने के कारण उन्होंने इसकी ओर ध्यान भी नहीं दिया। हमने देश की प्रगति, समाजवाद, समता और छोटे भूमिहीन कृषकों की स्थिति सुधार की दृष्टि से, उसे इस आशा से स्वीकार किया कि सरकार हमारे संरक्षण के लिये भी तदनुरूप स्थायी परिसम्पत्ति अन्य रूप में सृजित कर कुछ व्यवस्था अवश्य करेगी किन्तु वह भी नहीं हुआ।

११ अतः माननीय विधानसभा से करबद्ध निवेदन है कि :-

(क) हमारी मातृभाषा संस्कृत के माध्यम से हमारे बालकों की प्राथमिक

शिक्षा की व्यवस्था के संवैधानिक विशेष निर्देश का परिपालन सरकार द्वारा सुनिश्चित कराने की कृपा की जाय।

(ख) प्रदेश में मातृभाषा माध्यम से प्राथमिक शिक्षा हेतु भाषायी अल्प-संख्यकों के लिए जो सुविधायें अन्य भाषायी अल्प-संख्यकों को प्रदान की गयी है, वह संस्कृत-मातृभाषी अल्प-संख्यकों को भी प्रदान किया जाना सुनिश्चित करने की कृपा की जाय।

(ग) हमारे हित के लिए गठित न्यासों की जो सम्पत्ति शासन ने पूर्व में अधिग्रहीत की है, उनके दायित्व के अनुसार क्रमिक बढ़ने वाली धनराशि का प्राविधान कर, हमारे संरक्षण के लिये पृथक राजकीय न्यास की स्थापना की जाय।

(घ) वर्तमान में हमारे लिये समाज द्वारा गठित सभी न्यासों की सम्पत्ति का प्रशासन, न्यास के हम लाभार्थियों के लिये, न्यास का विधान और न्यासियों के अधिकारों को अक्षुण्ण और उनका पृथक् अस्तित्व बनाये रखते हुए, देश के अन्य प्रमुख सम्प्रदायों के लिए बने अधिनियमों की भाँति विशेष अधिनियम द्वारा हमारे हित हेतु प्रशासन के अनुरूप, धनोपयोग कराने के लिए, प्रदेश में संस्कृत मातृभाषा का महान्यास (बोर्ड) बनाया जाय।

(ङ) हमारी भाषा के विद्यार्थियो की संख्या और पृथक् प्रशासन की आवश्यकता को देखते हुए एक पृथक् संस्कृत-निदेशालय जो हमारे लिए गठित न्यासों की सम्पत्ति का लाभ उसके लाभार्थियों को दिलाया जाना तथा हमारी मातृभाषा- माध्यम से सामान्य शिक्षा एवं संस्कृत-भाषा की शिक्षा, तत्सम्बन्धी आधुनिक परिवेश युक्त पठन सामग्री और पाठ्यक्रम सुनिश्चित कर सके, की स्थापना कराई जाय।

(च) सरकारी कर्मचारियों को संस्कृत की निर्धारित परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर विशेष प्रोत्साहन धनराशि दी जाय।

भवदीय

ह० जितेन्द्र कुमार त्रिपाठी

सेवा में, संलग्नक—३

माननीय राज्य सभा,

नई दिल्ली

सादर निवेदन है कि :-

१ हम संस्कृत-मातृभाषी,देश के विभिन्न भाषाई-अल्प संख्यकों में भी न्यूनतम की श्रेणी में हैं। संस्कृत भाषा संविधान की अनुसूची आठ में अंकित है और अनुच्छेद ३५१ में, देश की विभिन्न भाषाओं के शब्द-स्रोत स्वरूप स्वीकृत है। राष्ट्रीय एकता की आज की संकट की घड़ी में एक सूत्रता एवं दृढ़ता हेतु इसका और भी महत्त्व है। विश्व में भारत और उसकी पहचान का प्रमुख बिन्दु संस्कृत-भाषा है, जो मानव मात्र की थाती है।

२ किन्तु, वर्ष १९८१ की जनगणना में देश में संस्कृत-भाषियों के परिवारों की संख्या ५६४ तथा कुल बोलने वालों की संख्या २९६४ रह गई थी। संस्कृत भाषी व्यक्ति या परिवारों (व कुल बोलने वालों की संख्या) के अनुसार बिहार २१३ (११७४), कर्नाटक ९२ (५०६), तमिलनाडु ५६ (२४४), महाराष्ट्र ४८ (२८१), हरियाणा ३१ (१४८), हिमांचल-प्रदेश २१ (८१), दिल्ली २० (५६), राजस्थान १६ (८५), मध्य-प्रदेश १४ (७०), पंजाब १३. (६१), उत्तर-प्रदेश १० (१०८), बंगाल ८ (२२), आंध-प्रदेश ७ (२६), गुजरात ४ (१६), कश्मीर ३ (५), गोवा दमन दीव ३ (३),उड़ीसा २ (१३), केरल २ (७), मेघालय १ (१) की स्थिति यह स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त है कि देश के अधिकतर प्रदेश संस्कृत-भाषी-परिवार विहीन होने की स्थिति तक पहुंच गये हैं। यह हमारे लिये चिन्ता का कारण है। कहीं ऐसा न हो कि भारत में अगली शताब्दी में संस्कृत विदेशों से आयात करने की स्थिति आ जाय।

३ मातृभाषी-माध्यम से प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने का संवैधानिक संरक्षण (अनुच्छेद ३५० क) होते हुए भी प्राथमिक स्तर पर संस्कृत-मातृभाषा के शिक्षण की व्यवस्था किसी प्रदेश में अब तक नहीं हो पाई है। भाषायी अल्प संख्यक-आयोग की २४ वीं रिर्पाट के अनुसार देश में मात्र कर्नाटक ही ऐसा प्रदेश है जहाँ पर माध्यमिक स्तर पर संस्कृत भाषा माध्यम के पठन-पटन की व्यवस्था है। इस रिपोर्ट के अनुसार वर्ष

१६८२-८३ में कर्नाटक में संस्कृत माध्यम से पढ़ने वालों की संख्या ६२८५ और कक्षाओं की संख्या ६८ थी।

४ सरकार द्वारा हमारी मातृभाषा संस्कृत माध्यम से शिक्षा प्रदान करने की किसी प्रदेश में व्यवस्था न होने (कर्नाटक को छोड़कर वहाँ भी केवल माध्यमिक स्तर तक) किन्तु इसके विपरीत अन्य भाषाओं के लिये संरक्षण की सुविधाएँ उपलब्ध कराये जाने तथा हमारे व हमारी मातृभाषा के साथ हो रहे/किये जा रहे भेदभाव और उपेक्षा से हमारे मन में भविष्य के प्रति अनिष्ट की आशंका उत्पन्न हो रही है। किसी द्वेषवश नहीं किन्तु उदाहरण स्वरूप, उत्तर-प्रदेश में वर्ष १६७१-७२ से ८१-८२ के दशक में उर्दू माध्यम से (उर्दू भी हमारे ही प्रदेश की भाषा है, हम उसका आदर करते है) माध्यमिक शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं की संख्या ५ से बढ़कर १४६, पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या २,२६६ से बढ़कर १७,८१७ और शिक्षकों की संख्या ६३६ से बढ़कर २,५५० हो जाना, क्रमशः २८८ प्रतिशत, ६२६ प्रतिशत व २७२ प्रतिशत वृद्धि इंगित करता है, तथा उर्दू माध्यम से प्राथमिक शिक्षा हेतु १६८१-८२ में स्कूलों की संख्या १२२८, छात्रों की संख्या २,२२,४३७ एवं भाषा रूप में उर्दू स्कूलों की संख्या ३६६० व उर्दू छात्रों की संख्या ५४४६ तथा अध्यापकों की संख्या ३८६७ के होते, संस्कृत-मातृभाषियों का उनकी मातृभाषा माध्यम से प्राथमिक व माध्यमिक स्तर की शिक्षा की व्यवस्था न किया जाना, हमारे साथ सौतेले व्यवहार का स्पष्ट प्रतीक है, जिससे हम अपने ही देश में, पराया सा अनुभव करने को बाध्य, और संवैधानिक अधिकार से वंचित किये जा रहे हैं।

५ भाषायी अल्प-संख्यक आयोग भी हमारी भाषा को अपनी रिपोर्ट में शास्त्र की भाषा अंकित कर हमारे जीवन्त स्वरूप को प्रकारान्तर से नकारने का प्रयत्न करता प्रतीत होता है। भाषाई अल्प संख्यक आयोग की रिपोर्ट पर चर्चा हेतु माननीय सदन द्वारा दीर्घ अवधि तक समय न निकाल पाने के तथ्य से भी हम क्षुब्ध है।

६ भाषायी-अल्प-संख्यकों को संरक्षण देने के लिये भारत सरकार की नीति निर्देश के अनुसार जो शासनदेश उत्तर-प्रदेश में जारी हुए थे, उसमें प्रारम्भ में तो केवल भाषाई-अल्प-संख्यकों का ही उल्लेख था किन्तु बाद में प्रदेश के शासनादेशों में केवल उर्दू का ही उल्लेख रह गया और उसी को अल्प संख्यकों की भाषा मानकर और हमें त्याग कर राष्ट्रीय एकीकरण किया जा रहा है।

७ विभिन्न राजनैतिक दल हमारी मातृभाषा को धर्म, जाति और क्षेत्र विशेष से जोड़कर विभिन्न परिस्थितियों में तदनुसार अपने दृष्टिकोण से विषय को प्रस्तुत करते रहते हैं, और सरकार भी अपने इसी प्रकार के भिन्न दृष्टिकोण से विचार करती है, जिससे अकारण हमारा अहित होता है।

८ विभिन्न अल्प-संख्यक भाषाओं के पृथक्-पृथक् समूहों में से बहुसंख्यक वर्ग का, उनके विरोधी, आक्रामक और मुखर स्वर तथा देश/प्रदेश के शासक राजनैतिक दल को परिवर्तित कर सकने व कर देने की, उनकी भूमिका के अनुपात में उन्हें संरक्षण प्राप्त है। मात्र अनुशासन प्रिय और भाषा को राजनीति से न जोड़ने वाले हम लोगों के बारे में विचार ही नहीं हो पाता है।

६ हमारे संरक्षण के लिए जो संस्थाएं और न्यास (ट्रस्ट) समाज ने पूर्व में स्थापित किये थे, उनमें से बहुतों की सम्पत्ति का सरकार द्वारा अधिग्रहण हो चुका है। जिन न्यासों की सम्पत्ति का अधिग्रहण नहीं हुआ हैं, में से अधिकतर न्यासी हमारी भाषा और संस्कृति का मुखौटा लगाये या तो सब सम्पत्ति बेंच चुके हैं, बेंच रहे हैं या स्वयं ही उसकी आय का उपभोग कर रहे हैं, या न्यासेत्तर कार्यो में लगा रहे हैं और हमारे असहाय बच्चे जो विधानतः न्यास के लाभार्थी हैं, न्यासियों का मुख देख रहे हैं, और बाट जोह रहे हैं आपके हस्तक्षेप की। जो न्यास अपनी आय का कुछ अंश इन विधिक लाभार्थियों पर व्यय भी करते हैं वह नाम मात्र को। बहुत से न्यासी अपने दायित्व व उसकी सम्पत्ति के प्रति उदासीन हैं, जिससे न्यास की सम्पत्ति पर अनधिकृत कब्जा है।

१० कुछ इने गिने स्थानों, संस्थाओं और प्रदेशों को छोड़कर अधिकतर प्रदेशों में संस्कृत-अध्ययन के लिये सुविधा-सहायता हेतु स्थापित न्यासों के विधिक लाभार्थी अपनी दीन-हीन स्थिति के कारण न्यास की सहायता से वंचित है। अतः संस्कृत-भाषा से सम्बन्धित सभी न्यासों की स्वायत्तता में हस्तक्षेप किये बिना, न्यासों और उनकी सम्पत्ति के लाभकारी व हितकारी प्रबन्ध हेतु एक शीर्ष न्यास/संगठन, भारत-सरकार/प्रदेश सरकारों द्वारा एक विशेष अधिनियम के अन्तर्गत गठित करना आवश्यक है जो संस्कृत मातृभाषियों के संरक्षण हेतु न्यासों की सम्पत्ति लाभार्थियों के विकास हेतु उपयोग करना सुनिश्चित कर सके।

११ इसी प्रकार से, जिन न्यासों में संस्कृत-शिक्षण का प्राविधान था और उनकी सम्पत्ति का अधिग्रहण सरकार द्वारा किसी कारणवश किया गया है, उन न्यासों की अधिग्रहीत सम्पत्ति की, अधिग्रहीत-वर्ष की अनुमानित आय के अनुरूप वार्षिक अनुदान नियमित रूप से प्रतिवर्ष उनके लाभार्थियों की आवश्यकतानुसार, दिये जाने का प्राविधान किया जाये जिससे संस्कृत मातृभाषी-अल्प-संख्यकों के विधिक लाभार्थी बालकों के धनक्षय की पूर्ति की जा सके।।

१२ वर्तमान युग के बदले हुए वैज्ञानिक प्रोद्योगिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक युग के अनुरूप हमारे बालकों को संस्कृत-भाषा के माध्यम से ज्ञान कराने की व्यवस्था नहीं है। नये विषयों, नई परिस्थितियों के अनुरूप जो कुछ भी लेखन कार्य हुआ है, आर्थिक रूप से अलाभकारी होने के कारण, मुद्रक व प्रकाशक यह कार्य नहीं उठाते। अतः हमारे लिये आधुनिक ज्ञान-विज्ञान सुलभ नहीं है। संस्कृत-भाषा के विभिन्न स्तर के पाठ्यक्रमों में भी परिवर्तित परिस्थितियों और आर्थिक सामाजिक विकास के अनुसार परिवर्धन नहीं हो रहा है।

अतः तथ्ययुक्त दो मुद्रित विवरण संलग्न करते हुये करबद्ध निवेदन है कि :-

(क) मातृभाषा संस्कृत के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा-व्यवस्था के संवैधानिक प्राविधान का परिपालन सुनिश्चित कराया जाय।

(ख) अन्य भाषाई अल्प-संख्यको को प्रदान की जाने वाली सुविधाएं संस्कृत मातृभाषियों को भी प्रदान की जाय।

(ग) संस्कृत-भाषा से सम्बन्धित सभी न्यासों के प्रशासन में सुधार और लाभार्थियों को उनका अधिकार दिलाने, उपर्युक्त अपेक्षित व्यवस्थाएं कराने और संस्कृत मातृभाषियों के संरक्षण के लिये, न्यासों के संगठन का एक केन्द्रीय अधिनियम बनाया जाय।

(घ) अल्प-संख्यक आयुक्त की अब तक की रिपोर्ट पर सदन में शीघ्र चर्चा की जाय तथा आयोग से अपनी वार्षिक रिपोर्ट में संस्कृत मातृभाषियों के बारे में पूर्ण विवरण व टिप्पणी देने के निर्देश दिये जाँए।

(ङ) सरकारी कर्मचारी/अधिकारियों का संस्कृत की निर्धारित परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर आर्थिक प्रोत्साहन दिया जाय।

ह० जितेन्द्र कुमार त्रिपाठी

संलग्नक - ४

संस्कृत - अनुपूरक भाषा स्वरुप १६६१ में अंकित कराने वालों की प्रदेशवार संख्या

क्रमांक	प्रदेश/केन्द्रीय क्षेत्र	व्यक्ति	पुरुष	स्त्री
१.	आन्ध्र-प्रदेश	३०८२	२६५४	४२८
२.	आसाम	-	-	-
३.	बिहार	२६४१२	२७७३१	१६८१
४.	गुजरात	५३४६	४८२४	५२५
५.	जम्मू-कश्मीर	२७	२१	०६
६.	केरल	८६३३	७६०७	१०२६
७.	मध्य-प्रदेश	१६०००	१४८४४	११५६
८.	तमिलनाडू	३६०२	३१३३	४६६
६.	महाराष्ट्र	३६६७	३३५५	३१२
१०.	कर्नाटक	२७४२	२६०८	१३४
११.	उड़ीसा	५४८	५४२	०६
१२.	पंजाब	२०४०८	१७४७६	२६२६
१३.	राजस्थान	८४४३	७५०७	६३६
१४.	उत्तर-प्रदेश	७६४८८	७१३१८	८१७०
१५.	पश्चिमी-बंगाल	३२०६	२८४२	३६७
१६.	अण्डमान-निकोबार	१०	०६	०१
१७.	दिल्ली	६४६४	६२५१	३२४४
१८.	लक्षद्वीप	०१	०१	-
१६.	मणिपुर	०१	०१	-
२०.	त्रिपुरा	२२२	२१६	०३
२१.	दादर नगर हवेली	०३	०३	-
२२.	पाण्डचेरी	७१	६७	०४
२३.	नेफा (पूर्वोत्तर सीमा-प्राधिकरण)	१८	१८	-
२४.	सिक्किम	०२	०२	-
	योग	१६४४३३	१७३०३६	२१३६७

संलग्नक - ५

उद्धरण

१ शीक्षां व्याख्यास्यामः वर्णः स्वरः। मात्रा बलम्। साम संतानः। इत्युक्तः शीक्षाध्यायः।

२ स्वर–वर्णाद्युच्चारण–प्रकारो यत्र शिक्ष्यते सा शिक्षा।

३ व्याघ्री यथा हरेद्वत्सं दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्। भीता पतन भेदाभ्यां तद्वद् वर्णान्प्रयोजयेत्। पतंजलिमहाभाष्य तत्वालोकी टीका।

४ एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग् भवति। १–१ आह्निक तत्वालोकी टीका।

५ तस्माद् ब्राह्मणेन न, म्लेच्छितवै नापभाषितवै म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः।

६ म्लेच्छा मा भूमेत्यध्येयं व्याकरणम्। तेऽसुराः।

७ दुष्टः शब्द स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।

८ अदुरूक्तवाक्यम् दुरूक्तमाहुः। शतपथ ।

९ अदीक्षिताः दीक्षिता वाचम वदन्ति। ताण्ड्यब्राह्मण

१० यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो माभूत शकलः सकलः सकृच्छकृत्।

११ आलापाद् गात्रसंपर्कात् संसर्गात् सहभोजनात्।
आसनाच्छयनाद् यानात् पापं संक्रमते नृणाम्।

१२ न म्लेछाशुचधार्मिकैः सह सम्भाषेत्।

१३ न वदेत् यावनीं भाषाम् ।

१४ वाणी संस्कारभूषिता (महाभारत)

१५ वाचः संस्कारालंकृतम् (रामायण)

१६ स्वर–व्यञ्जन–संस्कार भारती। महाभारत आश्वामेधिक पर्व १४, ४३, २२।

१७ महाभारत – १–६४–३४

१८ कालिदास–कुमार सम्भव १–२८

१९ कालिदास–कुमार सम्भव ७–९०

२० कृतसंस्कारा चरितार्थेव भारती–रघुवंश १० ३६

२१ संस्कृत्य संस्कृत्य पदान्युत्सृज्यन्ते १–१–१८ महाभाष्य।

२२ जातिभाषाश्रयं पाठ्यं द्विविधं समुदाहृतम्। प्राकृतं संस्कृतं चैव। १७–३० नाट्यशास्त्र।

२३ भाषा संस्कृतापभ्रंश प्रमंशस्तु विभाषा सा तत्तोद्वेशा एवं गह्वरवासीनां च प्राकृत वासीनां च। अभिनव गुप्त।

२४ सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्यात्प्रतिष्ठिता (८–१६४) भाषितेन (८–२६) मनु

२५ धारयन् ब्राह्मणम्रूपम् इल्वलः संस्कृतम् वदन्। रामायण ३२–५८

२६ संस्कार क्रमसम्पन्नामद्भुतमविलम्बिताम्।
उच्चारयति कल्याणी वाचं हदय हर्षिणीम्। रामायण ३–३२

२७ अहं ह्यति तनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्।।
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।
अवश्मेव वक्त्ब्यं मानुषं वाक्यमर्थवत।।
मया सान्त्वयितुं शक्या नात्यथेयम निन्दिता।।

२८ राजवद् रूपवेषौ ब्राह्मीवाचं विभाषे च। आदि पर्व महाभारत

२९ भूरिभार–भराक्रान्तस्तव स्कन्धो न बाधति।
न तथा बाधते राजन् यथा बाधति बाधते।

३० शनकैस्तु क्रियालोपादिमाक्षत्रिय जातयः।
वृषलत्वं गतालोके ब्राह्मणानामदर्शनात्।।

३१ आचारः कुलम् आख्याति स्नेहम् आख्याति सम्भ्रमः भाषणम् देशम् आख्याति वपुः ख्याति भोजनम् ।

Printed by :
PRINT CRAFTS
Shalimar Bagh, Delhi-110088